



अथर्ववेद

प्रथम भाग

(अथर्ववेदके प्रथम तीन काण्ड)

[मूल मंत्र, अर्थ, स्पष्टीकरण और सूत्रावलीका वर्गीकरण तथा
उनके उपयोग करनेकी विधिके साथ]

लेखक

प. श्रीपाद दामोदर सातवनेकर
साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार
अध्यक्ष- स्वाध्याय मण्डल, पारडी [जि. मुन्ना]

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

★

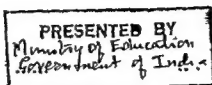
मूल्य ८) रु.

प्रकाशक :

वसन्त श्रीवास्तव सातवलेकर, बी. ए.,

स्वाध्याय मण्डल,

पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारधी)' पारधी [जि. सुरत]



मार्च १९५८ : सितम्बर १९५५ : दशक १९८०

द्वितीय बार

मुद्रक :

वसन्त श्रीवास्तव सातवलेकर, बी. ए.,

भारत-मुद्रणालय, स्वाध्याय मण्डल,

ई १२- 'स्वाध्याय मण्डल (पारधी)' पारधी [जि. सुरत]

ॐ

अथर्ववेदके पहिले तीन काण्डोंका

प रि च य



अथर्ववेदमें २० काण्ड हैं। उनमें प्रथम तीन काण्डोंका यह प्रथम भाग है। इसमें सूक्त और मंत्र संख्या इस तरह है—			चतुर्थ अनुवाक		
			द्वितीय प्रपाठक		
प्रथम काण्ड			१७	रक्तश्राव घंद करना	४
प्रथम अनुवाक			१८	सौभाग्यवर्धन	४
प्रथम प्रपाठक			१९	घृतनाशन	४
			२०	महानद्यासक	४
सूक्त संख्या	दीर्घक	मंत्र संख्या	२१	प्रजोपाक	४ २०
१	सुदिसंबर्धन	४	चतुर्थ अनुवाक		
२	विजय	४	२२	हृदयरोगनिवारण	४
३	भारोग्य, मृतदोष निवारण	९	२३	श्वेतकुष्ठनाशन	४
४	जल	४	२४	कुष्ठनाशन	४
५	"	४	२५	घीवर्धन दूरीकरण	४
६	"	४ २९	२६	शुक्रप्राप्ति	४
			२७	विजयी स्त्री	४
द्वितीय अनुवाक			२८	दुष्टनाशन	४ २८
७	धर्मप्रचार	४	चतुर्थ अनुवाक		
८	"	४	२९	वातसंबर्धन	४
९	सर्वप्राप्ति	४	३०	आयुर्वर्धन	४
१०	वायुसे मुक्ति	४	३१	आयुषासक	४
११	शुक्रवर्धन	६ ३५	३२	श्रीधन-रस-महाभाग	४
तृतीय अनुवाक			३३	जल	४
१२	रोगनिवारण	४	३४	मनुष्यविद्या	४
१३	हृदयको नमन	४	३५	वक्त्र और दीर्घायु	४ ३३
१४	शुक्रवर्ध	४			
१५	मौनिक-महाभाग	४			
१६	श्रीधन	४ ३०			
			१५३		

१२ मन्त्र हैं । ७ मन्त्रोंवाला एक सूक्त है और ९ मन्त्रोंवाला एक सूक्त है इस तरह—

४ मंत्रवाले ३० सूक्त १२० मन्त्र
५ ,, वाला १ ,, ५
६ ,, वाले २ ,, १२
७ ,, वाला १ ,, ७
९ ,, वाला १ ,, ९
१५३ कुल मन्त्र सख्या ।

इस प्रथम काण्डकी प्रकृति ४ सूक्तवाले मन्त्रोंकी है अब द्वितीय काण्ड देखिये—

अब द्वितीय काण्डकी प्रपाठक, अनुवाक, सूक्त, मन्त्र सख्या इस तरह है यह देखिये—

द्वितीय काण्ड		
तृतीय प्रपाठक		
प्रथम अनुवाक		
सूक्त सख्या	शीर्षक	मन्त्र सख्या
१	गुह्य अग्न्यागमविद्या	५
२	पूजनीय ईदवर	५
३	आरोप	६
४	अग्नि मणि	६
५	अग्निमधर्म	७ २९
द्वितीय अनुवाक		
६	आश्विनधर्म	५
७	शापको कीटना	५
८	अग्निप्रयोग दूर करना	५
९	मन्त्रिवात दूर करना	५
१०	दुर्गतिसे बचना	८ २८
तृतीय अनुवाक		
११	आमाके गुण	५
१२	मनका बल बढ़ाना	८
१३	वधपरिधान	५
१४	बिदग्निचोरी हटाना	६
१५	निर्मलप्रीत्य	६
१६	विदग्धभरही अग्नि	५
१७	आमपहलनका बल	७ ४३

चतुर्थ अनुवाक
चतुर्थ प्रपाठक

१८	आत्मसंरक्षणका बल	५
१९	सुद्धिकी विधि	५
२०	" "	५
२१	" "	५
२२	" "	५
२३	" "	५
२४	डाकुओंकी असफलता	८
२५	प्रक्षिपणी	५
२६	गौरस	५ ४८

पंचम अनुवाक

२७	विजयप्राप्ति	७
२८	दीर्घायुष्य	५
२९	"	७
३०	पतिपत्नीका मेल	५
३१	रोगोत्पादक क्रुमि	५ २९

षष्ठ अनुवाक

३२	हृमिनाशन	६
३३	यक्षमनाशन	७
३४	सुप्तिका मार्ग	५
३५	पशुमें आत्मसमर्पण	५
३६	विवाहका मंगल कार्य	८ ३१

२०७

इस काण्डमें ५ मन्त्रोंवाले सूक्त २२ हैं और मन्त्र ११० हैं ।

१	१	५	५	२०
२	७	५	५	३५
३	८	४	५	३२

द्वितीयकाण्डकी मन्त्र सख्या २०७

इस द्वितीय काण्डकी प्रकृति ५ मन्त्रोंके सूक्तोंकी है क्योंकि ३६ सूक्तोंमें २२ सूक्त ५ मंत्रोंके हैं ।

अब तीसरे काण्डके प्रपाठक, अनुवाक, सूक्त और मन्त्र देखिये—

तृतीय काण्ड			२८	पशुस्वास्थ्यरक्षा	६
पंचम प्रपाठक			२९	संरक्षक कर	८
प्रथम अनुवाक			३०	एकता	७
सूक्त संख्या	शीर्षक	मंत्र संख्या	३१	पापकी निवृत्ति	११ ४४
१	शत्रुसेना-संमोहन	६			२३०
२	"	६			
३	राजाकी राज्यपर पुनः स्थापना	६			
४	राजाका चुनाव	७	७	" ६ "	४२
५	राजा और राजाके बनानेवाले	८ ३३	८	" ६ "	४८
द्वितीय अनुवाक			९	" २ "	१८
६	वीरयुद्ध	८	१०	" २ "	२०
७	आनुवंशिक रोगोंका दूर करना	७	११	" वाला १ " इसकी "	११
८	राष्ट्रीय एकता	६	१२	" १ "	१३
९	कृषि प्रतिबंधक उपाय	६		३१ सूक्त	२३० मंत्र
१०	कालका यज्ञ	१३ ४०			
तृतीय अनुवाक					
११	हवनसे दीर्घायुत्व	८			
१२	गृह-निर्माण	९		१ काण्ड सूक्त ३५ मंत्र संख्या १५३	
१३	जल	७	२	" " ३६ "	२०४
१४	गोशाला	६	३	" " ३१ "	२३०
१५	वाणिज्यसे धनप्राप्ति	८ ३८			५९० कुल मंत्र संख्या
चतुर्थ अनुवाक					
षष्ठ प्रपाठक					
१६	भगवानकी प्रार्थना	७			
१७	कृषिसे सुख	५			
१८	जनस्पति	६			
१९	ज्ञान और शौर्य	८			
२०	तेजस्विताके साथ अभ्युदय	१० ४०			
पंचम अनुवाक					
२१	कामाग्निशमन	१०			
२२	वर्ष प्राप्ति	६			
२३	वीरयुद्धप्राप्ति	६			
२४	समृद्धिकी प्राप्ति	७			
२५	कामका वाण	६ ३५			
षष्ठ अनुवाक					
२६	उपतिकी शिक्षा	६			
२७	अभ्युदयकी शिक्षा	६			

इसमें ६ मंत्रवाले १३ सूक्त हैं मंत्र संख्या ७८ है—

७ " ६ " " ४२

८ " ६ " " ४८

९ " २ " " १८

१० " २ " " २०

११ " वाला १ " इसकी " ११

१२ " १ " " १३

३१ सूक्त २३० मंत्र

इसमें ६ मंत्रवाले १३ सूक्त हैं अतः इस काण्डकी प्रकृति ६ मंत्रवाले सूक्तोंकी है ऐसा कह सकते हैं। तीनों काण्डोंकी मंत्र संख्या यह है—

१ काण्ड सूक्त ३५ मंत्र संख्या १५३

२ " " ३६ " २०४

३ " " ३१ " २३०

५९० कुल मंत्र संख्या

इन सूक्तोंके क्रमको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, इन सूक्तोंकी स्थापना विषयानुसार नहीं है। इसकी रचना विषयानुसार की जाय, तो पाठकोंको वेदका विषय समझनेमें सुगमता होगी। इन तीनों काण्डोंके सूक्त विषयानुसार इकट्ठे किये तो इस तरह होते हैं—

१ ईश्वर— १।१३ ईश्वरको नमन, २।१ अभ्यारम्भविद्या, २।२ पूजनीय ईश्वर, २।३ विद्यम्भरकी भक्ति, ३।३ भगवानकी प्रार्थना, २।१ आरामके गुण।

२ मुक्ति— २।३४ मुक्तिका मार्ग।

३ शासक— १।२० महान् शासक, १।२१ प्रजापालक, ३।३ राजाकी राज्यपर स्थापना, ३।४ राजाका चुनाव, ३।५ राजा और राजाके बनानेवाले, १।३१ आशायाचक, १।२९ राष्ट्रसंवर्धन, ३।२९ संरक्षक कर।

४ युद्ध— ३।१-२ शत्रुसेना संमोहन।

५ विजय— १।२ विजय, २।२७ विजय प्राप्ति, २।५

धन्निवधर्म, ३११९ ज्ञान और शौर्य, ३१२० तेजस्वितासे सम्बुध्य ।

६ बुद्धि— १११ बुद्धिका सर्वधन, २११२ मनका बल बढाना ।

७ आरोग्य— ११३, २१३ आरोग्य, ११३२ जीवनरस, ११२ रोगनिवारण, ११२२ द्वासीगनिवारण, ११२३-२४ श्वेतकुल, कुष्ठनाशन, ११२५ क्षीतश्वर, २१२ सधिवातनाशन, २१८ क्षेप्रियरोगनाश, २१३१ रोगोत्पादककृमि, २१३२ कृमि नाशन, २१३३ यक्षमनाशन, ३१० शानुवशिक रोग दूर करना ।

८ दीर्घमायु— ११३० आयुष्यवधेन, ११३५ बल और दीर्घमायुष्य, २१२८-२९ दीर्घमायुष्य, ३१११ हवनसे दीर्घमायुष्य ।

९ धन— ३११५ वाणिज्यसे धनकी प्राप्ति, ३१२४ समृद्धि की प्राप्ति ।

१० पापसे मुक्ति— १११० पापसे मुक्ति, ३१३१ पापसे निवृत्ति, २११० दुर्गतिसे वचना, २११४ विपत्ति को हटाना ।

११ तेजस्विता— ११९, ३१२० वर्च प्राप्ति ।

१२ यज्ञ— २१३५ यज्ञमें आत्मसमर्पण ।

१३ स्नेहटन— १११५ सपत्न यज्ञ, ११८, ३१३० राष्ट्रीय पुकता ।

१४ सुगमाप्ति— ११२६ सुगमाप्ति ।

१५ आत्मरक्षण— २१३०, १८ आत्मरक्षण बल ।

१६ निर्भयता— २११५ निर्भयकीर्तन ।

१७ वीर— ३१४ वीर पुत्र्य, ३१३२ वीरपुत्र ।

१८ सम्बुध्य— ३१२० सम्बुध्यकी शिक्षा ।

१९ श्रेष्ठमनियथ— ३१९ श्रेष्ठ दूर करना ।

२० शुद्धता— २११९-२३ शुद्धि ।

२१ गृहनिर्माण— ३११२ गृहनिर्माण, ३११४ गोशाला ।

२७ धर्म— ११३-८ धर्मप्रचार ।

२८ जल— ११४, ५, ६, ३२, ३११३ जल ।

२९ काम— ३१२१ कामाग्रिका शमन, ३१३५ कामका याग ।

३० कृषि— ३११७ कृषिसे सुख ।

३१ प्रसूति— ११११ सुख प्रसूति ।

३२ मणि-धारण— २१४ जगिहमणि ।

३३ शाय— २१० शायको कौटाला ।

३४ वनस्पति— २१२५ पृथिवीपर्वी, ३११८ वनस्पति ।

३५ पशु— ३१२८ पशुस्वास्थ्य रक्षण ।

३६ पतिपत्नी— २१३६ विवाह संगत कार्य, २१३० पतिपत्नीका प्रेम ।

३७ काल— ३११० कालका यज्ञ ।

३८ रक्तघ्राय— १११० रक्तघ्राय बद्ध करना ।

३९ चोर डाकू— २११६ चोरनाशन, १११९ छद्मनाशन, ११२८ दुष्टनाशन, २१२४ डाकूमोकी असफलता ।

इस तरह सूक्तोंकी विषयानुसार व्यवस्था की जाय तो इस व्यवस्थासे वैदिक सूक्तोंका बोध बीस और सुखसे हो सकता है । भाषा है कि पाठकगण इसका विचार करेंगे । हमने इस समय जैसी सूक्तोंकी व्यवस्था है वैसी ही रखी है ।

वैदिक सूक्तियाँ

इस समय विभागमें ३ कार्यक्षेत्रोंके सब सूक्त आगये हैं वे ऐसे हैं—

प्रथम	३१४ सूक्त	३५ मंत्रसंख्या	१५३ पृष्ठसंख्या	१२०
द्वितीय	" "	३६ " "	२०० " "	१४८
तृतीय	" "	३७ " "	२३० " "	२४८
		१०२	५८०	५१६

गमरूप रहते हैं। जैसा बीजमें प्रगट होता है, वैसे मंत्रमें सुभाषित होते हैं। पाठक इनका विचार करें और प्रयोगमें भी ला सकते हैं। व्याख्यानमें छेछोंमें तथा अन्यप्रकार इनका बहुत उपयोग होसकता है और जितना इनका उपयोग होगा उतना वेद व्यवहारमें लाया गया वह सिद्ध हो सकता है।

इसके नीचे हम इन तीनों काण्डोंके सुभाषित देते हैं—

परमेश्वर

इन तीन काण्डोंमें परमेश्वर विषयक सुभाषित ये हैं—

यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ।

अ. २।१।३

वह ईश्वर सब अन्य देवोंके नामोंको धारण करता है, वह एक ही सत्ताक प्रभु है। उस प्रश्न पूछने योग्य परमेश्वरके पास सब भुवन आश्रयार्थ जाते हैं।

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यत् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।

अ. २।१।१

जहाँ सब विद्वत् एकरूप होता है और जो हृदयकी गुहामें रहता है उसको ज्ञानी भक्त जानता है।

स नः पिता जनिता स उत बंधुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।

अ. २।१।३

‘वह परमेश्वर हमारा पिता और जनक है, वही बंधु भी है। वह सब भुवनों और स्थानोंको जानता है।

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।

अ. २।१।५

सत्यके अमृतके सुखमय तन्तुको देखनेके लिये सब भुवनोंमें मैं घूम आया हूँ। सर्वत्र इस सुखस्वरूप जगत् नारमरूप इस तन्तुको मैंने देखा है।

दिव्यो गंधर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विध्वीह्यः ।

अ. २।२।१

भुवनका एक ही दिव्य गंधर्व स्वामी है जो नमस्कारके योग्य है और प्रजाजनोंकी स्तुति करने योग्य है।

मृडाग्रन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवः ।

अ. २।२।२

भुवनका एक ही स्वामी जो नमस्कारके योग्य है, जो संशय है वही सत्ताक आचार सबको सुखी करे।

यद्य देवा अमृतमानशानाः समाने योनाय- ध्यैरयन्त ।

अ. २।१।५

जहाँ अमृत पीनेवाले देव उस एक आश्रय स्थानमें रहते हैं। (वह जगत् परमेश्वरका आश्रय स्थान है।)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रायरुणा प्रातरग्निना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥

अ. २।१।१

प्रातः समय अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विन, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्रको बुलाते हैं, इनकी प्रार्थना करते हैं। (एक देवके ये अनेक गुणबोधक नाम हैं।)

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्य उत मध्ये अह्नाम् । उतोदितौ मघवत्सूर्यस्य यद्यं देवानां सुमती स्याम ॥ ४ ॥

अ. २।१।४

हम अब भाग्यवान् हों, सूर्यकाळ जयवा दिनके मध्यमें, सूर्यके उदयके समय भाग्यवान् हों। हम देवोंकी सुमतिमें रहें।

तं त्वा योमि ब्रह्मणा दिव्य देव ।

अ. २।२।१

हे दिव्य देव । तेरे साथ ज्ञानसे मैं संयुक्त होता हूँ।

अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाताः ।

अ. २।४।३

सजातीय लोग हविष्य ब्रह्मके साथ तेरे समीप आजावें।

उपसद्यो नमस्यो मघेह ।

अ. २।४।१

यहाँ पास जाने योग्य तथा नमस्कार काने योग्य हो।

नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ।

अ. २।२।१

तेरा स्थान शुद्धमें है, तुझे मैं नमस्कार करता हूँ।

अग्निं पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितृपितासु ।

इसके तीन पाद हृदयकी गुहामें हैं, जो इनको जानता है वह पिताका भी पिता अर्थात् बड़ा होता है।

परि आवापृथिवीं सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथम- जामृतस्य ।

अ. २।१।४

आवापृथिवीमें मैं सर्वत्र घूम आया हूँ और सत्यके प्रथम प्रवर्तक— परमेश्वरकी मैं उपासना सर्वत्र देखता हूँ।

प्र तद्वाचं दमृतस्य विद्वान् गंधर्वो धाम परमं गुहा यत् ।

अ. २।१।२

जो हृदयकी गुहामें है वह अमृतका धेध स्थान विद्वान् वक्ता ही जानकर उसका वजन का सकता है।

स देवान् यक्षस्त उ कल्पयताद्विशाः । अ ३।११४
वह देवोंका यजन करता है, वह निश्चयसे प्रजाओंको
समर्प करता है ।

यज्ञस्य चक्षुः, प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण
मनसा जुहोमि । अ ३।२५।५

यह प्रभु यज्ञका आँसू है, सयका भरण कर्ता, और
यज्ञका मुख है । वाणी कान और मनमें मैं उसका यजन
करता हूँ ।

दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यवक् अवयाता हरस्तो
दैव्यस्य । अ ३।१।२

ईश्वर धड़ोकरे रहता है, वह पूज्य है, सूर्यके समान
तेजस्वी है और दैवी आपत्तियोंको दूर करनेवाला वही
प्रभु है ।

ये मूर्त्तियाँ बारबार पढ़नेसे, कण्ठ करनेसे, बारबार
मनन करनेसे परमेश्वर विषयक वैदिक मिथ्यामत ठाकाल
भवानमें आसकता है । देखिये—

यो देवानां नामघा— वह देवोंके नाम धारण करने-
वाला है ।

ते सं प्रश्ने भुपना यन्ति सर्वा— सब भुवन उस
पूछने योग्य प्रभुके पास जाते हैं ।

येनस्तपदयत्— शशी उसको देखता है ।

परमं गुहा यत्— ओ हृदयके गुह स्थानमें रहता है ।

म न पिता जनिता— वह रक्षक और ऋषि
करनेवाला है ।

घामानि पेद भुवनानि यिदा— सब भुवनों और
स्वाभोंको वह जानता है ।

प्रतप्य मनुं यित्तं ददो कं— सुमदायक पैदा
हुआ सत्यका मनु— परमात्मा है उसको मैं देखता हूँ ।

भुवनस्य परपतिः— वह भुवनोंका एक पति है ।

एष एव नमस्यः— वह एकही नमस्कार करने
योग्य है ।

प्रातर्भगं— प्रातः काल भाग्यवान् प्रभुकी भक्ति करते हैं ।

उपसद्यो भवेद्— यहाँ पास जाने योग्य हो ।

दिवि ते सघस्यं— आकाशमें तेरा स्थान है ।

त्रोणि पदा निहिता गुहास्य— इसके तीन पाद
उदिते हैं ।

अमृतस्य विद्वान्— अमृतका जाननेवाला अन्य है ।

घाम परमं गुहा यत्— परम घाम हृदयमें है ।

स उ कल्पयताद्विशाः— वह प्रभु प्रजाओंको समर्प
यनाता है ।

अवयाता हरस्तो दैव्यस्य— दैवी दु.खोंको वह
प्रभु दूर करता है ।

यहाँ ओ मूर्त्तियाँ दी हैं । उनके ये टुकड़े हैं । ये भी
मूर्त्तियाँ ही हैं और ये बारबार भजन करने योग्य हैं ।

'एक एव नमस्यः' प्रभु अकेला एकही नमस्कार करने
योग्य है । 'दिवि ते सघस्यं' आकाशमें तेरा स्थान है ।

'अवयाता हरस्तो दैव्यस्य' दैवी दु.खोंको दूर करने-
वाला वह प्रभु है । ऐसे वेदमंत्रोंके टुकड़े भजन करनेके होते
हैं । अकेला अपने मनमें इनका भजन करे, अथवा समाजमें

सैकड़ों और हजारों मनुष्य अर्घके साथ इन वचनोंका भजन
करें । इस तरहका भजन करनेके लिये ही ये टुकड़े हैं ।

जिनकी वेदोंपर श्रद्धा है वे अर्घपर भवान रखते हुए इन
वचनोंका भजन करें । यह भजन मनमें भी होता है और

वाद्यस्वरमें सामूहिक भी हो जाता है । ऐसे अर्घसहित
भजन होने लगे तो ये मंत्रभाग सबके मनमें स्थिर होते हैं,

और इनका उपयोग बोलने बालनेके समय होनेकी सुविधा
होती है ।

पाठक मनमें देने भजन करके देखें, भजन करनेके समय
अर्घको अपने मनमें पूर्ण शक्तिसे भरपूर भरकर रखें, उस

मंत्रके आगते अपना मन भरपूर भरा देना, जोतवोल भरा
है ऐसा भाव मनमें सुरिख रखें । ऐसा भजन मनमें कर-

नेसे जैसा काम व्यक्तिको होता है वैसा ही काम ये ही

इंश्वर विश्वका शासक है, जो शासक होता है वह राजा ही होता है, इंश्वर शासक है और निर्दोष शासक है। अतः वह हमारे शासकोंके लिये आदर्श है। इस दृष्टिसे इंश्वरके गुण हमारे शासकोंमें देखने योग्य हैं। वे इस तरह देखें जा सकते हैं—

शासकका वर्णन

वेदमें जो वर्णन है उन मंत्रोंमें शासक, राजा, अधिकारीका वर्णन करनेवाले सुभाषित ये हैं—

सर्वस्त्वा राजन् प्रदिशो ह्यन्तु । अ. ३।१।१
हे राजन् ! सब दिशा उपदिशा (ओमें रहनेवाले प्रजाजन) तुझे (अपने रक्षणके लिये) बुलावें।

तास्त्या संविदाना ह्यन्तु । अ. ३।१।२
वे सब प्रजापति मिलकर एकमतसे तुझे बुलावें।
त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः
पञ्च देवाः । अ. ३।१।३

तुझे ये प्रजापति, तुझे ये पांच दिशाओंमें रहनेवाली दिव्य प्रजापति राज्यरक्षणके लिये स्वीकार करें।

आ त्वा गन्तामः । अ. ३।१।४
हे राजन् ! तेरे पास राष्ट्र आगया है।

सज्जतानां श्रेष्ठ आ पेक्षेनम् । अ. ३।१।५
अपनी जातियोंमें सब स्थानपर इसकी रखो।

वर्षन् राष्ट्रस्य ककुद्दि अयस्व, ततो न उग्रो
विभजा वसूनि । अ. ३।१।६

राष्ट्रके सब स्थानमें रहकर, और वहांसे सबके लिये धनका विभाग कर दो।

माह विज्यां पतिरेकराह त्वं विराज । अ. ३।१।७
प्रजाओंका मुख्य स्वामी एक राजा होकर, तू विशालमान् हो।

स्वस्तिदा विष्ठां पतिर्वृष्टहा विमृधो वशी ।
अ. ३।१।८

प्रजापालक कल्याण करनेवाला, शत्रुनाशक और घातकोंको वश करनेवाला हो।

ग्रहणस्पतेऽग्नि राष्ट्राय वर्धय । अ. ३।१।९
हे शानी पुरुष ! राष्ट्रके हित करनेके लिये बढ़ाओ।

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।
उपस्तान् पर्णे मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वन्मृतो जनान् ।
अ. ३।१।१०

जो राजा और राजाओंको करनेवाले, सूत तथा ग्राम-नेता हैं वे पर्णमण्डे ! इन सबकी मेरे समीप उपस्थित कर (उनकी सहायता मुझे प्राप्त हो ऐसा कर।)

अहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा । अ. ३।१।११
मैं शत्रुका नाश करनेवाला, शत्रुओंका वध करनेवाला तथा शत्रुरहित होऊँ।

अहं राष्ट्रस्याभीयर्गे निजो भूयासमुत्तमः ।
अ. ३।१।१२

मैं राष्ट्रके भात पुरुषोंमें उत्तम निज बनकर रहूँ।
अथा मनो वसुदेवाय कृणुष्व । अ. ३।१।१३

अपना मन वसुदेवके लिये अनुकूल बनाओ।
क्षत्रेणाश्वेन स्वेन संरभस्व । अ. ३।१।१४

हे अश्व ! अपने क्षात्रतेजसे उत्साहित हो।
अति निहो, अति सृघो, अत्यचिन्तो, अतिद्विषः ।
अ. ३।१।१५

मारपीट करनेकी वृत्तिसे दूर रह, द्विषकोंसे दूर रह, पारीवृत्तिसे दूर हो, द्वेष करनेवालोंसे दूर रहो।

तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विदवतः ।
अ. ३।१।१६

उस सहस्रकाण्डवालेसे सब ओरसे हमारा रक्षण कर।
शस्त्रारमेतु शपथः । अ. ३।१।१७

शपथ देनेवालेके पास ही उसका शपथ चला लावे।
संशितं म इदं ग्रह संशितं वीर्यं यलम् ।

संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येयामसि पुरोहितः ।
अ. ३।१।१८

मेरा यह ज्ञान तेजस्वी है, मेरा वीर्य और बल तेजस्वी है। जिनका मैं विजयी पुरोहित हूँ उनका तेजस्वी और क्षीण न होनेवाला क्षात्रतेज बढता रहे।

क्षिणामि महाणाऽमित्रानुन्नयामि स्वानहम् ।
अ. ३।१।१९

मैं शत्रुसे शत्रुओंका नाश करता हूँ और अपने लोगोंको मैं उन्नत करता हूँ।

एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषां चित्तं विश्वेऽ-
वन्तु देवाः । अ. ३।१।२०

इनका क्षात्रतेज अक्षय हो। इनका विजयी चित्त सब देव सुरक्षित रखे।

जाया. पुत्रा. सुमनसो भवन्तु यहुं वलिं प्रति
पश्यास उग्रः । अ. ३।५।३
छियां और पुत्र उत्तम मनवाले हों । और उग्रवीर बन-
कर बहुत करमारको देखें ।

पथ्या रेवतीर्वृथा विरूपाः सर्वाः सगम्य
परिपस्ते अकन् । अ. ३।५।७
सम्प्राप्ये चकनेवाली अनेक प्रकारकी रंगरूपवाली
प्रजायें मिलकर तुम्हें श्रेष्ठ स्थानपर स्थापित करवीं हैं ।

वलीं वलेन प्रमृणन् स्सपत्नान् । अ. ३।५।१
यह बलवान् वीर अपने बलसे शत्रुओंका नाश करता है ।
ये धीवानो रथकाराः कर्मार ये मनीषिणः ।
उपस्तीन् पर्णं मह्यं सर्वान् कृष्णभित्तोजनान् ॥

अ. ३।५।६
जो बुद्धिमान् है, जो रथकार है, जो कर्म करनेवाले
लुदार हैं, और विद्वान् हैं । हे पर्णमणे ! तु उन सब जनोंको
मेरे समीप उपस्थित कर (बुद्धिमानोंकी सहायता मुझे प्राप्त
हो ऐसा कर ।)

सज्जानानां मध्यमेष्टा राजानमे विहव्यो दीदिद्वीह ।
अ. ३।६।४

सज्जातीयोंमें मध्यम स्थानमें बैठनेवाला हो, और राजाओं,
राजपुरुषोंके द्वारा बुकाने योग्य होकर, यहाँ प्रकाशित
होना रह ।

शास इत्या महीं अस्यामित्रसादो अस्तृतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥

अ. १।२०।४
शत्रुओंका नाश करनेवाला, अपराभूत ऐसा यह महान्
शासक है, मित्रकामित्र मारा नहीं जाता और मित्रका
मित्र कभी पराभूत नहीं होता ।

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारी ते प्रजापते ।
ताविष्टा वधनां स्फार्ति यद् भूमानमक्षितम् ॥

अ. ३।२५।७
हे प्रजापालक ! पाप छाना और समृद्ध करना ये दोनों
कार्य तु कर, वे कार्य यहाँ वृद्धिको देने और बहुत अक्षय
मायूनाको प्राप्त हो ।

यस्ते तपः०, दूरः०, मार्चिः०, शोचिः०, तेजः ।
तेन ते प्रतिपद्योऽस्मान् श्रेष्ठियं ययं द्विभ्यः ।

अ. ३।१९-२३।१-५

जो तेरी तपशक्ति, दूरशक्ति, तेजशक्ति, प्रकाशशक्ति-
और तेजशक्ति है, उससे उनको कष्ट दे जो हमसयको
कष्ट देता है और जिसका हमसब द्वेष करते हैं ।

अभूर्गृष्टीनामभिदाक्षिपाया उ । अ. २।१३।३
विनाशसे मनुष्योंका रक्षण करनेवाला हो ।
विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि ।

अ. २।१६।५
हे विश्वके भरण कर्ता ! संपूर्णपोषण शक्तिसे मेरा
रक्षण कर ।

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य पोषणं
यमस्यामी सभासद् । अ. ३।२५।१
जिस तरह नियमसे चकनेवाले राजाके सभाके ये सभा-
सद इष्ट और पूर्तका लोकहवा भाग वृषक कर रूपसे
रखते हैं ।

यासां राजा वदणो याति मध्ये सत्यानृते
अवपश्यन् जनानाम् । अ. १।३३।२
जिनका राजा वदण कोर्तके सत्य वा असत्य जाचरण
देखता हुआ जाता है ।

ये ऐसे संज्ञभाग इस विषयमें विचार करने योग्य हैं ।
इनमें और छोटे ध्यानमें सदा रखने योग्य सुभाषित ये हैं ।
त्वां विशो वृणतां राज्याय— सब प्रजा राज्यके
लिखे तुझे शासक करके स्वीकार करें ।
वर्धन् राष्ट्रस्य ककुदिश्रयस्य— राष्ट्रके श्रेष्ठ स्थान
पर रह ।

विशां पतिरेकराट् त्व विराज— प्रजापालक एक
राजा होकर तू सुशोभित हो ।
स्वस्तिदा विशांपति— यह प्रजापालक कल्याण
कामेवाला हो ।

अभि राष्ट्राय वर्धय— राष्ट्रके दित करनेके लिये धन
कर ।

त्वं सर्वान् कृण्वभित्तोजनान्— तू सब जनोंको
अपने चारों ओर इकट्ठा कर ।
अद् शत्रुहोऽस्तानि— मैं शत्रुका नाश करनेवाला
होऊगा ।

अद् राष्ट्रस्याभीरगो निजो भूयास्— मैं राष्ट्रके
उत्तम पुरुषोंमें निज होकर रहूँगा ।

अनि द्विष— द्वेष करनेवालोंको दूर करता हूँ ।

अति स्त्रियः— हिसकोको दूर करता हूँ।

परिणः पाहि विभ्यतः— चारों ओरसे हमारी रक्षा कर।

संशितं धीयं यत्नम्— हमारा धीयं और यत्न सीधे हो।

संशितं क्षत्रमजरमस्तु— क्षात्रबल सीधे होकर क्षीण न हो।

क्षिणामि ब्रह्मणाऽमित्रान्— शत्रुओंको ज्ञानसे क्षीण करता हूँ।

उन्नयामि स्थानहम्— स्वकीयोंकी उन्नति करता हूँ।

क्षत्रमजरमस्तु— क्षात्रवैज क्षीण न हो।

जिष्ण्वेषां चित्तम्— इनका चित्त विजयी हो।

जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु— जी, पुत्र उत्तम मनवाले हों।

यत्नी बलेन प्रमृणन् सपरमान्— बलवान् बलसे शत्रुओंको मारे।

सजातानां मध्यमेष्टाः— स्वजातीयोंके मध्यमें बैठने वाला हो।

शास ह्यथा महौ असि— तू शासक ऐसा मझा हूँ।

अमित्रसादो अस्तुतः— शत्रुको पराभूत करनेवाला और स्वयं अपराजित हो।

न यस्य हन्यते सखा— जिसका मित्र मारा नहीं जाता।

उपोहश्च समूहश्च— पात लाना और समूह करना (ये दो कार्य करने योग्य हैं।)

इस प्रकार इन सुभाषितोंमें मनीष्य बचन हैं। ये बार-बार उद्धारित करनेसे बड़ा आनन्द प्राप्त हो सकता है। 'स्वस्तिदा विशांपतिः' यह वचन बार-बार उच्चारणसे राजाके कल्याण स्थानमें जा सकते हैं और परमेश्वरके गुण भी मनमें स्थिर होते हैं। परमेश्वर 'स्वस्ति-दा' है अर्थात् कल्याण करनेवाला है। सबका कल्याण वह करता है। जो परमेश्वरका पुत्र है वही गुण राजामें तथा साधारण प्रजाजनमें भी देखना चाहिये। अर्थात् हर एक अनुरूप 'स्वस्ति-दा' कल्याण करनेवाला हो, राजपका अधिकारी कल्याण करनेवाला हो, राजा भी प्रजाका कल्याण करनेवाला हो। परमेश्वर तो सबका कल्याण करनेवाला है ॥

'राष्ट्राय वर्धय' राष्ट्रका वर्धन कर। राष्ट्रकी उन्नति कर। राष्ट्रका अभ्युदय हो ऐसा कर। 'अदं शत्रुहो अस्तानि' मैं शत्रुको मारूंगा। शत्रुको दूर करना हर एकका कर्तव्य है। शत्रु तो व्यक्ति, समाजके, धर्मके तथा राष्ट्रके अनेक प्रकारके होते हैं। उन सब शत्रुओंको दूर करना योग्य है।

'जिष्ण्वेषां चित्तं' सब मनुष्योंका चित्त जयशाली हो, विजयी हो। कभी चित्त निरुसाही न हो। 'न यस्य हन्यते सखा' जिसका मित्र मारा नहीं जाता ऐसा परमेश्वर है। राजा भी ऐसा हो, और मनुष्य भी ऐसा हो।

इस प्रकार इन सुभाषितोंका भजन, मनन तथा अपने जीवनमें उल्लेख करना करना चाहिये। ईश्वर, विश्वदासक है और राजाके गुणधर्म इनमें प्रकट हुए हैं। शासन हुआ तो वहाँ पुराह्वोसे, शत्रुओंसे युद्ध करना ही पड़ता है। इस कारण अब युद्धके विषयके सुभाषित देखिये—

युद्ध

दुरोका क्षमन करनेके किये जायूत रहकर युद्ध करना चाहिये, इस विषयके ये सुभाषित हैं—

स्वे गये आरूह्यप्रयुच्छन्। अ. २।६।३

अपने घरमें प्रमाद न करता हुआ जाग्रत रह।

प्रेता, जयता, नर उमा यः सन्तु बाहवः।

अ. ३।१९।६

हे बीरो! जागे बढो, विजय कमानो, आपके बाहु चौरे करनेवाले हों।

तेऽधराश्रः प्र प्लवतां छिन्ना नौरिव यन्धनात्।

अ. ३।६।७

जैसी नौका बंधनसे छूटनेपर बह जाती है, उस तरह वे शत्रु अधोमार्गसे नीचेकी ओर चले जाय।

अमी ये चित्रता स्थन ताम्बः स्तं नमयामसि।

अ. ३।८।५

जो ये विपद कर्म करनेवाले हैं उनको मैं एक विचार-वाले करता हूँ।

नश्येतेतः सदान्वः। अ. २।११।६

यहाँसे दानववृत्तियाँ निवृत्त हों।

वि त्वमग्रे आराट्याः। अ. ३।३।१।

हे अग्ने! तू शत्रुसे दूर रहता है। शत्रु तुमारे पास नहीं आसकता।

योऽस्मान्द्वेष्टि ये वय द्विधमस्तं वो जग्मे दधम् ।

अ. ३।१७।१-६

जो एक हम सबका द्वेष करता है और जिस अन्धेलेका हम सब द्वेष करते हैं उसको हे प्रभो ! तुम्हारे जबहेमें देते हैं ।

समहमेवां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।

वृध्नामि शत्रूणां वाहननेन हविषाऽहम् ॥

अ. ३।१७।२

हमका राष्ट्र बल, वीर्य और सामर्थ्यसे मैं तेजस्वी बनाता हूँ । इस हवनसे मैं शत्रुओंके बाहुओंको काटता हूँ ।

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्रेस्तीक्ष्णतरा उत ।

इन्द्रस्य यज्ञास्तीक्ष्णीयास्तो येवांमस्मि पुरोहितः ॥

अ. ३।१७।४

जिनका मैं पुरोहित हूँ उनके साथ अन्न परकीसे तीक्ष्ण, शस्त्रिमे तीक्ष्ण और इन्द्रके यज्ञसे जो धीले बनाता हूँ ।

उद्धर्पन्ता मघयन् वाजिनाम्युद्धीराणां जयतामेतु घोषः । अ. ३।१७।६

हे इन्द्र ! उनके बल उत्तेजित हों । बिजयों कीरोंका घोष ऊपर उठे ।

तीक्ष्णयशोऽवलघ्नयशो हतोप्रायुधा अवलानु-
प्रयाहयः । अ. ३।१७।७

हे तीक्ष्ण बाणवालो ! उग्र आयुर्घोषाओ ! उग्र बाहु चाड़े कीरों । निर्बल धनुष्यवाले निर्बल वीरोंको मारो ।

एता तान् सर्वांन् निर्मगिध यानह द्वेष्टि ये च
माम् । अ. ३।१७।८

इस तरह सब शत्रुओंका नाश कर, जिनका मैं द्वेष करता हूँ और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

प्रते यज्ञः प्रमुणस्तेतु दाशून् । अ. ३।१७।९

तेरा यज्ञ शत्रुओंको काटता हुआ भागे भेदे ।

इन्द्र सेना मोहयामिभ्राणाम् । अ. ३।१७।१०

हे इन्द्र ! शत्रुओंकी सेनाको मोहित कर ।

इन्द्र चित्तानि मोहयप्रार्थाकृत्या चर ।

अग्नेमीनस्य धाज्या तान् विप्रूचो विनाशय ॥

अ. ३।१७।११

दे रात्र ! शत्रुके चित्तोंको मोहित करने शुभ मन्त्रवचने भाष हमारे पास आ । और अग्नि और वायुके वेगसे शत्रुको ज्यों ज्यों विनष्ट कर ।

स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणव-
जातवेदाः । अ. ३।१७।१२

वह हमारा वीर शत्रुके चित्तोंको मोहित करे और उनको हस्तहीन जैसे करे । मोहित होने कारण कर्तव्य अकर्तव्यका विचार करनेकी शक्ति शत्रुमें न रहे ऐसा करे ।

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृणानाङ्गान्यध्वे
परेहि । अ. ३।१७।१३

हे ग्वाधो ! तू इनके चित्तोंको मोहित करके, इनके अवयवोंको जकड़ कर दूरतक बली जा ।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणवजात-
वेदा । अ. ३।१७।१४

वह वीर शत्रुओंकी सेनाको मोहित करे और उनको हस्तहीन करे ।

अयमग्निर्मूढयानि चित्तानि वो हृदि ।

वि वो घमत्योरुस्तः प्र वो घमतु सर्वतः ।

अ. ३।१७।१५

शत्रुके हृदयके विचारोंको यह अग्नी मोहित करे । शत्रुको घरसे बाहर निकाल देवे और शत्रुको सब ओरसे हटा देवे ।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिद्वहन्मिवास्ति-
मरातिम् । अ. ३।१७।१६

हमारा तेजस्वी तथा विद्वान् दूत घातपात करनेवाली शत्रुसेनाको जलाता हुआ बले ।

अग्नि प्रेहि, निर्वेद हस्तु शोकैर्प्राद्यामिभ्रांस्त
मस्ता विध्य शत्रून् । अ. ३।१७।१७

भागें बट, हृदयोंको शोकसे जला दो, जकड़नेवाले रोगसे, तथा मूर्खसे शत्रुओंको बीध हो ।

यूयमुग्रा मरुत ईदशे स्यामि प्रेतमृणत सहध्वं ।
अ. ३।१७।१८

हे मरुतक छद्मेवाले वीरो ! तुम ऐसे उग्र वीर हो, इसलिये भागे बटो, काटो और जीत लो ।

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यक्षयण मे दा ।

सपत्नक्षयणमसि समत्नक्षयण मे दा ।

अरायक्षयणमसि अरायक्षयण मे दा ।

पिशाचक्षयणमसि पिशाचक्षयण मे दा ।

सदान्वक्षयणमसि सदान्वक्षयण मे दा ।

अ. ३।१७।१९-२४

वैरियों, सपरनों, निर्धनताओं, मांस भक्षकों तथा आसुरी
वृत्तियोंको नाशका सामर्थ्य तुझमें है, यह सामर्थ्य सुझे दो ।

भूतपतिर्निरजतु, इन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।

गृहस्य युध्म आसीनास्ता इन्द्रो यज्ञेणाधितिष्ठतु ।

अ २।१४

भूतपति राजा राक्षसी वृत्तियोंको यहाँसे दूर करे ।
घरकी जड़में जो बुराहवा हों उनको इन्द्र यज्ञसे दूर दहा
देवे ।

विपूचेतु कुन्तती पिनाकमिव विभ्रती ।

विध्वक् पुनर्भुवा मनः । अ १।२७।२

धनुष्य धागण करती हुई, काटती हुई धीरसेना चले ओ
घातुसेनाका मन विचलित करे ।

आरे अस्मा यमस्यथ । अ १।२६।१

किसीने मारा पाथर हमसे दूर हो ।

अधमं गमया तमो यो अस्मौ अभिर्दासति ।

अ १।२१।२

जो हमें दास करना चाहता है उसको हीन अंधकारमें
पहुँचा दो ।

अपेन्द्र द्विपते मनोऽप जिज्यासतो घघम् ।

अ १।२१।४

हे प्रभो ! हे धीर ! द्विपका मन बटल दे और हमारे
नाश करनेवालेके शत्रुको दूर कर ।

इदं विष्कंधं सहते इदं पाघते अग्निः ।

अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥

अ. १।१६।३

यह सीसा दुष्टका परामव करता है, यह शत्रुकी बाध
करता है, पिशाचोंकी सब जातियाँ हमसे परागृत होती
हैं । (सीसा-सीसेकी गोली शत्रुका नाश करती है ।

आराच्छत्थ्याऽस्मद्विपूचीरिन्द्र पातय ।

अ १।१९।१

हे इन्द्र ! चारों ओर फैलनेवाले बाण हमसे दूर आकर
गिरे ।

यो नः स्यो यो अरणः सजात उत निष्ठयो यो
अस्मानभिदासति ।

रुद्र शरव्ययैतान् ममामित्रान् विविधयतु ।

अ १।१९।३

जो अपना, जो परकीय, जो सजातीय, अथवा जो हीन
जातीका हमको दास करना चाहता है, हमें तु छे देता है,
ऐसे मेरे शत्रुओंको रुद्र अपने बाणोंसे विधे ।

मा नो विददमिभा, मो अशस्तिः । अ १।२०।१
परामव हमारे पास न आवे, अपशस्त्रता हमारे समीप
न आवे ।

इतश्च यदमुतश्च यदधं वरुण यापय ।

अ १।२०।३

हे वरुण ! यहाँसे और वहाँसे जो शस्त्र हैं उनको
दूर कर ।

सीस म इन्द्रः प्रायच्छत्तर्दग यातु-चातनम् ।

अ १।१६।२

‘सीसेकी गोली सुझे इन्द्रने दी, वह यातना देनेवाले
दुष्टोंको दूर करती है ।

विलपन्तु यातुधाना अग्निणो ये किमीदिनः ।

अ १।७।३

जो यातना देनेवाले, सर्व भक्षक, घातक हैं वे विछाप
करें । (दूसरोंको यातना देना, सब कुछ खा जाना, और
सदा कथा खाऊ ऐसा बोलना विछाप करनेवाला है ।

त्वमग्ने यातुधानानुषयद्धा इहावह । अ. १।७।७

हे अग्ने ! तू यातना देनेवालोंकी बाधकर यहा ला ।

यातुधानस्य प्रजां जहि नयस्व च । अ १।८।३

यातना देनेवाले शत्रुकी प्रजाका परामव कर और उसको
ले चक ।

यवा मे शत्रोर्मूर्धान विप्रग्मिन्धि सहस्य च ।

अ. ३।६।६

इस तरह मेरे शत्रुके सिर तोड़ दो और उसको जीत लो ।
म दन्तु शत्रून् मामकान् धानहं द्वेभि य च माम् ।

अ ३।६।१, २।५

यह मेरे शत्रुओंका नाश करे, जिनका मैं द्वेष करता हूँ
और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

अमित्रसेनां मधवदम्पाऽऽज्यतीमभि ।

युव तानिन्द्र वृत्रहन्निश्च ददत्तं प्रति ॥

अ ३।१।३

हे इन्द्र ! शत्रुवत् नाचान करनेवाली शत्रुसेनाको इन्द्र
और अग्नि तुम दोनों मिलकर जला दो ।

योऽसान्द्रेष्टि यं वयं द्विप्पस्तं वो जम्मे दध्मः ।

अ. ३।२०।१-६

जो एक हम सबका द्वेप करता है और जिस अकेलेका हम सब द्वेप करते हैं उसको दे प्रभो ! तुम्हारे जबड़ेमें देते हैं ।

समहमेपां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं वलम् ।

वृश्चामि शत्रूणां याह्नन्नेन हविषाऽहम् ॥

अ. ३।१९।२

हमका राष्ट्र बल, वीर्य और सामर्थ्यसे मैं तेजस्वी बनता हूँ । इस हवनसे मैं शत्रुओंके बाहूओंको काटता हूँ ।

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्रेस्ताक्ष्णतरा उत ।

इन्द्रन्य घज्रास्ताक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥

अ. ३।१९।४

जिनका मैं पुरोहित हूँ, उनके शस्त्र अस्त्र परशीसे तीक्ष्ण, अग्निसे तीक्ष्ण और इन्द्रके वज्रसे भो तोले बनता हूँ ।

उद्धर्पन्तां मध्वन् वाजिनाभ्युद्धीराणां जयतामेतु घोषः । अ. ३।१९।६

हे इन्द्र ! उनके बल उत्तेजित हों । विजयी वीरोंका घोष ऊपर उठे ।

तीक्ष्णेपयोऽवलघ्नव्यवो हतोप्रायुषा अवलानु-
प्रयाहयः । अ. ३।१९।७

हे तीक्ष्ण बाणशाली ! उग्र आयुर्धोवालो ! उग्र बाहु-
वाले वीरों ! निर्बल घनुष्यवालं निर्बल वीरोंको मारो ।

एषा तान् सर्वान् निर्मेध यानहं द्वेभि ये च
माम् । अ. ३।१९।८

इस तरह सब शत्रुओंका नाश कर, जिनका मैं द्वेप
करता हूँ और जो मेरा द्वेप करते हैं ।

प्रते यजः प्रमणन्ते शत्रून् । अ. ३।१९।९

परा यजः शत्रुओंको काटता हुआ आगे बढ़े ।

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् । अ. ३।१९।१०

हे इन्द्र ! शत्रुओंकी सेनाको मोहित कर ।

इन्द्र चित्तानि मोहयप्रशान्ताकृत्या चर ।

अग्निर्मानस्य प्राज्या तान् विवृचो विनाशय ॥

अ. ३।२०।३

हे इन्द्र ! शत्रुके चित्तोंको मोहित करके घुम संकल्पके
गाय हमारे पाप भा ! और अग्नि और वायुके वेगसे शत्रुओं
पारों को विनाश कर ।

स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणव-
जातवेदाः । अ. ३।२०।१

वह हमारा वीर शत्रुके चित्तोंको मोहित करे और इनको
हस्तहीन जैसे करे । मोहित होने कारण कर्तव्य अकर्तव्यका
विचार करनेकी शक्ति शत्रुमें न रहे ऐसा करे ।

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्तां गृणानाह्वान्यध्वे
परेहि । अ. ३।२०।५

हे व्याधी ! तू इनके चित्तोंको मोहित करके, इनके
अवयवोंको जकड़ कर दूरतक चली जा ।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणवजात-
वेदाः । अ. ३।२०।१

वह वीर शत्रुओंकी सेनाको मोहित करे और इनको
हस्तहीन करे ।

अयमग्निर्मूमुहयानि चित्तानि वो हृदि ।

वि वो धमर्योकस्तः प्र यो धमनु सर्वतः ।

अ. ३।२०।२

शत्रुके हृदयके विचारोंकी यह मप्रणी मोहित करे ।
शत्रुको घरसे बाहर निकाल देवे और शत्रुको सब ओरसे
हटा देवे ।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदृहन्नभिनास्ति-
मरातिम् । अ. ३।२०।१

हमारा तेजस्वी तथा विद्वान् दूत वातपात करनेवाली
शत्रुसेनाको जलाता हुआ चले ।

अभि मेहि, निर्दह हस्तु शोकैर्प्राणामित्रास्त-
मसा विध्य शत्रून् । अ. ३।२०।५

आगे बढ़, हृदयोंको शोकसे जला दे, जकड़नेवाले
रोगसे, तथा मृगंसे शत्रुओंको बाँध ले ।

यूयमुषा मरुत इदंसे स्यामि प्रेत मृणत सहध्वं ।

अ. ३।२०।२

हे मरनेतक लड़नेवाले वीरो ! तुम ऐसे उग्र वीर हो,
इसलिये आगे बढ़ो, काटो और जीत लो ।

आनृत्यक्षयणमसि आनृत्यक्षयणं मे दाः ।

सपत्नक्षयणमसि समनक्षयणं मे दाः ।

अरायक्षयणमसि अरायक्षयणं मे दाः ।

पिशाचक्षयणमसि पिशाचक्षयणं मे दाः ।

सद्वान्वक्षयणमसि सद्वान्वक्षयणं मे दाः ।

अ. २।१८।१-५

वैरियों, सपानों, निर्धनताओं, मांस भक्षकों तथा आसुरी
वृत्तियोंको नाशका सामर्थ्य तुझमें है, यह सामर्थ्य मुझे दो ।

भूतपतिर्निरजतु, इन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।

गृहस्थ बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधितिष्ठतु ।

अ. २।१४।४

भूतपति राजा राक्षसी वृत्तियोंको यहाँसे दूर करे ।
घरकी जड़में जो बुराईयाँ हों उनको इन्द्र वज्रसे दूर हटा
देवे ।

विपूकेषु कृन्तती पिनाकमिव विभ्रती ।

विष्वक् पुनर्भुवा मनः । अ. १।२७।२

धनुष्य धारण करती हुई, काटती हुई बीरसेना चले जो
शत्रुसेनाका मनः विचलित करे ।

आरे अस्मा यमस्यथ । अ. १।२६।१

किसीने मारा पत्थर हमसे दूर हो ।

अधर्मं गमया तमो यो अस्मा अभिर्दासति ।

अ. १।२१।२

जो हमें दास करना चाहता है उसको हीन अंधकारमें
पहुँचा दो ।

अपेन्द्र द्विपतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।

अ. १।२१।४

हे प्रभो ! हे वीर ! द्वेषिका मन बलक दे और हमारे
नाश करनेवालेके शत्रुको दूर कर ।

इदं विष्वक् संहते इदं याचते अविणः ।

अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥

अ. १।१६।३

मह सीसा दुष्टका परामत्र करता है, यह शत्रुको बाधा
करता है, पिशाचोंकी सब आसियाँ इससे परामत्र होती
हैं । (सीसा-सीसेकी गोली शत्रुका नाश करती है ।

आराच्छरव्याऽस्मद्विपूचीरिन्द्र पातथ ।

अ. १।१९।१

हे इन्द्र ! शरों और फैलनेवाले बाण हमसे दूर जाकर
गिरे ।

यो नः स्त्रो यो वरणः सजात उत निष्ठयो यो
अस्मानभिर्दासति ।

रुद्रः शरव्यपैतान् ममामित्रान् विविष्यतु ।

अ. १।१५।३

जो अपना, जो परकीय, जो सजातीय, अथवा जो हीन
जातीका हमको दास करना चाहता है, हमें दुःख देता है,
ऐसे मेरे शत्रुओंको रुद्र अपने बाणोंसे वीधे ।

मा नो विददमिमा, मो अशस्तिः । अ. १।२०।१

परामत्र हमारे पास न आवे, अवशस्त्रता हमारे समीप
न आवे ।

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यायय ।

अ. १।२०।३

हे वरुण ! यहाँसे और वहाँसे जो शस्त्र हैं उनको
दूर कर ।

सीसं म इन्द्रः प्रायच्छन्नर्दंग यातु-चातनम् ।

अ. १।१६।२

‘सीसेकी गोली मुझे इन्द्रने दी, वह यातना देनेवाले
दुष्टोंको दूर करती है ।

विलपन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमीदिनः ।

अ. १।७।३

जो यातना देनेवाले, सर्व भक्षक, घातक हैं वे बिलाप
करें । (दूसरोंको यातना देना, सब कुछ खा जाना, और
सदा क्या खाक ऐसा बोलना बिलाप करनेवाला है ।

त्वमग्रे यातुधानानुपयदा इहावह । अ. १।७।७

हे अग्रे ! तू यातना देनेवालोंकी पाँचका यहाँ ला ।

यातुधानस्य प्रजां जहि नयस्व च । अ. १।८।३

यातना देनेवाले शत्रुकी प्रजाका परामत्र कर और उसको
ले चक ।

एवा मे शत्रोर्मूर्धनि विष्वग्निमग्नि सहस्र च ।

अ. ३।६।६

इस तरह मेरे शत्रुके सिर सोड़ दो और उसको जीत लो ।
मं हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेभि यं च माम् ।

अ. ३।६।१; ३।५

वह मेरे शत्रुओंका नाश करे, जिनका मैं द्वेष करता हूँ
और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

अमित्रसेनां मघवन्नम्यान्शत्रून् यतीमभि ।

युवे तानिन्द्र वृत्रहन्मिश्रि ददत प्रति ॥

अ. ३।१।३

हे इन्द्र ! शत्रुघ्न आपाण करनेवाली शत्रुसेनाको इन्द्र
और अग्नि तुम दोनों मिश्रकर जला दो ।

इन्द्रः सेनां मोहयतु, मरुतो म्रत्वोजसा ।

चक्षुष्यमिरा दत्तां पुनरेतु पराजिता । अ. ३।१।६

इन्द्र (सेनापति) शत्रुसेनाको मोहित करें । मरुत

(सैनिक) वेगसे हमला करें । अग्नि उनकी आँखें केंवे ।

इस तरह पराभूत होकर शत्रुसेना पीछे हटे ।

विष्णुक् सत्यं कृणुहि चित्तमेवाम् । अ. ३।१।७

तस्य रीतिते इमं शत्रुओंका चित्त चारों ओरसे ब्यग्र करो ।

अज्ञेयं सर्वानाजीन् यः । अ. २।१७।६

सब युद्धोंमें मैंने बिजय प्राप्त किया है ।

अह्ना अरातिं, अविदः स्योनं, अप्यभूः भद्रे

सुष्टतस्य लोके ॥ अ. २।१७।७

कृपणताको तुमने छोड़ा है । सुखको प्राप्त किया है,

कल्याणकारी पुण्यलोकमें तू जाया है ।

अरातीनां मा तारीमः नस्तारिपुरमिमातयः ।

अ. २।७।७

अनुदार शत्रु हमारे आगे न बढें । ओ दुष्ट हैं वे आगे न बढें ।

चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्धादं पृष्टीरपि शृणीमसि ।

अ. २।७।८

दुष्ट मनुष्यके आँख और पीठ हम छोड़ देते हैं ।

मा ते रिपन्नुपस चारः । अ. २।११।२

मेरे अनुयायी बिनष्ट न हों ।

देवैर्देवैर्न मणिना जङ्घिडेन मयोभुजः ।

विष्कंधं सर्वा रक्षांसि व्यापामे सहामहे ।

अ. २।११।४

देवोंने दिये, सुप्रदायक जगिष्ठ मणिते, शोषक रोगको

तथा सब रोगश्रमियोंको हम दबा सकते हैं ।

म यद्वा, यादि दूर हरिष्यामू । अ. २।११।५

जागे बढ़, दो थोड़ीको जेतकर चलो ।

इन्द्रस्तुरापाणिमत्रो वृष यो जघान यतीर्न ।

अ. २।११।६

पान करनेवालों समान, त्वरासे हमला करनेवाला

इन्द्र धरनेवाले शत्रुको मारता रहा ।

प्रतिदद यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।

११ दद यातुधान्य । अ. १।२८।२

पानना देनेवालोंको जटा दो । अथ मूषोंको जटा दो ।

पाशना देनेवाली छिबोंको भी जटा दो ।

अभीवर्तौ अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः ।

राष्ट्रायमह्य बन्धयतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥

अ. १।२९।४

अभीवर्तमणि शत्रुका पराभव करनेवाला और दुष्टोंको

दूर करनेवाला है, राष्ट्रहितके लिये तथा शत्रुओंको पराभूत

करनेके लिये वह मणि मेरे शरीरपर बांधो ।

मेम प्रापत्पोरुपेयो यघो यः । अ. १।३०।१

जो मनुष्यनाशक शस्त्र है वह इसके पास न आवे ।

(अर्थात् यह न मरे)

असमृद्धा अघायव । अ. १।२७।२

पापी लोग समृद्ध न हों ।

आरेऽसावसदस्तु हेतिः । अ. १।२९।१

शस्त्र हमसे दूर रहे ।

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो

विदन् । अ. १।३१।१

वितेष्ट देवनेवाले शत्रु हमें न प्राप्त करें । चारों ओरसे

बेधनेवाले शत्रु हमारे पास न आवे ।

यो अथ सेम्यो यघोऽघायूनामुदीरते ।

युवं तं मित्रायरुणा असघायपतं परि ॥

अ. १।२०।२

जो आज सेबाके दूर पुरुषोंका बध पापी शत्रुओंसे हो

रहा है, हे मित्र वरुण । तुम उसको हमसे दूर कर ।

यि न इन्द्र मृधो जहि, नीचा घच्छ पृतनयतः ।

अ. १।२१।२

हे शत्रुनाशक वीर ! हमारे शत्रुओंको मार, सेम्य हम-

११ अनेवालोंको डीन स्थितिमें पहुँचाओ ।

यि मनुमिन्द्र वृषहन् अमित्रस्याभिदासत ।

अ. १।२१।३

हे शत्रुनाशक वीर ! हमारे घात करनेवाले शत्रुके दासता-

हका नाश कर ।

यरीयो यायया यघम् । अ. १।२१।४

शत्रुके शस्त्रको हमारेसे दूर कर ।

देधीमनुष्येययो ममामित्रान् यि विभ्यत ।

अ. १।१९।२

मनुष्योंसे पके गये दिव्य बाण, मेरे शत्रुओंको बाँधे ।

यातुधानान् वि लापय । अ १।७।६

यातना देनेवालोंको रुलाओ ।

नीचेः पद्यन्तामधरे भयन्तु ये नः स्मरि मघवानं
पृतन्यान् । अ १।१९।३

जो शत्रु हमारे धनवान् और विद्वान् पर सैन्य भेजते हैं
वे नीचे गिरे और भयन्त हो

एषामहमायुधा संस्थाम्येषां राष्ट्रं सुवीर वर्धयामि
अ ३।१९।५

इनके आयुध मैं तीक्ष्ण करता हूँ तथा इनका राष्ट्र उत्तम
वीरोंसे युक्त करके उत्तम करता हूँ ।

पृथग्योषा उलूलयः केतुमन्त उदीरताम् ।
अ ३।१९।६

शत्रु लेकर हमला करनेवाले वीरोंके घोष प्रथक् पृथक्
कर देंगे ।

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् म मघस्व, जघोषा घरं घरं,

मानीषां मोक्षि कश्चन । अ ३।१९।८

हे ज्ञानसे तेजस्वी बने राज । दू छोडा जानेपर दूर जा,
शत्रुओंको जीत को, भागे बढ, शत्रुके वीरोंमेंसे श्रेष्ठ-श्रेष्ठ

वीरोंको मार डाल, इनमेंसे किसीको न छोड ।

असौ या सेना मघतः परेषामस्मानेत्यभ्योजसा
स्पर्धमाना । तां विभ्यत तमसापव्रतेन यथै-

पामन्यो अभ्यं न जानात् । अ. ३।२।६

हे मघो ! वह जो शत्रुकी सेना तेजसे स्पर्धा करती
हुई हमारे ऊपर भारही है, उसको अपमत्त तमसास्त्रसे

वीथो जिससे उनमेंसे एक दूसरेको न जान सके ।

उग्रस्य मभ्योददिर्म नयामि । अ १।१०।३

उग्र ऋषिसे इसको ऊपर मैं लेजाता हूँ ।
सपत्ना असदृघरे भयन्तु । अ १।१।२,४

शत्रु हमसे नीचे रहें । शत्रुका अथ पात हो ।
जहि एषां शततर्हम् । अ. १।८।४

इन दुष्टोंका सिकंदी कष्ट देनेका साधन दूर कर, शत्रुको
पानिष कर ।
एषामिन्द्रो यज्ञेणापि शीर्षाणि वृक्षतु । अ १।७।७

इन्द्र वज्रसे इन दुष्टोंके शिर काट दे ।
मधीतु सयौ यातुमानयमस्तीत्येव । अ १।७।४

‘सब यातना देनेवाले नाकर बोलेंकी हम यहाँ हैं ।’
दस्योः हन्ता यमूयिथ । अ १।७।१

तू दस्युका विनाशक है । (दस्युका विनाश करना
योग्य है)

वि रक्षो विमृषो जहि विवृत्रस्य हनू रुच ।
अ १।२।३

राक्षसो, शत्रुओंको परामृत कर । घेरनेवाले शत्रुके
अपडे तोड ।

यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विपन् छपाति नः ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्मवर्म ममान्तरम् ।

अ १।१।२

जो सपत्न और जो असपत्न हैं, पर जो शाप देकर हमें
द्वेष करके कष्ट पहुँचाता है, सब देव उसका नाश करें ।

मेरा ना-वरिक कवच ब्रह्मज्ञान है ।
ज्ञानरूप कवच जो पहनता है, उसका उत्तम रक्षण

होता है ।
मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या । अ १।२०।१

जो द्वेष करनेवाले कुटिल हैं वे हमारे पास न आवें ।
निप्यज्जो असत् छरव पतन्तु ये भस्ता ये

घास्याः । अथ १।१९।२

जो फँके गये हैं, नीर जो फँके जानेवाले हैं वे बाण
चारों ओर हमसे दूर जाकर गिरें ।

यच्च आत्मानि तन्वां घोरमस्ति ।
यद्वा केधेषु प्रतिचक्षणे या ।

तत्सर्वं याचाप हन्यो ययं । अ. १।१८।३

जो इसके शरीरमें, बुद्धिमें, वेशोंमें, देशमेंमें दुरा है,
वस सबको हम वाणोंकी प्रेरणाले दूर करते हैं । (वाणोंसे

सूचना देकर उस दोषको दूर करते हैं ।)
दहन्नप ह्याविन यातुधानान् किमोदिन ।

अ. १।२।३

दुष्टुओं, यातना देनेवालों और जब क्या धाजें ऐसे
बोलनेवाले दुष्टोंको क्षति जल देता है ।
प्रेतं— भागे बढो ।
प्रस्फुरतं— दुरागी करो ।
पूणतः गृहान् यदतं— सगोष देनेवालोंके घर जाना ।

अ. १।२०।४

अभिनृत्य सपत्नान् अभि यो नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्त तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥

अ. १।२१।२

शत्रुओंको पराभूत करके, हमारे अंदर जो कंजूप हैं
उनको दूर करने, सेनासे जो चढाई करता है और जो
हमसे दुष्टताका व्यवहार करता है, उन सबको पराभूत करो ।

विभ्या ह्यस्ते दुरिता तर । अ. २।६।५

सब पापवृत्तियोंको, पापियोंको दूर कर ।

ह्ययुग्मिर्मत्स्वेह महे रणाय । अ. २।५।४

अपनी योजनानाओंसे तू यहां आविर्भूत होकर रह और
बड़े युद्धके लिये तैयार ॥

ससहे शत्रून् । अ. २।५।३

शत्रुका पराभव करता हू ।

प्रति तमभि चर योऽस्मान् छेष्टि यं वयं द्विभ्यः ।

अ. २।११।३

इसपर चढाई कर जो अनेक। हम सबका द्वेष करता है ।
और जिसका हम सब द्वेष करते हैं ।

पृथ्वाभि तं कुलिशेन धुंक्षं यो अस्माकं मन
ईदं हिनस्ति । अ. २।१२।३

जो हमारे हम मनको बिगाड़ता है, इसको कुठारसे धूल
काटनेके समान बाटता हू ।

सपत्नहास्ते अभिमातिजिद् भय । अ. २।६।३

हे भो ! साधनोंका विनाशक हो तथा वैरियोंकी जीतने
वाला हो ।

अग्नेर्वातस्य धाज्या तान् विपूवो वि नाशय ।

अ. ३।१।५

अग्नि और वायु के वेगसे जैसा नाश होता है वैसा नाश
शत्रुओंका चारों ओरसे करे ।

जदि प्रतीचो अनूचः पराचः । अ. ३।१।४

सममुख रहे, पीछेसे आनेवाले और सामनेवाले शत्रुको
बिहट करे ।

अग्नीमृणन् घनयो नाधिना इमे, अग्निर्गोपां
दूतः प्रयेत् पिष्टान् । अ. ३।१।३

वे बलवान् बलानेवाले और काटते रहे हैं, इनका विद्वान्
अग्नि समान तेजस्वी दूत चढाई करना हुआ आगे बढे ।

अग्निर्ना शत्रून् प्रयेत् पिष्टान् घनिदहदभिना
ग्निमग्नान् । अ. ३।१।३

विद्वान् तेजस्वी और घातपात करनेवाले शत्रुको जलाता
हुआ हमारे शत्रुओंपर हमला करे ।

इन वृत्तियोंमें विशेष महत्त्व रखनेवाली ये हैं—

स्वे गये जागृदि— अपने घरमें जाग्रत रह । अपने
राष्ट्रमें जाग्रत रह ।

उमा यः सन्तु याहवः— आपके बाहु क्षम हों ।

प्रेत— शत्रुपर हमला कर ।

जयत— विजयी हो ।

नश्यतः सदान्वः— दानवोंका यहां नाश हो ।

समहमेपां राष्ट्रं स्यामि— इनका राष्ट्र मैं तेजस्वी
बनाता हू ।

पृथ्वाभि शत्रूणां वाहन— शत्रुओंके बाहुओंको
काटता हू ।

उद्धर्पन्ता वाजिनानि— इनके बल उल्लेखित हों ।

तीक्ष्णपचोऽयलघन्वतो हत— तुम्हारे तीक्ष्ण बाणोंसे
निबंद क्षयवाले शत्रुको मारो ।

एवा तान् सर्गान् निर्मोघि— इन तरह उन सब
शत्रुओंका नाश कर ।

सेनां मोहयामिनाणां— शत्रुकी सेनाको मोहित कर ।

तान् विपूवो विनाशय— शत्रुको चारों ओरसे
बिहट कर ।

स चित्तानि मोहयतु परेषां— वह शत्रुओंके चित्त
मोहित करे ।

स सेनां मोहयतु परेषां— वह शत्रुकी सेनाको
मोहित करे ।

अभि मेहि, निर्दह— आगे बढ, शत्रुको जला दो ।

अग्नि मेत, मृणत्, सह— इमला करो, काटो और
जीतको ।

भूतपतिर्निरजतु— भूतोंका पति दुर्गुणियोंको दूर करे ।

विपृच्येतु वृन्ततो— काटती हुई सेना आगे बढे ।

आरे अदमा— पावर हमसे दूर रहे ।

अपेन्द्र द्विपतो मन— द हृद् । शत्रुका मन बदल दे ।

मा नो विददमिमा— पराभव हमारे पाम न आवे ।

विलपन्तु यातुघाना— यातना देनेवाले शत्रु रोते
रहे ।

यातुघानस्य प्रजां जदि— यातना देनेवाली प्रजाका
पराजय कर ।

स हन्तु शत्रून् मामकान्— वह मेरे शत्रुओंका वध करे ।

अजैपं सर्वानाजोन्— सब युद्धोंमें मैं विजय प्राप्त करता हूँ ।

अद्या अरार्ति— कृपणताको छोड़ो ।

अविद्ः स्योमं— सुखमार्गको जानो ।

अभूः भद्रे सुकृतस्य लोके— कहवाणकारी पुण्य लोकमें रहो ।

अरातीर्नो मा तारीत्— कंजुस हमारे पास न बहें ।

मा नस्तारिपुरभिमातयः— शत्रु हमारे भागे न बहें ।

प्र बह— भागे बह ।

याहि शूर— हे वीर ! भागे बह ।

प्रतिदह यातुघानान्— यातना देनेवालोंको जला दो ।

मेमं प्रापपीरुपेयो यद्यो यः— मनुष्यनाशक शत्रु मेरे ऊपर न पड़े ।

असमुद्धा आघायय— पापी सख्त न हों ।

मा नो विद्न् विव्याधिनाः— वेध करनेवाले शत्रु हमें न जानें ।

मो अभिव्याधिनो विद्न्— चारों ओरसे आक्रमण करनेवाले शत्रु हमें न जानें ।

यि न इन्द्र मृद्यो जहि— हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओंको मार ।

नीचा यच्छ पृतन्यतः— सैन्यसे हमला करनेवालोंको हीन अवस्थामें पहुँचा दो ।

यरीयो यावया चधम्— शत्रु हमसे दूर रह ।

इपको ममामित्रान् वि विध्यत— बाण में शत्रुओंको धींचे ।

यातुघानान् विलापय— यातना देनेवालोंको रुलाओ ।

एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि— इनके राष्ट्रको वीर बनाकर बढ़ाता हूँ ।

जयामिश्रान्— शत्रुपर विजय प्राप्त कर ।

अक्षेपां चरं चरं— शत्रुवीरोंके प्रमुखोंको मार ।

मामीषां मोचि कश्चन— शत्रुओंमेंसे किसीको न छोड़ ।

विध्यत तमसापद्यतेन— शत्रुको अपयत्न तमसाखले धींचो ।

सपत्ना असदधरे भयन्तु— शत्रु हमसे नीचे रहें ।

वस्योर्हन्ता वभूविष— शत्रुका विनाशक बन ।

वि रक्षो विमृद्यो जहि— राक्षसों और हितकोंका पराभव कर ।

मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या— कुटील और पापी मुखे न जाने ।

दहक्षय द्वयाविनः— दुमुखोंको मैं जलाता हूँ ।

प्रेतं— हमला करो ।

प्रस्फुरतं— फुरती बढ़ाओ ।

पृणतः गृहान् यहतं— संतोष देनेवालोंके घरोंके पास जाओ ।

अभि पृतन्यन्तं तिष्ठ— सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका पराभव कर ।

विश्वा दुरिता तर— सब पापोंको तर जा ।

मस्वेह महे रणाय— बड़े युद्धके लिये आनन्दसे तैयार रह ।

ससहे शत्रून्— शत्रुका पराभव करता हूँ ।

अभिमातिभिद्भव— शत्रुका पराभव करनेवाला हो ।

शत्रून् प्रत्येतु विद्वान्— विद्वान् शत्रुपर चढाई करे ।

इस तरह इन वृद्धियोंमें अनेक वाक्य भजनमें बोलने योग्य हैं । इस तरहके वचन सब बोलने होते हैं जब शत्रुके विरुद्ध अपने लोगोंको, अपने वीरोंको बढ़ाना या तैयार करना होता है । ईश्वर मन्त्रिके वेदवचन उपनिषद् के समथ बोलने होते हैं और ये वीरता बढ़ानेवाले वचन वीरता बढ़ानेके समय उच्चार करने होते हैं । विवेकी पाठक इसको अच्छी तरह समझ सकेंगे ।

शत्रुपराजय करनेके लिये अपने राष्ट्रको तैयार रखनेके समय ये वचन बड़े उपयोगी हैं । राष्ट्रको संजीवित करनेके लिये राष्ट्रमें एकता प्रस्थापित करनेकी आवश्यकता होती है । वह एकताका विषय अब देखिये—

एकता

एकता बढानेका उपदेश वेद इस तरह करता है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि यः ।

अ. ३।३०।१

सहृदयता और उत्तम मनवाला होना और विद्वेष न करना ये तुम्हारे अन्दर होने में कामा हैं ।

अन्यो अन्यमभिर्हृत्य तत्सं जातमिवाच्या ।

अ. ३।३०।१

एक दूसरे पर ऐसा प्रेम करो जैसा नवजात बच्चेपर गौ प्रेम करती है ।

अनुवत्तः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।

अ. ३।३०।२

पिताके अनुकूलवत् धारण करनेवाला पुत्र हो और वह मातासे समान मनवाला हो ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ।

अ. ३।३०।३

श्री पतिके साथ मधुर और क्षान्त भाषण करे ।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।

अ. ३।३०।३

भाई भाईसे द्वेष न करे, बहन बहनसे द्वेष न करे ।

सम्यक्चः समता भूया वाचं वदतु मद्रथा

अ. ३।३०।३

मिलजुलकर एक प्रसपादन करनेवाले होकर कष्टपाण करनेवाला भाषण करे ।

ज्यापरस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्टु संराघयन्तः

सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मि वदतु घदन्त

एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्त्रुणोमि ॥

अ. ३।३०।५

यूद्धोका समान करनेवाले, और उत्तम विचार करनेवाले बनो, सिद्धिगत पाल करनेवाले, एक धुराके भीचे चलने-वाले होकर आपसमें विरोध न करो, परस्पर प्रेम पूर्वक भाषण करनेवाले और उत्तम विचार करनेवाला होकर रहो ।

समानी प्रया सह यो अन्नभागः समाने योपद्रे

सह यो युनजिम् । अ. ३।३०।६

पानी पीनेका आपका स्थान एक हो, आपका अन्नभाग एक हो, एक जोतेके अन्दर साथ-साथ आपको जोतता है ।

सम्यञ्चो अग्नि सपर्यन्तरा नाभिमियाभितः ।

अ. ३।३०।६

मग मिलकर अग्निकी पूजा करो और चकड़ी नाभिके चारों ओर जैसे जले होते हैं वैसे तुम परस्पर जुड़कर रहो ।

सध्रीचीनाचः संमनसस्त्रुणोम्येक इनुष्टीन्त्सं-
वननेन सर्वान् । अ. ३।३०।७

परस्पर प्रेम भावका वर्ताव करनेवाले, साथ साथ पुष्ट-पार्थ करनेवाले, उत्तम मनवाले और एक नेठाकी आज्ञाओं कार्य करनेवाले मैं तुमको बनाता हूँ ।

देवा इवामृतं रक्षमाणा साथं प्रातः सौमनसो
वो अस्तु । अ. ३।३०।७

अमृतका रक्षण करनेवाले देव जैसे प्रेमसे रहते हैं वैसा परस्पर प्रेम आपके व्यवहारमें सबेरे और शामको होवे ।

सं वो मनांसि सं व्रता समाकृतीर्नमामसि ।

अ. ३।३०।५

तुम्हारे मनोको एक करो, तुम्हारे व्रत एक हों, तुम्हारे संकल्पोंको एक भावसे युक्त कराता हूँ ।

मम व्रतेषु हृदयानि यः कृणोमि

मम यातमनुघर्मान एत । अ. ३।३०।६

मेरे व्रतोंमें तुम्हारे हृदय सज्ज हों ऐसा मैं करता हूँ ।

मेरे चाल-चलनके अनुकूल तुम होकर चलो ।

अ-दूर-सूद भवतु । अ. १।१२०।१

आपसमें दूर उल्लस करनेवाला कोई न हो ।

अहं गृणामि मनसा मनांसि

मम चित्तमनु चित्तेभिरेत । अ. ३।३०।६

मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोको लेता हूँ । मेरे चित्तके साथ अपने चित्तोंको चलाओ ।

यथा नः सर्वे इज्जनः संगरयां सुप्रना असत्

दानकामश्च नो भुवत् ॥ अ. ३।१०।६

हमारे सपूर्ण लोग संगतिमें उत्तम मनवाले हों और दान देनेकी भी इच्छा करें ।

स चेन्नयायो अभिना, कामिना स च घक्षथः ।

सं चां भगासो अमृत, सं चित्तानि, समुव्रता ॥

अ. ३।३०।२

हे परस्पर कामना करनेवाले अहिदेवो ! मिलकर चलो, मिलकर बढो, एक-दूसरेकी मिलकर प्राप्त करो, तुम्हारे चित्त एक हो, तुम्हारे व्रत एक हों ।

शियाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिर्पाष्ठाः

सुवचाः । सयासिनी पियतां मन्थमेत अभिनी

रूपं परिचाय मायाम् ॥ अ. २।२५।६

कल्याणकारिणी विद्याओं द्वारा तेरे हृदयको तृप्त करता हूँ । बीरोंग और तेजस्वी होकर जानन्दमें रहो । साथ रहकर अश्विनौके रूपको कर्मकी कुशलताको प्राप्त होकर इस रसको पीओ ।

इस रीतिसे सबकी एकता करनेका उपदेश वेद करता है । घरकी तथा परिवारकी एकता करनेके किये प्रथम कहा है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विषन्— भाई-भाईसे द्वेष न करे । यह आदेश यदि भाई-भाई मनमें रखते, तो कौरव पांडवोंकी एकता होती और आपसका कलह न होता और १८ अश्विहिनी सेनाका नाश न होता । और भारत देश क्षात्र तेजसे हीन न होता ।

सम्यञ्चो अग्निं सपर्यंत

आरा नामिनिवाभितः । अ. १३.०१६

जैसे चकके बारे नामिके चारों ओर रहते हैं, उस तरह भीषमें अग्नि रहे और चारों ओर बैठकर हवन करो यह सामुदायिक उपासना कही है जो एकता बढ़ानेवाली थी । सामुदायिक संस्था, सामुदायिक हवन होनेसे समुदायकी एकता होती थी । इस स्थानपर आज वैयक्तिक संस्था हो गयी है जो एक दूसरेको पृथक् करती है ।

अपनेमें 'अदारस्तु भवतु' आपसकी कूट बढाने-बाढा कोई न रहे । परंतु आपसकी एकता सब बढ़ावें और सब सुसंगठित हों । इस कारण कहा है—

अहं शृण्वामि मनसा मनांसि । अ. १३.०१९

मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोंकी एकत्रित करके लेता हूँ अर्थात् मैं अपना मन ऐसा बनाता हूँ कि जो सबके मनोंकी आकर्षित करे और सबके विचार एक प्रकारके बनावे और सबको संगठित करे । इस रीतिसे राष्ट्रके सब लोगोंकी संगठित किया जाय और राष्ट्रका बल बढ़ाया जाय ।

इस तरह संघटनाके सुकय वे मंत्र हैं । पाठक इनका विचार करें और आपसमें सुसंघठीत होकर अपने राष्ट्रीका बल बढ़ावें इससे राष्ट्रका अमृदुष होगा ।

अमृदुष

इमा याः पञ्च मद्रिचो मानयोः पञ्च कृष्टयः ।

पृष्टे शापं नरीत्येद रराति समाधदन् ॥

अ. १३.०२३

जो ये पांच दिशाओंमें रहनेवाली मानवोंकी पांच आतियाँ हैं, वे समृद्धिको प्राप्त हों, जिस तरह वृष्टिसे नदी बढती है ।

जैसी घृष्टि होनेसे नदी बढती है उस तरह सप प्रजा-जनोंका अमृदुष हो । मनुष्योंकी सब प्रकारकी ऐदिक तथा पारमार्थिक उन्नति हो, सब राष्ट्र एकतासे अपना अमृदुष करने लगेगा तो ही राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है । एकता मूलक सब उन्नति है ।

राष्ट्रीकी एकता होनेके किये राष्ट्रमें यज्ञ भावना होनी चाहिये । सजनोंका सरकार, राष्ट्रकी एकता अर्थात् संघटना करना और दानका भावये गुण यज्ञमें हैं । इन गुणोंसे राष्ट्रका उत्कर्ष होता है ।

यज्ञ

प्रथं यक्षं च यर्धय । अ. १३.०१५

ज्ञान और प्रशस्ततम कर्मको यज्ञाओ ।

इमे यक्षं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनः

मस्यमानाः ॥ अ. १३.५१५

विश्वके रचयिताने यह यज्ञ कैदाया है । उत्तम मनसे सब देव इस यज्ञमें भावें ।

उताद्विस्मन्तं दापयतु प्रजानन् । अ. १३.०१८

दान न देनेवालेको जानबूझकर दान देनेकी चेष्टा कर ।

य इंशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो

द्विपदाम् । निष्कीतः स यक्षियं भागमेतु,

रायस्पोषा यज्ञमानं सचन्ताम् ॥ अ. १३.५११

जो चतुष्पाद पशुनोंका तथा द्विपादों-मनुष्योंका स्वामी है, वह यज्ञके भागको प्राप्त हो, उसकी उरासना हो, धन और पोषण यज्ञमानको मिले ।

विज्ञानोंका स्फार करना चाहिये, आपसकी उत्तम संघटना होनी चाहिये और जो होन होंगे इनकी दीनता दूर करनेके किये दान देना चाहिये । दानमें दियादान, बढका भयर्षन, धनका दान और कर्मसदिका आदयं यह चतुर्विध महत्तर होना चाहिये । यह जहाँ होगा वहाँ यज्ञ होगा । और इनमें राष्ट्रका परम उत्कर्ष होगा ।

मधुरता

मयुराग्रे पृथगा होती है । इन विषयमें वेदमंत्रोंका

एतद् आदेश यह है—

मधोरसि मधुरो मधुधान्मधुमत्तरः ।

अ. ११३४१

मैं मधसे भी अधिक मीठा हूँ, मधुर पदार्थसे भी अधिक मधुर हूँ ।

याचा यदामि मधुमद् भूयासे मधुसंहसः ।

अ. ११३४३

मैं याणीसे मीठा आपण करुणा और मैं मधुरताकी मूर्ति बनूँ ।

मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।

अ. ११३४३

मेरा जाना और जाना मीठा हो ।

जिह्वा धमे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।

अ. ११३४३

मेरी जिह्वाके मूलमें मधुरता रहे और जिह्वाके अग्रभागमें मीठास रहे ।

पेसी मीठास होनेसे शब्दमें प्रेम बढ़ता है और प्रेमसे सगठन होती है । मिश्रता बढ़ती है । परस्पर सहायता करनेकी दृष्टा बढ़ती है । हमसे सबका मिलकर कल्याण होता है ।

मिश्रता

यः सुहृत्ते तेन नः सहः । अ. ११०१५

जो उत्तम हृदयवाक्य है उसके साथ हमारी मिश्रता हो ।

सप्तसायसस्यमस्तु रतिः । अ. ११२१२

सातवृत्ती मित्र हमारे साथ रहे ।

मित्रेणाग्रे मिश्रधा यतस्य । अ. ११६१४

मित्रके साथ मित्रके समान व्यवहार कर ।

दिये ते यायावृथिवी उभे स्तम् । अ. ११३०१

उभे छिपे ये दोनों पृथ्वी और वृथिवी लोग कल्याण करने-वाले हों ।

नादमन्मद् यायव दिष्टुं । अथर्व ११३४३

दिष्टुं शब्द मन्मद् यायव- शत्रुके नेत्रकी बानकी हमसे दूर कर (शत्रुका बाण हमपर न आवे ।)

पयोपतिं नि रमस्य । अथर्व ११३४३

हैं वधुपौत्र धर्म-मित्र । मुझे आनन्द पुत्र कर ।

पयमह्यायति ध्यायामह्यपायोः परित्यजिनः ।

अ. ११००१

पापी और दुष्टोंके भाँख हम तक देते हैं ।

पापी और दुष्ट दूर हों और उत्तम हृदयसे सबकी एकता रहे और एकतासे बल बढ़े ।

बल

अदमानं तन्वं कृधि । अथर्व ११११२

शरीरको परधर जैसा मुदब कर ।

पहलदमानमा तिष्ठ, अदमा भवतु ते तनूः ।

अ. ११११४

जा, इस शिलापर खड, तेरा शरीर परधर जैसा सुरब बने ।

याचस्वपतिः तेषां तन्वः यत्ना मे अद्य दधातु ॥

अथर्व १११११

वाचस्वपति उनके शरीरके बलोंको मुझमें आज धारण करे । (विश्वमें जो पदार्थ हैं उनके बल मुझे प्राप्त हों और मैं उनसे बलवान् बनकर इस विश्वमें विश्वसेवाका कार्य करता रहूँ ।)

वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेपांस्था कृधि ॥

अथर्व ११११२

वीडुः वरीयः अरातीः द्वेपांसि अपाकृधि— हमारे शरीर बलवान् और श्रेष्ठ बनें । शत्रुओं और द्वेष करनेवालोंको दूर कर ।

ओजोऽस्योजो मे दाः । सहोऽसि सहो मे दाः ।

यलमसि यलं मे दाः । आयुरसि आयुर्मे दाः ।

ओषमसि ओषं मे दाः । चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः ।

परिपाणमसि परिपाणं मे दाः ।

अ. १११०१-७

सामर्थ्य, शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति, बल, आयु, ज्ञान, आँख, श्रवण बल सुहृदारा रूप है अथ. ए. मुझे ये गुण दे ।

ध्वस्योऽसि, प्रतिसरोऽसि, प्रत्यभिचरणोऽसि ।

अ. ११११२

ए (आत्म) शक्तिहीन है, ए आगे बढ़नेवाला है, ए दुष्टताको दूर करनेवाला है ।

सुकोऽसि, अजोऽसि, क्वरसि, ज्योतिरसि ।

अ. ११११५

ए सुदृढ़ तथा शीघ्रवान् है । ए नेत्रहीन है, ए आत्म-शक्ति है, ए ज्योति है ।

प्र च वर्धयेमम् । अ. २।६।२
इसको विशेष ऊँचा कर ।
सबका बल, तेज, उद्योग, बौद्धिक, बड़े और सब लोग
तेजस्वी बनें और सबका सामर्थ्य बड़े ।

वीरता

प्रजां त्वष्टरधि निघेहास्मे । अ. १।२९।२
हे त्वष्टा ! इसको सुप्रजा दे ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्त्यः ।
अ. ३।२३।२
तेरे किये दशवें मासमें अम्मनेवाला वीर पुत्र होवे ।
अथास्माकं सह वीरं रर्यि दा' । अ. २।६।५
हमें वीरोंके साथ रहनेवाला धन दे ।
सुप्रजसः सुधीरा धयं स्याम पतयो रयीणाम् ।
अ. ३।१०।५
हम उत्तम प्रजावाले तथा उत्तम वीरोंसे युक्त होकर
धनके स्वामी बनें । -

तनूपानः सयोनिर्योरो धीरेण मया । अ. ३।५।८
तू सजातीय वीर मुझ वीरके साथ रहकर शरीररक्षक है ।
धुपेन्द्रः पुर एतु नः सोमया अभयंकरः ।
अ. १।२१।१
बलवान्, शक्ति करनेवाला, सोमरस पीनेवाला शत्रु-
नाशक वीर हमारा भगुना बने ।

ज्ञान

घोरा ऋषयो, नमो अस्त्वेभ्यश्चभ्युदेयां मन-
सश्च सत्यम् । अ. २।३।५
'एहि बड़े तनखी हैं, उनको हमारा प्रणाम प्राप्त हो,
इसकी भाँख और मन सत्यस्वरूप रहते हैं ।
येन वेद्या न विपन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तारुण्यो मल्ल घो मृदु संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥
अ. ३।१०।४
जिसे ज्ञानी आपसमें झगड़ते नहीं और आपसमें द्वेष
भी नहीं करते, वह भेद ज्ञान आपके घरके पुरपोंके लिये मैं
करता हूँ ।
प्रक्षान्तस्ते यदासः सन्तु, माग्ये । अ. २।९।२
शान्ति ही तेरे घरके भागी बनें, न दुःख ।

मयि एव अस्तु मयि ध्रुतम् । अथर्व० १।१।२;३
यदा हुना, सुना हुना ज्ञान मेरे अन्दर स्थिर रहे । (प्राप्त
किया ज्ञान मूला न आय ।)

सं ध्रुतेन गमेमहि । मा ध्रुतेन विराधिपि ॥

अथर्व० १।१।४

हम सब ज्ञानसे युक्त हों । हम कभी ज्ञानसे विद्युक्त
न हों ।

इमं वर्धयता गिरः । अ. १।१।५।२

वाणिजा इसका गुणवर्धन करें । गुणमान करें ।

अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि । अ. २।१०।१

ज्ञानसे मैं तुझे निष्पाप करता हूँ ।

उपासान् याचस्पतिर्कृत्यताम् । अथर्व० १।१।४
शानी हमें मुक्त करें (और उपदेश करें, हमें मार्ग बतावे ।)

सूर्यं चक्षुषा मा पाहि । अ. २।१६।३

हे सूर्य ! आँखसे मेरी सुरक्षा कर ।

विद्विषि, शक्र विद्या इहि आ नः । अ. १।५।४

उत्तम राजशासन कर, हे इन्द्र ! हमारे पास बुद्धिकी
योजनासे आओ ।

यहि देवेन मनसा सह । अथर्व १।१।२

दिव्य मनके साथ इन्द्र (मेरे समीप) आ । (मनमें
दिव्य शक्ति है, उस दिव्य शक्तिके प्रभावित हुए मनसे यही
आओ । मनमें दिव्य शक्ति धारण करके, जहाँ जाना हो,
जाना चाहिये ।)

व्यापस्तृणयासरन् । अ. ३।३।३

जल प्यासे दूर रहना है ।

इमामग्रे शरणि मीमृषो नः । अ. ३।१।५।४

हे अग्ने ! मेरी इस मूलकी क्षमा करो ।

तर्पुणं तस्मै धृजिनानि सन्तु प्रत्यद्विषं पार-

मिसंतपाति । अ. २।२।९

ज्ञानका द्वेष करनेवाले उस दुष्टकी सब कार्य तार-
दायक हों । उस ज्ञानके द्वेषको आकाश संगत कर ।

सूर्यमृतं तमसो प्राप्ता अधिदेवा मुद्रयन्ते मरु-

जधिरेणसः । अ. २।१०।८

देवोंने अंधकारकी पद्धतसे तथा वायुते मृग्य बनादे
सब स्वस्वी सूर्यको प्रकट किया है ।

प्रापेयं सर्वा आकृतीर्मनसा हृदयेन च ।

अ ३।२०।९

मनसे और हृदयसे सब मन्त्रोंको प्राप्त कर सकू ।

ब्रह्म वा यो निन्दिषत् म्रियमाणम् ।

अ २।१२।६

जो हमारे ज्ञानकी निन्दा करता है । (वह पलायनको प्राप्त हो)

तेजस्विता

सह घर्चसादिहि । अ ३।१।१

तेजक साथ उड़पको प्राप्त हो ।

तेन मामग्न घर्चसाग्ने घर्चस्विन वृणु ॥

अ ३।२२।३

हे अग्ने ! इस तेजसे मुझे आज तेजस्वी कर ।

देयासा धिभ्यघायसस्ते माज्जन्तु घर्चसा ।

अ ३।२२।२

मन्त्रका धारण करनेवाले देव मुझे तेजसे तेजस्वी करें ।

देवा इम उत्तरसिन्धु ज्योतिषि धारयन्तु ।

अ ३।१।१

वाणवायु सब ओरसे मुझे घेरे और तब मुझे पुष्टि देवे ।

इष्टापूर्तमवतु नः । अ २।१२।४

इष्ट कर्म तथा पूर्व कर्म हमारी रक्षा करें । (इच्छापूर्वक क्रिया कर्म इष्ट और अनर्पणको पूर्ण करनेका कर्म पूर्व है ।)

धन

त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ।

अ ३।१०।५

हे देव ! तू दान देनेवालेके लिये दानके अर्थ धनको प्रेरित करो ।

/ ये पन्थानो यद्वयो देवयाना अन्तरा घाघा पृथिवी संचरन्ति । ते मा जुपन्तां पयसा घृतेन

यथा मीत्वा धनमाहराणि ॥ अ ३।१५।२

जो सज्जनोंके जाने जानेके बहुतसे मार्ग घाघा पृथिवीके बीचमें चल रहे हैं, वे मुझे घी और दूधसे तृप्त करें ।

जिनसे चलकर कपबिन्दव करके मैं धनको प्राप्त करू ।

यमध्वानमगाम दूरम् ।

शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपण ।

फलिनं मा वृणोतु । अ ३।१५।४

मैं दूर मार्गपर जाया हू । कपबिन्दव हमें हितकारी

इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन्तद्दक्ष-
माणो विभरद्विरपयम् । अ. १।३।५।२

इन्द्रके समान हम इंद्रियोंको धारण करते हैं जो दक्ष-
मासे सुवर्ण धारण करता है (उसमें सत्तम इंद्रिय शक्ति
रहती है ।)

नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः
प्रथमजं ह्येतत् । अ. १।३।५।२

इस सुवर्णको राक्षस और पिशाच (सूक्ष्मरोग कृमि)
वहीं सह सकते । क्योंकि यह देवोंका पहिला सामर्थ्य है ।

तं जानन्नग्न आरोहाद्या नो वर्धया रयिम् ।

अ. १।३।५।३

हे भग ! उस मार्गको जानकर ऊपर चढ़ और हमों
धन बढ़ा दो ।

नुदध्वरानि परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा
अस्तु ममम् । अ. १।३।५।३

मार्गपर छटनेवाले, बँहते रहनेवाले शत्रुको दूर करके, वह
ईश्वर मुझे धन देनेवाला होवे ।

भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्मगं प्र नृभिर्नृवन्तः
रूपाम । अ. १।३।५।३

हे भग ! गौकों और अश्वोंके साथ हमारी संतान वृद्धि
कर । हम अच्छे मानवोंके साथ रहकर मानवोंसे पुष्ट हों ।

तं त्वा भग तस्य हज्जोदधीमि स नो भग पुट-
एता भयेद् । अ. १।३।५।५

हे भगवान् प्रभो ! तुमको मैं सब प्रकारसे भजता हूँ ।
वह तु हमारा नशुबा हो ।

मयि पुण्यत यद्धतु । अ. १।३।५।२

हे गौर्भो ! जो धन दे इससे मेरे साथ गुप्त हट-पुष्ट
बनो ।

मघासाम्यं सहवीरं रयिं दाः । अ. १।३।५।५

हमें वीर पुत्रोंके साथ धन दो ।

रयिं देयी दद्यातु मे । अ. १।३।५।३

देवी मुझे धन देने ।

और वह हमारा नशुबा बने । (इन्द्र-शत्रुका विनाश
करनेवाला)

यावदासि ब्रह्मणा चन्दमान इमां धियं शतसे-
याय देवीम् । अ. १।३।५।३

जिससे इस दिव्य बुद्धिका ज्ञान द्वारा सम्मान करता
हुआ मैं सैकड़ों सिद्धियोंको प्राप्त करने योग्य होऊँ ।

श्रुतं नो अस्तु चरितमुत्थितं च । अ. १।३।५।५

हमारा चावचलन और बर्तान हमें कामदावी होवे ।
भग प्रणेत्तर्मगं सत्यराघो भगेमो धियनुद्वया-
ददन्नः । अ. १।३।५।३

हे भग, हे वर देना, सत्य सिद्धि देनेवाले प्रभो ! इस
बुद्धिको देकर हमारा रक्षण कर ।

भग एव भगव्यां अस्तु देवस्तेन धर्मं भगवन्तः
रूपाम । अ. १।३।५।५

भाग्यवान् भगदेव मेरे साथ रहे, इसके साथ रहनेसे
हम भाग्यवान् हों ।

भगस्य नावमारोह, पूर्णामनुपदस्वतीम् ।

तयोपप्रतारय, यो परः प्रतिकाश्यः ॥ अ. १।३।५।५

पूर्ण तथा ऊँट्ट देवधर्मकी लौकापर चढ़, हम लौकासे
उसके पास आ जो वर तेरी कामनाके योग्य हो ।

परि मां, परि मे प्रजां परिणः पादि यस्तनम् ।

अ. २।०।५

मेरी रक्षा कर, मेरी प्रजाकी रक्षा कर, हमारी धनकी
रक्षा कर ।

उद्य निष्ठ मदते रक्षामाय । अ. १।३।५।५

बड़े लोभ, लगे जिये रक्षा होकर रह ।

अस्मिन् तिष्ठतु या रयिः । अ. १।३।५।३

हममें पर्वत धन रहे ।

तास्तु स्वान्तर्जरस्या दधामि, प्र यक्ष्य पटु

निश्रुतिः पराचैः । अ. २।१-१५

गुप्तको दृढावस्थामें मैं धारण करता हूँ । क्षय रोग तथा अन्य सब कष्ट गुप्तसे दूर चले जाय ।

अग्नी रक्षोद्दामीवचातमः । अ. १।२-८१

अग्नि राक्षसों का नाश करके रोगों को दूर करनेवाला है ।

(१५:- शेषकृति)

अमुस्यमुद्ययतां हृषोतो हरिमा ख ते ।

गोराहितस्य वृषोत्तमै रवा परिद्वभसि ॥

अ. १।२-२१

गुहारा हृदयविकार तथा कथमेला या पीछापय धूर्वों-
हृवके साथ जानेवाले छाल किरणों के काल वर्णसे गुले चारों
भोर घेर कर मैं दूर करता हूँ ।

किलासं च पलितं च निरितो नाशय पृषत् ।

अ. १।२-३१

हम शरीरसे कुछ व सफेद भस्मे दूर कर ।

अस्थिजलस्य किलासस्य तनूश्चरय च यत्पथि ।

दूषया घृतस्य श्लक्ष्णा लक्ष्म भ्येतमनीनशाम् ।

अ. १।२-३७

दोष के कारण त्वपावर लक्षण हुए, जल्लिसे तथा शरीरसे
उपपन्न हुए, दुग्धक ओ रजसावर चिद्रु है कसको हम जलसे
विमिश्र करते हैं ।

सोऽत्मक रोचन्न पुनर्धो यन्तु यातयः पुनर्दतिः

किमीदिनः । यक्ष स्य समस्त, यो यः प्राद्वि-

त्तमस्त, स्या मांसाभ्यस्त ॥ अ. २।३-३१

हे ब्रह्म करनेवाले शस्त्र ! तुम्हारे वाचना देनेवाले सब,
सब है लाज लोगों ! तुम भिन्ने हो इसको जानो, किन्तु मैं
गुहें भेजा दे इनको आओ, अपने ही मांस खाओ । (हम
गुहजित हैं ।)

निरितेनां आयुःशाय कथयान् जीवितलोपनाम् ।

हृद्यमहृद्यमहृद्यमेषा कुरुकमहृद्यम् । अलग्ण्डम्
रसर्वाञ्जलुनादिकमीन्त्रचला अभयामसि ॥

अ. २।३-३२

दीप्तनेवाले, व दीप्तनेवाले कृमिघों को मैं मारता हूँ ।

रंगनेवाले कृमिघों को मैं विनष्ट करता हूँ । बिहारी पर रहने-

वाले सब कृमिघों को मचाते मैं मरु करता हूँ ।

निःशालां धूर्णु धिपणमेकपाद्यां जिघाळम् ।

सर्वाश्चण्डस्य नन्दयो नाशयामः सदान्ध्याः ॥

अ. २।३-३३

घावार न दोना, अपनीव दोना, एकनचनी निश्रयागमक

उद्धिका नाश करवा, मोघको सब सशर्मे, दानववृत्तिपा

जादिक दन नाश करते हैं ।

प्रादिर्जमाह यथेतदेनं तस्या इन्द्रासी प्रमुमुक-

मेनम् । अ. २।३-३४

यदि अकटनेवाले शेतने इसको पकड़ गया हो, तो उस

पीडासे इन्द्र भीर भस्म इसको मुझसे ।

आ त्वा स्यो विपत्तां वर्णः परा शुक्रानि पातय ।

अ. २।३-३५

तुम्हारे शरीरका निश्वसने तुम्हें प्राण हो भीर चेत भस्मे

दूर हों ।

अमुकया यक्षमात् सुरितादपचाद् मुदः पाप्माद्

ब्रह्माश्वोऽमुकया । अ. २।३-३६

अचरोग, वाय, मिषकर्म, मोहिषों के वाग भीर अकटने-

वाले रोग आदिमें मैं तुम्हें गुलाह हूँ ।

कृप्या भूविपत्ति, हेत्या देतिरसि, मेप्या मेनिपत्ति ।

अ. २।३-३७

दोषको दूर करनेवाला, हविषाका हविषाया, ब्रह्मा

बल हूँ (आत्मा) है ।

नो वधेया रयि— हमारा धन बढाओ ।

ईशानो धनदा अस्तु मह्यं— परमेश्वर मुझे धन देनेवाला हो ।

मयि पुष्यतु यद्वसु— जो धन है वह मेरे पास बढता रहे ।

अस्मभ्यं सहवीरं रयि दा— हमे वीर पुत्रोंसहित धन दो ।

रयि देयी दद्यातु मे— देवी मुझे धन देवे ।

रयि च नः सर्ववीरं नियच्छ— धन और वीर पुत्र हमें दो ।

यथं भगवन्तः स्याम— हम धनवान् हों ।

भगव्य नायमारोह— ऐश्वर्यकी नौका पर चढ ।

परिणः पाहि यजूनम्— हमारे धनका सरक्षण कर ।

उष तिष्ठ मदते सौभाग्य— बडे सौभाग्यके लिये उठकर खड़ा रह ।

अस्मिन् तिष्ठतु या रयि— इसके पास धन रहे ।

एते वधन हैं जो मनमें रखने योग्य होते हैं । इनमेंसे कोई एक वधन मनमें १०।२० बार विचारपूर्वक रखिये ।

वेना करनेसे धनका महार रचानमें आ जायगा और धन पास रहनेसे कैसा सुख होगा, इसका भी पता लग जायगा ।

आरोग्य

तेना ते तम्यं नं करं, पृथिव्यां ते निषेचनं

यदिष्टे अस्तु यादिति । अमरं १।३।१-५

हममें तेरी शरीरका बहवाण करना है, पृथिवीपर तेरा पुष्पमें रदना हो । तेरी शरीरमें मक्क दोष दूर हो ।

अर्वायं दीर्घायमयो पाण्ड्यं कृमिन् ।

अथर्कं व्यथर्कं किमिन् ययसा जमयामासि ॥

उद्यन्नादित्यः कृमिन्हन्तु, निम्रोचन्हन्तु राक्षसिः ।

ये अन्तः क्रिमयो वयि ॥ अ. २।२।१

उदय होनेवाला सूर्य रोगकृमियोंका नाश करे, मच्छ होनेवाला सूर्य किरणोंसे कृमियोंका नाश करे जो कृमि भूमि पर हैं ।

विश्वरूपं चतुरक्षं किमि सारंगमजुनम् ।

शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चाभि यच्छिरः ॥

अ. २।३।२

अनेक रूपोंवाले, चार आंखवाले, रंगनेवाले, श्वेत-ग-वाले ऐसे अनेक प्रकारके कृमि होते हैं, उनके पीठ और सिर मैं छोटता हूँ ।

अत्रिवहः क्रिमयो ह्यग्निं कण्वयज्जमदमियत् ।

भगव्यस्य ब्रह्मणा सं पिनप्यहं कृमिन् ॥

अ. २।३।३

अग्नि, कण्व, जमदग्नि के समान मैं कृमियोंका नाश करता हूँ । भगव्यकी विद्यासे मैं कृमियोंको कुचकता हूँ ।

हतो राजा कृमीणां उतेपां स्वपतिर्हतः ।

हतो हनमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥

अ. २।३।४

कृमियोंका राजा मारा गया, इनका स्थानपति मारा गया है । कृमिही माता, बहिन और माई मारा गया है ।

हतासौ अस्य घेरासो हतासः परिघेरासः ।

अथो ये क्षुत्तुका इव सयं ते कृमयो हताः ॥

अ. २।३।५

इस कृमि के परिचारक मारे गये, इसके सेवक पीसे गये, जो क्षुत्तुका कृमि हैं वे सब मारे गये हैं ।

अथ ते शृणामि द्राष्टे यश्यां यितुदायमे ।

तासु त्यान्तर्जरस्या दधामि, य यक्ष्म एतु
निर्गतिः पराचैः । अ. २।१०।५

तुलसी घृदावस्थामें मैं धारण करता हूँ । क्षम रोग तथा
अन्य सब कष्ट तुलसे दूर चले जाय ।

अग्नी रक्षोहामीयचातनः । अ. १।२८।१

अग्नि राक्षसोंका नाश करके रोगोंको दूर करनेवाला है ।

(१३३- रोगकुमि)

अनुसर्गमुद्यत्तां हृद्योतो हरिमा च ते ।

गोरोदितस्य घर्णेन तेन त्या परिद्धमसि ॥

अ. १।२९।१

तुम्हारा हृदयविकार तथा कामिला या पीछापन सुयो-
दपके साथ आनेवाले लाल किरणोंके लाल वर्णसे तुमसे चार्हों
भीरु बर कर मैं दूर करता हूँ ।

किलासं च पलितं च निरितो नाशयं पुनत् ।

अ. १।२९।२

हृत्त शरीरसे कुष्ठ व सफेद धरने दूर कर ।

अदिधजस्य किलासस्य तनुजस्य च यत्त्वचि ।

हृत्तया कृतस्य प्रहाण्य लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ।

अ. १।२९।३

हृदयके कारण रक्ताप रक्षण हुए, जलितसे तथा शरीरसे
रक्तक हुए, कुष्ठका जो रक्तापर चिह्न है उसको हम आनसे
विनाश करते हैं ।

शेदमक शेदम पुनर्वा यन्तु यातयः पुनर्हतिः

किमीदिनः । यस्य स्य तमत्त, यो यः प्राहि-

त्तमत्त, स्या मांसमयत्त ॥ अ. १।२९।४

हे बच करनेवाले राज । तुम्हारे वातना देनेवाले वायु,
तथा हे साजु लोगों ! तुम जिनके ही उसको खाओ, जिन्होंने
तुम्हें भेजा है इनको त्यागो, अपने ही मांस त्यागो । (हम
शुश्रूष रहें ।)

गिरिमेर्मा मायिनाय कण्ठान् जीयितयोपनाम् ।

अ. १।२९।५

हम भीषिका नाम करनेवाले, पीछा देनेवाले कुमियोंको
पहाडपर पहुँचाओ (ये रोगहृमि हमें कष्ट न दें ।)

शेदियाद्या निम्राद्या जामिशसाद् दृदो

मुशामि घटणस्य पाशान् । अ. १।३०।०

आनुषंगिक रोग, कष्ट, संबंधियोंसे कष्ट, दाह तथा
बलनेके वाद्योंसे मुझे मैं मुक्तवाता हूँ ।

दृष्टमदृष्टमदृष्टमथो कुरुकृतमदृष्टम् । अलग्ण्डम्
रत्नचोच्चुवाग्निकर्मोन्मत्तस्य अभयामसि ॥

अ. १।३१।२

दीखनेवाले, न दीखनेवाले कृमियोंको मैं मारता हूँ ।
रंगनेवाले कृमियोंको मैं बिनाष्ट करता हूँ । बिहारे पर रहने-
वाले सब कृमियोंको घबसा मैं नष्ट करता हूँ ।

निःशलां धृणुं धिपणमेकवाचां जिघांस्वम् ।

सर्वांश्चण्डस्य नष्टयो नाशयामः सदाप्याः ॥

अ. १।३१।३

चरदार न होना, नयनीत होना, एकवचनी निधवानक
कुष्ठिका नाश करना, मोथकी सब सतानें, क्षानवृत्तियाँ
आदिका हम नाश करते हैं ।

प्राहितंमाह यथेतदेनं सस्या इन्द्राक्षी प्रमुमुक्त-

मेनम् । अ. १।३१।४

यदि जलनेवाले रोगने हस्तको पकड़ रहा हो, तो उस
पीरसे हृद् और नशि हस्तको मुझसे ।

आ तथा स्यो विशतां घर्णः परा शुक्रानि पातय ।

अ. १।३१।५

तुम्हारे शरीरका निजवनं तुम्हें प्राप्त हो और श्वेत धरने
दूर हों ।

अमुकया यकमात् दुरिताद्यद्याद् दृष्टः पाशाद्

प्राप्ताद्योदमुकया । अ. १।३१।६

क्षयरोग, वात, निदकर्म, शोथियोंके पात और जलने-
वाले रोग आदिमें मैं तुम्हें मुक्तवाता हूँ ।

दृष्ट्या दृष्टिरसि, हेत्या देतिरसि, मेत्या मेतिरसि ।

अ. १।३१।७

हृदयको दूर करनेवाला, हृदिवाका हृदिवा, वक्त्रका
वक्त्र (नामा) है ।

दशवृष्ट मुष्ट्येवं रक्षसां प्राप्ता अपि येनं

जमाद् एतेषु । मयो एनं यन्मये जीयानो

लोचमुष्टयः । अ. १।३१।८

हे दशवृष्ट ! हम राजसों गदियारोगमें हम रोगीको
दूर कर । जो रोग हमको संघियोंमें पकड़ रहता है । हे
मनवर्ति ! इनको क्षीरित जीयानों कर रहा ।

ममः शोणाय लक्ष्मणे ममो कराय शोणित

व्याप्त्या पचमानः । अ. ३।३।१२

शुद्ध मनुष्य पीडासे दूर रहता है ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमञ्जात यक्ष्मा-

दुत राजयक्ष्मात् । अ. ३।३।१३

सुखपूर्वक जीवनके किये तुझको हम अज्ञात रोगसे तथा राजयक्ष्मासे हवन द्वारा छुड़ाते हैं ।

मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ।

अ. ३।३।१२

हमारे शरीरोंको सुख हो, हमारे बालबच्चोंको सुख हो ।

वि महच्छर्मं यच्छ, वरीयो यावथा वधम् ।

अ. ३।३।१३

बड़ा शान्तिसुख हमें दो, शत्रुका शत्रु हमसे दूर कर दो ।

कामो दाता, कामः प्रतिप्रदीता । अ. ३।२९।७

काम दाता और काम ही देनेवाला है ।

श्रुतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ।

अ. ३।२७।५

किये हुए कार्यकी यही बुद्धि कर ।

यत्रा सुहार्दः श्रुतो मदन्ति विहाय रोगं

तन्वः स्वायाः । तं लोके यमिन्यभिसंघभूय

सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशून् ॥ अ. ३।२८।५

जहाँ सुहृद् तथा सत्कर्मकर्ता, अपने शरीरके रोगको त्याग कर आनन्दसे रहते हैं, वे तुझसे बचे देनेवाली गौ । इस स्थानपर जाकर रह, हमारे मनुष्यों और पशुओंकी हिंसा न हो ।

सर्षान् कामान्पूरययामयन् प्रमयमयन् ।

आकृतिप्रोऽधिर्त्तः शितिपाप्रोप दस्पति ॥

अ. ३।२९।२

यह दिया हुआ करमार सब प्रसाके संकल्पोंको पूर्ण करता है । हिंसकोंको दबाता है । प्रजाका रक्षण करता है । प्रमावी बनकर, अस्तिवका रक्षण करता है और विनाशसे बचाता है ।

यिषं सुभूतं सुयिदन्नं नो अस्तु । अ. ३।३।१७

हम सबके किये यह विष इतना सहायक तथा शान देनेवाला हो ।

अग्रे अष्टा पदेद नः प्रत्यम् ना सुमना भय ।

अ. ३।१०।२

यहाँ हमारे साथ अच्छी तरह बोल । हमारे सम्मुख उत्तम मनवाला हो ।

वि पण्यानो दिशं दिशम् । अ. ३।३।१४

मार्ग भिन्न दिशाओंमें भिन्न-भिन्न होकर जाते हैं ।

ये वध्यमानमसु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा

चक्षुषा च । अग्निष्टानत्रे प्रमुनोक्तु देवो

विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥ अ. २।३४।३

बदको जो मनसे और आँखसे प्रेमपूर्वक देखते हैं, उनकी चिन्तका बनानेवाला और प्रजाके साथ रहनेवाला अग्नि देव प्रथम मुक्त करे ।

पृहस्पतये महिषं शुभमग्नौ, विश्वकर्मन्, नम-

स्ते, पाहास्मान् ॥ अ. २।३५।४

महाशक्तिमान् । ज्ञानी तेजस्वी विश्वके रचयिता, आपकी हमारा नमस्कार हो, आपको नमस्कार है, हमारी सुरक्षा कर ।

स्वर्णोप त्वां मदाः सुवाचो अगुः । अ. १।५।२

स्वर्णीय आनन्दके समान उत्तम मायणसे होनेवाले आनन्द तुम्हारे पास पहुँचे हैं ।

सुपूदत, मृडत, मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोके-

भ्यस्कृधि । अ. ३।३।१४

आश्रय दो, सुखी करो, हमारे शरीरोंको सुखी रखो । हमारे बालबच्चोंके किये आनन्द प्राप्त हो ऐसा करो ।

हर्मा देवा असाधिपुः सौमगाय । अ. ३।१८।३

इस कम्पाकी देवोंने सौभाग्यके किये शायक की है ।

शं मे चतुर्भ्यो अंगेभ्यः शमस्तु तन्वे मम ।

अ. ३।१९।४

‘मेरे चारों अंगोंके किये आरोग्य हो, मेरे शरीरके किये भीरोगिता हो ।

अग्निं च विश्वशंभुयम् । अ. ३।१।२

अग्नि सब प्रकारका सुख देनेवाला है ।

यो ददाति शितिपादयि लोकेन संमितम् ।

स नाकमभ्यारोहति यत्र पुत्रो न जीयते

अयलेन पत्नीयसे ॥ अ. ३।२९।२

जो कौनोंसे संयागित, हिंसकोंका नाश करनेवाले साष्टक करमारके देता है, वह तुझ शक्ति स्थानको प्राप्त करता है, जहाँ निर्विकारके बलवानके किये बन नहीं देना देना है ।

कृणोमि । यो अन्येद्युरुभयधुरभ्येति तृतीय-
काय नमोऽस्तु तक्षमने ॥ अ. १।२५।४

श्रीतज्वरके लिये नमस्कार, रूक्ष ज्वरके लिये नमस्कार
जो एक दिन छोड़कर आता है, जो दो दिन आता है, जो
तीसरे दिन आता है उस ज्वरके लिये नमस्कार हो ।

अर्थात् यह ज्वर हमसे दूर हो ।

यदिस्य क्षेत्रियाणां यदि पुरुषेपिताः ।

यदि दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥

अ. २।१४।५

यदि मानवशिक दोष हैं, यदि मनुष्यकी प्रेरणासे हुए
हैं, यदि दस्युओंसे हुए हैं वे सब दोष नष्टसे हटें ।

आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेपजमिदं
किलासनाशनम् । अग्नीनशत् किलासं सरू-
पासकरत्त्वचम् ॥ अ. १।२४।२

मानुषीने पहिले यह कुटनाशक औषध बनाया । इससे
हुट विनष्ट हुआ और रक्ता ममान रंगवाली बनी ।

आरोग्यके विषयमें रोगकृमिका नाश करना मुख्य है ।
स्वच्छता की जाय, शुद्ध वायु आता रहे, सूर्यप्रकाश
आशाय, हवाम गीरे घीका होना रहे ये सब बातें आरोग्य-
मयवनके लिये अत्यावश्यक हैं ।

सूर्य रोगकृमिघोका नाशक मुख्यतया है । सूर्यप्रकाश
मातृमर्माहं करनेवाला है इसलिये रहनेके घरमें सूर्यप्रकाश
बिबुल जाना चाहिये ।

मग्री रक्षोहोऽमीपव्यातनः ।

अग्नि रोगकृमिघोका नाशक और रोग दूर करनेवाला है ।
हम रीतिसे इन मंत्रोंका निष्ठा करना चाहिये ।

विजय

सपान-क्षयणो गृधामिराष्टः । पिशासदिः ।

यथाहमेवो वीराणां पिराजानि जनस्य च ॥

पितेय पुत्रानग्नि रक्षतादिमम् । अ. २।१३।१
पिता पुत्रोंकी रक्षा करता है उस तरह इसकी रक्षा करो ।
आग्नीर्ण, ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं, दक्षं धत्तं
द्रविणं सचेतसां । जयं क्षेत्राणि सहसाय-
मिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्सपत्नान् ॥

अ. २।२५।३

हमें आग्नीर्वीर दो, हे संतुष्ट मनावालों ! बल, सुपजा,
दक्षता तथा धन हमें दो । यह अपने बलसे विविध क्षेत्रोंमें
जय प्राप्त करे और दूसरे शत्रुओंको नीचे करे ।

विश्वा रूपाणि विभ्रतः त्रिपत्ताः परियन्ति ।

अथर्व १।१।१

सब रूपोंको धारण करके, तीन गुणा सात (अर्थात्
इकीस) पदार्थ सर्वत्र चकते हैं । (ये इकीस पदार्थ विश्वमें
बीजनेवाले पदार्थोंके रूप धारण करते हैं ।)

यः सहमानश्चरति सासहान ह्य ऋषभः ।

तेनाश्चरथ त्वया ययं सपत्नान्सहिदीपमिह ।

अ. १।१।४

जो एकवान् शत्रुको दबानेवाला, सामदर्पवान् होकर
चकता है, उस वीरसे हम शत्रुओंको पराजित करेंगे ।

मनुष्यके जीवनमें शत्रुका पराभव करना और विजय
प्राप्त करना मुख्य बातें हैं । इसीसे मनुष्य सुखी हो
सकता है ।

सुरसप्राप्ति

१. सस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु सस्ति गोभ्यो
जगते पुरयेभ्यः । अ. १।१३।४
माता, पिता, गोरे, पुरय तथा चकतेवाले प्राणिनोंको
सुख प्राप्त हो ।

ते पित्रि क्षेममदीधरन् । अ. १।१।५

मन्त्रज्ञानमें वेरा क्षेम धारण करें ।

मातेषास्मा अदिते शर्म यच्छ । अ. १।२४।५

हे अदिने ! माताके समान इसे मुण्य दे ।

यम् प्रथमाजानामुपिता पुरः । अ. १।२४।५

व्यात्यो पवमानः । अ. ३।३।१२

शुद्ध मनुष्य पीडासे दूर रहता है ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमडात यद्मा-

दुत राजयक्षमात् । अ. ३।३।१३

सुखपूर्वक जीवनके लिये तुझको हम जज्ञात रोगसे तथा राजयक्ष्मासे हवन द्वारा छुड़ाने हैं ।

मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकाभ्यस्कृधि ।

अ. ३।३।१४

हमारे शरीरोंको सुख हो, हमारे बाकबलोंको सुख हो ।

वि महच्छर्म यच्छ, धरीयो यावया वधम् ।

अ. ३।३।१५

बड़ा शांतिमुख हमें दो, शत्रुकाशक हमसे दूर कर दो ।

कामो दाता, कामः प्रतिग्रहीता । अ. ३।३।१६

काम दाता और काम ही लेनेवाला है ।

कृतस्य कार्यस्य चेह स्फाति समावह ।

अ. ३।३।१७

किये हुए कार्यकी यहाँ वृद्धि कर ।

यत्र सुहार्दः सुकृतो भवन्ति विहाय रोगं

तम्यः स्वायाः । तं लोकं यमिग्यमिर्लपभूय

स्त नो मा हिंसीत् पुरुषान् यमून् । अ. ३।३।१८

जहाँ सुहृद् तथा सःकर्मकर्ता, अपने शरीरके रोगको त्याग कर जानंदसे रहते हैं, हे तुमके यच्छ देनेवाली गो ! तल-स्यानपर जाकर रह, हमारे मनुष्यों और पशुओंकी हिंसा न हो ।

सर्वान् कामान्पूरयत्यामयन् प्रमयम्यमन् ।

आकृतिमोऽपिर्चः शितिपात्रोप दृश्यति ॥

अ. ३।३।१९

यह दिया हुआ करमार सब प्रशाके संकल्पोंको पूर्ण करता है । हिंसकोंको दबाता है । प्रजाका रक्षण करता है । प्रभावी बनकर, जलियाका वृक्षण करता है और विनाशसे बचाता है ।

यिभ्यं सुभुलं सुयिदधं नो भस्तु । अ. ३।३।२०

हम सबके लिये यह बिना कलम सहायक तथा शान देनेवाला हो ।

भगो मच्छा यदेद नः प्रत्यर् नः सुमना भय ।

अ. ३।३।२१

यहाँ हमारे साथ भयभीत रहह बोल । हमारे सम्मुख कलम मनवाला हो ।

वि पन्थानो दिशं दिशाम् । अ. ३।३।२२

मार्ग बिना दिशाओंमें भिन्न-भिन्न होकर जाते हैं ।

ये वक्ष्यमानमनु दीध्याना मन्वैक्यन्त मनसा

चक्षुषा च । अग्निष्टानमे प्रमुमोभन्तु देवो

विश्वकर्मा प्रजया संतराणः ॥ अ. ३।३।२३

बहुको जो मनसे और आँखसे प्रेमपूर्वक देखते हैं, उनको विश्वका मननेवाला और प्रजाके साथ रहनेवाला अग्नि देव प्रथम मुक्त करे ।

सुहृत्पतये महिषं युमज्जमो, विश्वकर्मान्, नम-

स्ते, पाण्डस्मान् ॥ अ. ३।३।२४

महाकाष्ठिमान् । शमी तेजस्वी विश्वके रचयिता, आपकी हमारा नमस्कार हो, आपकी नमस्कार है, हमारी सुरक्षा कर ।

स्वर्णोऽप त्वां मदाः सुयाचो भगुः । अ. ३।३।२५

स्वर्णों आपमेंदेके समान उत्तम भावणसे होनेवाले जानेंद सुहृदों पाल पढ़ेंगे हैं ।

सुपुदत, मृडत, मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोके-

भ्यस्कृधि । अ. ३।३।२६

आश्रय दो, सुखी करो, हमारे शरीरोंकी सुखी रखी । हमारे बाकबलोंके लिये जानेंद प्राप्त हो देना करो ।

इमां देवा असायिषुः सौमगाय । अ. ३।३।२७

इस कन्धाको देवोंने सोमगायके लिये गायक की है ।

शो मे चतुभ्यो अंगेभ्यः शमस्तु तम्ये मम ।

अ. ३।३।२८

‘मेरे चारों ओरके लिये आरोग्य हो, मेरे शरीरके लिये नीतीयता हो ।

अग्नि च विश्वशंसुषुम् । अ. ३।३।२९

अग्नि सब प्रकारका सुख देनेवाला है ।

यो ददाति शितिपार्दविं लोकं क्षेमिमतम् ।

स माकमभ्यासीदति यत्र शुद्रको न क्रियते

अस्तेन पत्नीयसे ॥ अ. ३।३।३०

जो लोगोसे क्षेमप्रिय, हिंसकोंका नाश करनेवाले मरकट करमारको देता है, वह हुआ शिति त्यागको प्राप्त करता है, जहाँ निर्धनको बचानेके लिये सब नहीं देना होता है ।

इस तरह सुख प्राप्त हुआ तो मनुष्यकी भायु दीर्घ होती है। रोग दूर हो, स्वास्थ्य प्राप्त हो, मन आनन्द प्रसन्न रहे तो मनुष्य दीर्घायु होता है।

दीर्घ आयु

इस प्रकरणमें आये मन्त्रोंका विशेष उपयोग है। इन मंत्रमार्गोंका जप करनेसे लाभ होता है—

शरीरमस्याङ्गानि जरस्ते चहन्ते पुनः। अ. ३।१।१६
इसका शरीर और इसके अवयव वृद्धावस्थातक पहुँचानो।

ये देवा विधिं ह्य, ये पृथिव्यां, ये अन्तरिक्ष
ओषधीषु पशुध्वन्तः। ते कृणुत जरसमागुरस्ते
शतमग्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ॥ अ. १।३।०।३

जो देव पृथ्वी, अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर हैं। जो औषधियों और पशुओंमें हैं। वे देव इसके लिये वृद्धावस्थातककी भायु करें। सेकड़ों अग्य प्रकारके मृत्यु दूर करें।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्।

अ. २।१३।४

सब देव तेरी भायु सौ वर्षकी करें।

तं मिपालं बहू रोचमानो दीर्घायुत्वाय शत-
शारदाय। अ. ३।५।४

उस मित्रको प्राप्त कर, बहुत प्रकाशित होकर, सौ वर्षकी दीर्घायु प्राप्त कर।

दशमीमुग्रः सुमना वज्रोह। अ. ३।४।७

ए वहाँ उग्रवीर तथा उत्तम मनवाला होकर दसवीं दशक तक सब राजपके अपने वशमें (अर्थात् अपने अनु-
वृत्त) कर।

परि घत्त, घत्त नो वर्चसेम जरामृत्युं कृणुत
दीर्घमायुः। अ. २।१३।२

हमारे इस पुरुषको धारण करो, तेजसे युक्त करके इसकी धारण करो, दीर्घायु इसको देकर अरावस्थाके पश्चात् इसकी मृत्यु हो ऐसा करो।

शतं च जीय शरदः पुरुची, रायस्पोषमुपसं-
ध्यस्य। अ. ३।१३।३

सौ वर्षतक एवं रीतिसे जीवो और घन और पोषण रीतिसे प्राप्त करो।

एन्द्र पतो सध्मे विदो अग्र ऊर्जा स्वयाम-

जरां, सा त एषा। तथा त्वं जीव शरदः
सुवर्चा, मा त आ सुन्नोद्भिपजस्ते अक्रन् ॥

अ. २।२१।७

इन्द्रने मक्ति करनेपर अष्ट, बल, धारकशक्ति, अक्षीणता आदिकी उत्पत्ति किया, यह शक्ति तुम्हारे लिये है। इससे तू युक्त होकर बहुत वर्ष जीवित रह, तेजस्वी बन, तेरे लिये न्यूनता न हो। वैद्योंने तेरे लिये यह रसयोग बनाया है।

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिष रज्ज्वा।

अ. ३।११।८

जिस तरह गाय और बैलकी रज्जुसे बाँधते हैं वैसा वृद्धावस्था तेरे साथ बंधी रहे।

जराये त्वा परिददामि। अ. ३।११।७

वृद्धावस्थाके लिये तुझे देता हू।

वि देवा जरसावृतम्। अ. ३।३।११

देव जरासे दूर रहते हैं।

स्वस्त्येन जरस्ते बहाय। अ. १।३।०।२

इसकी वृद्ध भायुतक सुखसे पहुँचा दे।

विश्वेदेवा जरदृष्टिर्यथासत्। अ. २।२।८।५

सब देव यह वृद्ध होनेतक जीवे, ऐसा करें।

जरायै निधुवामि ते। अ. ३।११।७

वृद्धावस्थातक तुझे पहुँचाता हू।

जरा त्वा भद्रा नेष्ट। अ. ३।११।७

तुझे वृद्धावस्था सुख देवे।

वि यक्षमेण, समायुषा। अ. ३।३।१।१-११

यक्षमरोगसे मैं दूर रहूँ। दीर्घायुसे मैं संयुक्त रहूँ।

मित्र एवं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां

संविदानौ। अ. २।२।८।२

मित्र तथा अश्विनाशक वरुण जानवे हुए इसकी जराके पश्चात् मृत्युको प्राप्त होनेवाला दीर्घायु करें।

दीर्घायुत्वाय महते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः

सदैव। मार्णि विष्णुधृपणं जङ्घिं विभ्रमो

घयम् ॥ अ. २।७।१

दीर्घायु प्राप्त हो, बड़ा जानेंद प्राप्त हो, घोषकरोग दूर हो इसके लिये जंगल मणिको, हम सब विनष्ट न होने-
वाले और अपना बल बढ़ानेकी इच्छा करनेवाले सदैव धारण करते हैं।

रायस्पोषं सवितरा सुचारुमै शतं जीवाति
शरदस्तवायम् । अ. १।२९।२

धन और पोषण, हे सविता ! इसे तू दे । और यह तेरा
घनकर सो वर्ष जीवित रहे ।

हन्ध्रे यथैन शरदो नयात्यति विम्बस्य दुरि-
तस्य पारम् । अ. १।११।३

सब पावजित तु खड़े पार इसको हन्ध्रे के जाय और
यह सौ वर्षकी आयु इसे मिले ऐसा करे ।

शतं जीव शरदो धर्ममानः शतं हेमन्तान्
शतमु घसन्तान् । अ. १।११।४

सौ वर्षतक बढता हुआ जीवित रह । सौ हेमन्त, सौ
वसन्त और सौ शरद ऋतुतक जीवित रहे ।

सहस्राक्षेण शतधीर्येण शतायुषा हविषा
हार्पमेतम् । अ. १।११।५

सहस्रों शक्तिधोंसे युक्त, सौ वीर्योंसे युक्त, शतायु करने
वाले हवनसे इसको मैं मृत्युसे वापस लाया हूँ ।

शतायुषा हविषाहार्पमेतम् । अ. १।११।६

सौ वर्षकी आयु देनेवाले हवनसे मैं इसे वापस
लाया हूँ ।

शत जीवाति शरदस्तवायम् । अ. १।११।७

सहस्रा यह मनुष्य सौ वर्ष जीवित रहे ।
आयुस्समं घेहि जातवेद । अ. १।२९।३

हे जातवेद ! इसको दीर्घायु दे ।
यस्या मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य दत्ताभ्यां उदमुञ्चदृष्टदस्पतिः ॥

अ. १।११।८

जित मृत्युने तुझे डराव होत ही बांध रखा है उस
दुसरे वृक्षरक्षि सत्यके हाथोंसे मुझ देवा है ।

तुभ्यमेव जरिमन् धर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो
दिसिषुः शत ये । अ. १।२९।४

हे वृक्षरक्षे ! तेरी आयुतक यह मनुष्य बड़े । ये जो
मेरेको मृत्यु दें वे इसकी हिंसा न करें ।

इममां आयुषे यच्छसे नय प्रियं रेतो यदण
मित्र राजन् । अ. १।२९।५

हे भानु, हे यदण, हे मित्र राजन् ! इसको दीर्घायु
कर दे दीर्घायु तथा मेरेके मित्र के भा ।

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरतिकं
नीत एव । तमा ह्यरामि निर्कृतेरपस्थादस्वार्प
मेनं शतशरदाय ॥ अ. १।११।२

यदि इसकी आयु समाप्त हुई हो, यदि यह मृत्युके
समीप पहुँचा हो, तो भी बिनासके वाससे मैं इसको वापस
लाता हूँ और इसको सौ वर्षतक मैं जीवित रखता हूँ ।

यो विभर्ति दाक्षायण हिरण्यं स जीघेषु
हृणुते दीर्घमायु । अ. १।१५।२

जो दाक्षायण सुवर्ण शरीरपर धारण करता है वह
जीवोंमें दीर्घायु धारण करता है ।

परि त्वा रोहितैर्येर्धोर्धायुदाय दभसि ।
यथायमरणा असदयो अहरितो भुवत् ।

अ. १।२९।२

एक रंगोंके किणोंमें मैं तुझे दीर्घायु प्राप्त होनेके लिये
करता हूँ । इससे यह बीरोग होगा और पीछिमा भी
इससे दूर होगी ।

उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन ।

अ. १।११।१०

आयुष्यसे उच्च बन, दीर्घायुसे युक्त हो, औषधियोंके
रससे उच्छतिको प्राप्त हो ।

कृत्वादूषिरयं मग्निरयो अरातिदूषि ।

अथो सहस्त्राङ्गिदः ॥ अ. १।१५।१
यह जगिद मणि हिमामे बचानेवाका है, शत्रु मृत्यु रोगोंको
दूर करनेवाका है और बल बढानेवाका है, यह हमारी
आयुको बढावे ।

यदा यमनाक्षायणा हिरण्यं शतानीवाय सुम
नस्यमानाः । तस्ते यथाभ्यायुषे यच्छसे वलाय
दीर्घायुदाय शतशरदाय ॥ अ. १।१५।३

उपम मनवासे बलकी वृद्धि करनेकी कामना करनेवाके
प्रेक्ष प्रत्य मैकको बल प्राप्त करनेके लिये शरीरपर सुवर्ण
(का आयुष्य) रखते हैं । वह सुवर्ण दीर्घायु, मेधाविता,
बल, और वर्षोंकी दीर्घ आयु दान्दें प्राप्त हो इनके लिये
शरीरपर बाँधना हूँ ।

यम्ये यन्तु मृत्यवो यानादुरितरान् शतम् ।

अ. १।११।५०

मेरेको बलवासे मृत्यु का दुःख दान्दें दूर हो ।

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामासृता वयम् ।

अ. ३।३।१।१

पर्जन्यकी वृष्टिप्रसूतिसे हम वृष्टिपिको प्राप्त हो और हम मर नें । हमें श्रीम नृप्य न माने ।

इदं स्तं प्राणापानी माय गातमितो यूयम् ।

अ. ३।३।१।२

हे प्राण और अपान यहाँ रहो, तुम इससे दूर न जाओ । प्राणेन प्राणतां प्राणेद्वय भव, मा मृथाः ।

अ. ३।३।१।३

जीवित रहनेवालोंकी जैसी प्राणशक्ति प्राप्त कर और यहाँ जीवित रह, मत मर जा ।

प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः । अ. ३।२।८।४
प्राण तथा अपान द्वारा सुरक्षित होकर यह सौ हिम-
काष्ठ-सी वर्ष-जीवित रहे ।

आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव, मा मृथाः ।

अ. ३।३।१।८

दीर्घ आयुवालों और आयुष्य वृद्धावस्थावालोंकी जैसी प्राण-
शक्तिसे जीवित रह, मत मर जा ।

प्राणापानी मृत्योर्मा पातं । अ. ३।३।१।९

हे प्राण और अपान ! मृत्युसे मेरी मुक्ति करो ।

म यदिदं प्राणापानायनद्याहायि मजम् ।

तु पिता और श्रापित्री माता ज्ञानपूर्वक इसको जराके पश्चात् मृत्यु हो ऐसा करें ।

अनुष्य दीर्घ आयु चाहता है । इसलिये दीर्घायु चाहने-
वाला अनुष्य यहाँ दिये, वचनोंका अप करें, बारंबार दृष्टि-
रण करें, बारंबार भजन करें । काम अवश्य होगा जैसा—

शरीरं अस्याङ्गानि जरसे वहतं— इसका शरीर
और इसके अंग वृद्ध अवस्थातक पहुँचा दो ।

यह वचन अपने शरीरके विषयमें भी बारंबार बोला जा
सकता है । मनके वह विश्वाससे काम होता है । तथा—

कृणुत जरसे आयुः अस्मै— इसकी आयु वृद्ध
अवस्थातक करो ।

कृणुयन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतं— सब देव
सौ वर्षोंकी गुम्हारी आयु करें ।

दशर्मा उग्रः समना यशोह— यह सप्रवीर बनकर
दसवीं दशकतक जीवित रहे ।

जरासृप्यं कृणुत दीर्घमायुः— इसको दीर्घायु करके
जराके पश्चात् मृत्यु हो ।

शतं च जीव शरदः पुरुषीः— सौ वर्षोंकी दीर्घायु
इसे मिले ।

एवं जीव शरदः सुवर्षाः— इतना तेजस्वी होकर
सौ वर्ष जीवित रह ।

आयुरस्मै घेहि— इसको आयु प्रदान करो ।

मेममन्ये मृत्युधो हिंसिषुः शतं ये— सैकड़ों मृत्यु इसका नाश न करें ।

इमंश्च आयुषे धर्चसे नय— हे अग्ने ! इसे आयु और तेजके लिये ले जा ।

अस्पर्धमेनं शतशारदाय— सौ वर्षकी आयुके लिये मैं इसे स्पर्धा करता हूँ ।

तत्ते यन्नामि आयुषे— आयुष्यकी प्राप्तिके लिये तुझे यह मणि बाँचता हूँ ।

मा मृधाः— मत मर ।

प्राणेन जीय— प्राणसे जीवित रह ।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं— प्राण और अपान मृत्युसे तुझे बचावे ।

जरा मृत्युं कृणुतां— जराके पश्चात् मृत्यु हो ।

इस तरह अन्याय्य वचनोंका भी उपयोग हो सकता है । कोई बीमार पड़ा हो, तो पवित्र होकर शिकरी ओरसे पवित्रक अपने हाथोंको घुमाता और ये भक्तभाग बोलता, मनमें ही निमग्नपूर्वक बोलता । धारदार बोलता । अपने हाथोंमें बीमारी दूर करनेकी शक्ति है ऐसा मानकर इससे बीमारी दूर होगी ऐसे विश्वाससे यह करता । रोगीका भी साथ-साथ विश्वास हो तो काम शीघ्र होगा । अन्य वचन अन्य समय बोलनेके लिये हैं । यह विचार करके पाठक जान सकते हैं ।

वनस्पति

शं नो देधी पृक्षिपर्वशं निर्गन्त्या अकः ।

अ. २।२५।१

हे पृक्षिपर्णी देधी, हमारे लिये कटवान कर, और ध्याधिपोंको दुःख प्राप्त हो ।

अरायमस्तृकपायानं यश्च स्फार्ति जिह्वीर्यति ।

गर्भादि कण्वं नाशय पृक्षिपर्णि सहस्र च ॥

अ. २।२५।२

गोमा इतनेवाला, रक्त पीनेवाला, जो पुष्टिको हटाता है, गर्भको खातेवाला जो रोगहीन है उसका नाश कर । हे पृक्षिपर्णि ! दुःखको हटा कर ।

यीरुत् क्षेप्रियनाशयप श्रेष्ठियमुच्छ्रतु ।

अ. २।८।२-५

आनुवंशिक रोगको दूर करनेवाली यह औषधि आनुवंशिक रोगको दूर करे ।

इयामा सरूपं करणी पृथिव्या अशुद्धता ।

इदमूयु प्र साधय पुनः रूपाणि कल्पय ।

अ. १।२५।२

इयामा वनस्पति सरूप करनेवाली है, पृथिवीसे अपर उन्नाही गयी है, इस कर्मका उत्तम साधन कर और पुनः पूर्ववत् शरीरका रंग कर ।

जं सोमः सहैपधीभिः । अ. २।१०।२

औषधियोंके साथ सोम कटवान करनेवाला हो ।

इदं जनासो विदध महद्गम्य वदिष्यति ।

न तस्युयिष्यां नो दिवि येन प्राणस्ति धीरुधः ।

अ. १।२१।१

हे लोगों ! यह जानो कि ज्ञान बड़ी घोषणा करके कहेगा । जिससे वनस्पतिर्था जीवित रहती हैं वह पृथिवीसे नहीं है और न पृथुलकर्म है ।

असितं ते प्रलयनभास्थानमसितं तय ।

आसिक्त्यासि ओषधे निरितो नाशया पृथक् ॥

अ. १।२३।२

तेरा लयस्थान कृष्ण है और भास्थान भी कृष्णवर्णका है । हे औषधे ! तुकाके वर्णवाली है, इसलिये तू हमके भेत धरके दूर कर ।

सरूपरुच्यमोषधे सा सरूपामिदं पृथि ।

अ. १।२५।३

हे औषधे ! तू सरूप रचवाओ करनेवाली है । अतः तू रचवाओ सरूप कर ।

यधु

सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टं अर्यग्ना सभूतं भगम् ।

धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिषेदनम् ।

अ. २।२१।२

आत्मज्ञानीसे सेवित, ब्राह्मणों द्वारा सेवित, भेष्ट मन-वालेने हकट्टा किया यह घन दे, धाता देवके मन्त्र नियमा-नुसार पतिकी प्राप्तिके लिये मैं इसको सुयोग करता हूँ ।

इदं दिरण्यं गुल्गुल्ययमीहो भयो मयः ।

पते पतिष्यस्यामदुः प्रतिवामाप येसपे ।

अ. २।११।१

यह उत्तम सुवर्ण दे, यह देह दे, और यह घन दे ।

ये पतिकी कामनाके लिये और तेरे लाभके लिये तेरे पतिको देते हैं ।

आ नो अग्रे सुमति संभ्रलो गमेदिमां कुमारौ
सह नो भगेन । अ. २।३।१

हे अग्रे ! धनके साथ उत्तम वक्ता पति इस उत्तम बुद्धि-
मयी कुमारीके प्रति जा जावे ।

यदन्तरं तद्वाह्यं यद्वाह्यं तदन्तरम् ।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौपधे ॥

अ. २।३।४

जो अन्दर हो वही बाहर हो, जो बाहर हो वही अन्दर
हो । विविध रूपवाली कन्याओंका मन ग्रहण कर ।

या ग्रीहान् औपयति कामस्येपुः सुसयता ।

अ. २।३।५

कामका बाण लगनेपर ग्रीहाको लोपित करता है ।

यथैवं भूम्या अधि नृण वातो मथायति ।

एवा मन्नामि ते मनो, यथा मां कामिन्यसो,
यथा मन्नापगा असः ॥ अ. २।३।१

हे स्त्री ! जैसा यह पृथ्वीपरका वायु वायु दिलाता है
वैसा मैं तेरे मनको दिला देता हूँ, वैसे मेरी इच्छा करनेवाली
हो, गुप्तते दूर जानेवाली न हो ।

शिया मय पुरुषेभ्ये मोभ्यो भ्येभ्यः शिया ।
शियार्म सयर्म क्षेत्राय शिया न इदेषि ॥

तास्त्वा पुत्रविधाय देवी प्राचन्त्वोपधयः ।

अ. २।३।६

ये दिव्य औषधियां पुत्रप्राप्तिके लिये तेरी रक्षा करे ।

एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी सप्रिया पत्या-
विराधयन्ती । अ. २।३।७

ऐश्वर्यसे सेवित हुई यह स्त्री पतिको प्रिय और पतिसे
विरोध न करती हुई यहां रहे ।

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।

भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ॥

अ. २।३।८

पुरुष पुत्र उत्पन्न कर, उसके पीछे भी पुत्र ही होते रहें ।
ए पुत्रोंकी माता हो, जो हो तुझे तथा जो होनेवाले सब
पुत्र ही हों ।

तं त्वा आतरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां

चहयः सुजातम् । अ. २।३।९

उस तुल्य उत्तम अग्रे हुए बढते हुएके पीछेसे बहुतसे
बढनेवाले भाई उत्पन्न हों ।

पति-पत्नी

ॐ परि त्वा परितरुनेक्षुणागामयिद्विदे ।

यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥

अ. २।३।१०

कार्य कर । सब कार्य उसके दाहिनी ओर कर, जो वर तैरी कामनासे अनुकूल है ।

देवा गर्भे समैरयन् ते व्यूर्णयन्तु सुतवे ।

अ. १।१३।२

देव इस गर्भको घेरना करें, वसुतिके लिये उस गर्भको घेरित करें ।

ब्रह्मसिंह सहमानाथो त्वमसि सासहिः ।

उभे सहस्रसौ भूर्या सपत्नी मे सहस्रहै ॥

अ. ३।१८।५

मैं विजयी हूँ और तू विजयी है । दोनों विजयी होकर सपत्नीका पराभव करेंगे ।

पला सौमगतवमस्तवस्यै । अ. २।३१।१

इस कुमारीको इस पतिसे सौभाग्य प्राप्त हो ।

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति । अ. २।३१।३

हे अग्ने ! यह नारी पतिको प्राप्त करे, राजा सोम इसको वधम माग्यवती करे ।

घृक्षं यद् गायः परिपस्वजाना अनुस्फुरं शार-
मर्चन्त्युभुम् । अथर्व १।१।३

घृक्षं परिपस्वजाना गायः ऋक्षं शारं अनुस्फुरं अर्चन्ति— ऋक्ष (से उत्पन्न धनुष्यके साथ रहकर) गौ (घर्मसे बनी ढोरीया) सीधे बाणकी स्फूर्तिके साथ जिस तरह कैंकती है (इस तरह धनुषके साथ मिश्रकर रहनेवाली बिजा की कृत्तिके वीर पुत्रकी शत्रुघर भर्जे ।)

धनुष्यकी कड़वी पुण्ड्र है, केरी खी है, इनका पुत्र बाण है । जिस तरह धनुष्य धनुष बाण कैंकता है उस तरह गृहस्थ अपने पुत्रको सलवार बनाकर शत्रुघर भर्जे और धनुषका पालना करें ।

रट्टयाभि चित्तु उभे भार्ता इय ज्यया ।

अथर्व १।१।३

(उभे जायनी ज्यया ऋक्ष) धनुष्यके दोनों ओर जैसे रीतिसे पने रहने हैं, इस तरह (यह पृथ्वी अग्नि विष्णु) वही ही दोनोंको तनारो है (धनुष्यकी दोनों धनुष्यके दोनों ओरकी तनार रहती है, जिससे बिजय मित्रता है । इस तरह इस संसारमें दोनों—ब्रह्म-जीव, धीमत्त इति,

विद्वान् अविद्वान्— कार्य करनेके लिये जिस देवमें सिद्ध रहने हैं, वह देव विजयी होता है ।)

त्वष्टा दुद्धिरे वहतुं (वि) युनक्ति । अ. ३।३१।५

पिता पुत्रकी दूधने देनेके लिये बलवत् करके रखता है ।

सुसप्रसूति

आ ते योनिं गर्भं पतु पुमान् याण इयमुधिम् ।

अ. ३।२३।२

जैसा बाण भातेमें जाता है वैसा यह पुरुषका गर्भ भरे गर्भाशयमें जावे । (बाण सानुनाश करता है वैसा यह गर्भ वीर बने, शत्रु नाश करे ।)

आ योनिं गर्भं पतु ते । अ. ३।२३।५

तेरे उदरसे पुरुष गर्भ होवे ।

रक्तस्राव दूर करना

तेभिर्मै सर्वैः संस्त्रायेधेनं सं स्त्रायामसि ।

अ. १।१५।३

जब सब रोगोंसे हम सब धनको सम्पत् रीतिसे इच्छा करते हैं ।

नियमसे चलना

वायस्वपतिर्नियच्छतु । अथर्व १।१।३

विद्वान् नियमसे चलावे । (विद्वान्के नियमसे अन्य लोग चले, जिससे उनकी इच्छा होती ।)

गणि धारण

परीन् पासो अधिषाः स्मरन्वे । अ. २।१३।३

इस बख्को अपने बस्त्रपाण्डे लिये धारण करो ।

अङ्गिको अङ्गमाद् विशारद् विशेष्टपाद्मिशो-
धमात् । गणिः सहस्रधोर्यः परि नः पातु

विष्मत्तः ॥ अ. २।१२

यह अङ्गिक गणि सहस्र रोगोंसे पुत्र होनेके कारण उद्ग-
हाई, हीरगा, जीवक रोग, तथा सोढ करके रोगघट-
तिसे, सब रोगसे हमारा रक्षण करे ।

अयं विश्वगर्भं सृष्ट्वाऽयं याचते अग्निपत्तः ।

अयं जो विश्वभेषजो अङ्गिकः पापघटयः ॥

अ. २।१३

यह अङ्गिक गणि सृष्ट रोगके घट पाई, यद्वाय भक्षक

करनेवाले क्रिमियोंको दायी पहुँचाता है, यह सब जाँपधी शक्तियोंसे युक्त है यह पापसे हमें बचावे ।

शानश्च मा जगिदश्च विष्कषादभि रक्षताम् ।

अरण्यादय आभृत कृष्या अन्यो रसेभ्य ॥

अ २।१।५

शान और जगिद ये दोनों शापक रोगसे मेरा रक्षण करें । एक वनसे लाया है और दूसरा खेतीके रसोंसे बनाया है ।

काम

कामेन त्वा प्रति गृह्णामि, कामेत्ते । अ ३।२९।७
कामसे प्राप्त होता हूँ । यह सब है काम । तेरा कर्तव्य है ।

पापसे बचना

यदेनश्चकृषाञ्, यद्ग पप, तविश्वकर्मन् प्रमुञ्चा
स्वस्तये । अ. २ ३।५।३
इसने पाप किया, इसलिये यह बन्ध हुआ है । हे विश्वके रचना करनेवाले प्रभु ! उसको कल्याण प्राप्त हो इस लिये उसे मुक्त कर ।

पापमार्त्तचपकामस्य कर्ता । अ २।१२।५

कनिए कार्य करनेवाला पापको प्राप्त होवे ।

मातेव पुत्र प्रमत्ता उपस्थे मित्र एन मित्रिया

स्पायवहन् । अ २।२८।१

जैमी माता प्रेमसे पुत्रका गोदमें लेती है । उस तरह मित्र मित्रसबधि पापसे इसको बचाव ।

ते नो निर्मत्त्या पाशेभ्यो मुञ्जताहसो-अहस ।

अ १।३।१२

ये देव विनाशके पाशोंसे तथा पापसे इसे मुक्त करें ।

विश्व मुग्र निचिकेपि द्रुग्धम् । अ १।१०।२

हे उग्र वीर ! सब पापको तू जानता है । पाप कहाँ रहता है वह तू जानता है ।

व्याकृतय एपामितायो चित्तानि मुह्यत ।

अथो यदधेपा हृदि तदेपा परि निर्जदि ॥

अ ३।२ ४

इस शत्रुओंके सदृशों और इसके चित्तोंको मोहित करो । और या इसके हृदयमें विचार है उन सबका नाश करो ।

व्यहं सर्वेण पाप्मना । अ. ३।३।११-५, १०-११
सब पापोंसे मैं दूर रहता हूँ ।

वि शक्र. पापकृत्या । अ ३।३।२

समर्थ मनुष्य पापकर्मसे दूर रहता है ।

सजातानुग्रेहा वद् ग्रह्य चाप चिकीहि नः ।

अ १।१०।४

हे उग्र वीर ! स्वजातियोंसे धोपणा करके कष्ट दे कि हमारा शान ही दोषोंको दूर कर सकता है ।

आत्मरक्षण

तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः । अ २।१३।५

सब देव तेरी सुरक्षा करें ।

सूरिरसि, वर्चांघा असि, तनूपानोऽसि ।

अ २।१।४

तू ज्ञानी है, तू तेजस्वी है, तू शरीरका रक्षण करने वाला है ।

अन्न-जल

तौलस्य प्राधान । अ १।७।२

तोलकर खाओ । (मित्र भोजन करो)

क इद कसा अदात् काम कामयादात् ।

अ ३।२९।७

किसने यह किसको दिया । काम ही कामके क्षिप देता है ।

दानाय चोदय ।

अ ३।२०।७

दानके लिये मेरणा कर ।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त स फिर ।

अ ३।२४।५

शत हस्तोंसे प्राप्त कर और हजार हाथोंसे दान कर ।

धृत पीत्वा मधु चाक्ष गन्धम् ।

अ २।१।१

मीठा सुगन्ध गोडा घी पीओ ।

इह पुष्टिरिदं रस इह सदद्यत्तात्मा भव ।

पशून् यमिनि पोषय ।

अ ३।२८।४

यहाँ पुष्टि और यहाँ रस है । यहाँ हजारों काम देनेवाली होकर रह । हे सुधमें बन्ध देनेवाली गो ! यहाँ पशुओंको पुष्ट कर ।

सा न आयुधमर्तो प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ।

अ. ३।१०।३८

यह हूँ हमारी दीर्घायुवाली प्रजाको जनकी दुष्टिसे युक्त कर ।

अविस्तस्मात् प्र मुञ्चसि दत्तः क्षितिपात्स्वधा ।

अ. ३।११।१

यह (सोलहवां भाग कर) दिया हुआ रक्षक जनकर हितमेंसे रक्षण करनेवाला तथा अपनी धारणा करनेवाला होता है, और यह दुःखसे मुक्त करता है ।

दुर्गा मे पञ्च प्रदक्षिणे दुःहामुषीं यथापलम् ।

अ. ३।१०।९

ये सभी पाँच दिशाएँ यह दृष्टी यथाशक्ति मुझे साम-
र्थ्य देवे ।

एष चां चापाशुधिषी वपस्वेमा क्षुघ्न मा वपत् ।

अ. ३।११।७

हे छावाशुधिषी ! यह तुम्हारे समीप रहता हुआ क्षुधासे
नयवा तुपासे दुःखी न हो ।

गृहनिर्माण

गृहानलुप्ततो ययं संपिपेमोष गोममः ।

अ. ३।१०।११

हमारे घरोंमें बहुत माँसे हैं और किसी वस्तुकी ग्युलता
न रहे ।

तं त्वा शाले सर्वघोराः सुघोरा अरिष्टवीरा
उपसंक्षरेम ।

अ. ३।११।१

हे घर ! तरे जाओ और हम सब उत्तम वीर, उत्तम
पराक्रम करते हुए संचार करते रहेंगे ।

इदेष भुधा क्षिप्र शालेऽग्नाघर्षा गोमतीमुनु-
तापयताः ऊर्जस्वतां घृतपनी पयसायुक्तययस्य
महतं सोमगाय ॥

अ. ३।११।२

हे घर ! तू यही रह, यही खाद्य रह, गोमतीसे युक्त,
घोरोसे युक्त, मधुर भावमत्त अन्नशाल् योसे युक्त, दूधसे युक्त
होकर महान् सोमगायसे युक्त होकर यही खाद्य रह ।

मा त्वा पातो गमेद्वा कुपार आघेनयः स्वाप-
मार्पण्डमानाः ॥

अ. ३।११।३

आवे पात पड़ना नही अथवा तथा दूधनी दूध नही
पार्षदाय नही होवे ।

घरुणयसि शाले गृहच्छन्दा प्रतिधान्या ।

अ. ३।११।३

हे घर ! तू बड़े छववाला भीरु पवित्र धाम्यवाला होकर
पारणनाक्षिसे युक्त होकर रह ।

सृणं वसना सुमना असस्यं ।

अ. ३।११।५

पासको पहनेवाला तू घर हमारे लिये उत्तम मनवाला
हो ।

मानस्य पानि शरणा स्योना देधी देवेभिर्नि-
मित्तस्यमे ।

अ. ३।११।५

संमनका रक्षक, रहने योग्य, सुखकर यह दिग्ग घर
देवोंद्वारा पहिले बनाया गया था ।

अनेन स्थूयामधि रोह धंशोभो विद्यानप्रप
युद्धय शार्पन् ।

अ. ३।११।९

हे बाँत ! अपने तीक्ष्णमते अपने आपादपर छाया रह ।
उम्रवीर जनकर शत्रुघर्षोंको हरा दे ।

शाले शार्त नमिमे शरद्ः सर्वपीराः ।

अ. ३।११।६

हे घर ! सब वीर पुत्रोंसे युद्ध होकर हम सब वपोंक
जीवित रहेंगे ।

एषां कुमारस्तगण मा परसो जगता सह ।

एषां परिच्छुतः युग्म आ द्रुमः बलद्वैरुगः ॥

अ. ३।११।७

इन घरके पाव कुमार जावे, गदन जावे, बघड़ेके साथ
बड़नेवासे गो आदि जानी जायें, इनके पाव मधुर रससे
यथा पक्का रहोके कलतीके साथ न्य न्य ।

असी यो अघराद् गृहः तत्र समवतरपः ।

तत्र सेदिन्वंच्यतु सर्पाय पाशुपापायः ॥

अ. ३।११।३

जो यह गीच घर है, वहाँ विजिती रहें, वहाँ जंग हो,
तब पायना वहाँ रहे ।

मा मे रिपानुपसकारे गृहाम् ।

अ. ३।११।४

हे घर ! मेरे आपसमें रहनेवाले विरह न रहें ।

पूर्वं नाहि म भर कुम्भमेतं घृतमय धागमम्
तेन रंशुनाम् । इमां पाशुमशुनेना समहर्षा-

शार्पण्येनाम् ॥

अ. ३।११।४

हे घर ! हम पूर्व में भरके कुम्भमें घृतमय धागमम्
तेन रंशुनाम् और इमां पाशुमशुनेना समहर्षा-

धाराको अच्छी तरह भरकर ले जाओ । पीनेवालोंको अच्छी तरह भर दे । यज्ञ और अन्नदान इस घरका रक्षण करते हैं ।

गौ

स नः प्रजास्थातमस्तु गोषु प्राणेषु जागृहि ।

यह तू हमारी प्रजा, आत्मा, गौर्वों और प्राणोंके विषयमें जागता रह ।

इहैव गाव एतनेहो शक्रेय पुष्यत ।

इहैयोत प्रजायध्वं मयि संज्ञानमस्तु धः ॥

अ. ३।१११७

हे गौर्वों ! यहाँ आओ, सकके समान पुष्ट बनो, यहाँ बच्चे उत्पन्न करो और आपका प्रेम सुप्तपर रहे ।

मया गावो गोपतिना संचर्ध्व अयं वो गोष्ट

इह पोपयिष्णुः । रायस्पोषेण बहुला भवंती-

र्जावा जीघन्तीरुप धः सदेम ॥ अ. ३।१११८

हे गौर्वों ! सुप्त गोपतीके साथ मिली रहो । तुम्हारा पोषण करनेवाली यह गोशाला यहाँ है । शोभायुक्त वृद्धिके साथ बढती हुई, जीवित रहनेवाली तुमको हम सब प्राप्त करते हैं ।

संज्ञग्मना अविभ्युपीरस्मिन्गोष्टे करीयिणीः ।

विधत्ती सोऽयं मध्वनमीवा उपेतन ॥

अ. ३।१११९

इस गोशालामें मिलकर रहती हुई, निर्भय होकर गोबरका उत्पन्न खाद उत्पन्न करनेवाली, शांति उत्पन्न करनेवाले रस-दूध-का धारण करती हुई हमारे पास हमारे समीप गौर्वें जा जाय ।

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।

इहैयोत प्रजायध्वं मया धः संयुजामसि ॥

इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु । अ. ३।२६१

इस गोशालामें पशु रहें ।

अध्यावतीर्गोमतीर्न उपासो वीरवतीः सदमु-

च्छन्तु भद्राः । घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ अ. ३।१५।७

कल्याण करनेवाली उपायें घोटों और गौर्वोंके साथ तथा वीर पुत्रोंके साथ हमारे घरोंको प्रकाशित करें । वी देवें, सब ओरसे संतुष्ट होकर आप सदा हमें कल्याणोंसे सुरक्षित रहें ।

तीव्रो रसो मधुपृचामरंग आ मा प्राणेन सह

वर्चसा गमेत् ।

अ. ३।१३।५

यह मधुरतासे भरा तीव्र जलरूप रस, प्राण और तेजके साथ युक्त प्राप्त हो ।

ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती घत्ते पयो अस्मै पयस्वती

घत्तम् । ऊर्जमस्मै धावापृथिवी अघातां विश्वे-

देवा मरुत ऊर्जमापः ॥

अ. ३।२९।५

अन्नवाली (धावापृथिवी) इसे अन्न देवे, दूधवाली इसे दूध देवे, धावापृथिवी इसको सब देवे, सब देव, मरुत और जल इसे शक्ति प्रदान करे ।

आ हरामि गवां क्षीरं आहार्यं घान्यं रसम् ।

आहृता अस्माकं घोरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥

अ. ३।२६।५

मैं गौओंका दूध खाता हूँ, अन्न और रस खाता हूँ । हमारे वीर आगये हैं, ये पत्नियाँ हैं और यह घर है ।

सं सिचामि गवां क्षीरं समाज्येन घलं रसम् ।

सं सिक्ता अस्माकं घोरा भुवा गावो मयि गोपती ॥

अ. ३।२६।४

यदि नो गां हंसि यद्यभ्यं यदि पुरुषम् ।

तत्त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसौ अविरहा ॥

अ. ३११६४

यदि हमारी गौका वध तू करेगा, यदि घोड़ेका या यदि पुरुषका वध करेगा, तो तुझे सीसेकी गोलीसे बंध करूंगा, जिससे हमारे समीप कोई धीरोंका नाश करनेवाला नहीं रहेगा ।

कृपि

सीते वन्दामहे स्वर्वाची सुमये भव ।

यथा नः सुमना असौ यथा नः सुफला भुवः ॥

अ. ३११७८

हे हल्की रेपा ! तुझे हम वन्दन करते हैं, तू संसुक्त हो, और भागवाली हो । तू उत्तम हृष्टावाली हो और सुफल देनेवाली हो ।

शुनं याहाः, शुनं नराः, शुनं कृपतु लांगलम् ।

शुनं वर्या वध्यन्तां शुनमप्टासुविद्वध ॥

अ. ३११८६

बैक सुखी हों, मनुष्य प्रसक्त रहें, हल सुलसे जमीन खोदें, रक्षितों सुलसे बांधी जाय, और वायुक सुलसे चलाया जाय ।

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता

महद्भिः । सा नः सीते पयसाभ्याविष्टस्योर्ज

स्वती घृतघणितम्यमाना ॥ अ. ३११७९

धी और मधसे सिंचित हल्की रेपा सब देवों और वायु-कोंसे अनुमोदित हुई । हे हल्की रेपा ! तू धीसे सिंचित होकर हमें बल देनेवाली होकर वृक्षसे सुकत कर ।

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा

अनुयन्तु वाहान् । शुनासीरा हविषा तोश-

माना सुविष्यला गोपधीः कर्तमसौ ॥ अ. ३११८१

सुन्दर हल्के पाठ भूमिकी उत्तम रीतिसे खोदें । किमान सुलसे बैलोंको चलावें । हे वायु और सूर्य ! तुम हविसे समृद्ध होकर हमके लिये उत्तम फलयुक्त धान्य देवें ।

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।

सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥

अ. ३११८४

इन्द्र हल्की रेपाकी रक्षा करे, पूषा उसकी चारों ओरसे रक्षा करे । यह रसयुक्त होकर आगेके बयोंमें हमें अधिक अधिक रस प्रदान करे ।

नेदीय इस् रूपयः पक्वमाधन् । अ. ३११८२

हंसूये परिपक्व घान्यको हमारे निकट ले जावें ।

विराजः श्रुष्टिः सभरा वसन्तः । अ. ३११७९

अन्नकी उपज हमारे लिये भरपूर हो जावे ।

सीरा युञ्जति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।

धीरा देवेषु सुन्नयौ ॥ अ. ३११७९

जो क्षत्रियोंमें उत्तम मनवाले बुद्धिमान् कवि हैं वे हल जोतते हैं । और जनोंको पृथक् करते हैं ।

भगो नो राजा नि कृपि तनोतु । अ. ३११८४

राजा भग हमारे लिये हृषिके पडावे ।

युनक्त सीरा, विद्युगा तनोत, कृते योनौ घप-

तेह धीजम् ॥ अ. ३११८२

हल जोतो, जनोंको फैला दो, भूमि तैपार करनेपर बीज वहीं बो दो ।

जल

अप्सु मे सोमोऽप्रयात् । अन्तेर्विश्वानि भेपजा ॥

अपर्व ३११९२

सोमने मुझे कहा कि जलमें सब औषधियां हैं ।

अप्सन्तरसृतं अप्सु भेपजम् । अपर्व ३११९४

जलमें अमृत है, जलमें औषधि गुप्त है ।

आपः पूर्णीत भेपजं वरूयं तन्ये मम । अ. ३११९३

हे जलो ! मुझे औषध से और मेरे शरीरको संरक्षण दो ।

ईशाना वार्याणाम् । क्षयन्तीर्ध्वर्णीनाम् ।

अपो याशामि भेपजम् ॥ अपर्व ३११९४

वरणीय सुखोंका स्वामी तू है । प्राणिपोंका निवासक जल है । इस जलसे मैं औषधकी याचना करता हूं ।

आप इद्रा ख भेपजोरापो अमीयचातनीः ।

आपो विश्वस्य भेपजोस्तास्या सुञ्जन्तु क्षेत्रियात् ॥

अ. ३११९५

जल औषधी है, जल रोग दूर करनेवाला है, जल सब रोगोंकी औषधी है, इस जलसे आनुवंशिक रोगसे तुझे सुक्त करावा हूं ।

अपां तेजो ज्योतिरोजो घलं च पनस्वतीनामुग

धीर्याणि । अग्निप्रधि धारयामः । अ. ३११९६

जलका तेज, प्रकाश, जोश, बल और वनस्पतिवोंक धीर्य (हम सुयगेंगे हैं) उनका हम धारण करते हैं ।

(आपः) अग्ने रणाय चक्षसे (दधानतः) ।

अपर्व ३११९७

जल बली हमनीयवाले दान्यसे लिये हमें धारण करे । (हमारे अन्दर हमनीयता रहे) ।

ता न आपः जं स्योना भवन्तु । अ. १।३३।१-४
वे जल हमारे छिये सुखदान्वित देनेवाले हों ।

इमा आपः प्रभरायययमा ययमनाग्निनीः ।
गृहानुपप्रसीदामि अमृतेन सदाग्निना ॥

अ. ३।१२।९

ये रोगनाशक और रोगरहित जल मैं भर लाता हूँ ।
अमृत, अन्न और अग्नि के साथ मैं घरोंमें जाकर बैठता हूँ ।

जं नः खनित्रिमा आपा । अ. १।३।४

खोदकर निकाला जल हमें सुख देवे ।

मिया नः सन्तु वार्षिकीः । अ. १।६।४

वृष्टि से प्राप्त जल हमें कल्याण करनेवाला हो ।

शन्तु सन्तु अनूच्याः । अ. १।६।४

जलपूर्ण अवैशका जल हमें शान्ति देवे ।

शान्तु या कुम्भ आभृताः । अ. १।६।४

जो जल घड़ेमें रखा है वह हमें शान्ति देवे ।

शं न आपो घन्धन्वाः । अ. १।६।४

रेतीले प्रवेशका जल हमें कल्याण करनेवाला हो ।

घृतश्रुतः शुचयो याः पाचकास्ता न आपः

शं स्योना भवन्तु । अ. १।३३।४

तेजस्वी, पवित्र, शुद्धता करनेवाला जल हमारे छिये
सुखदायी हों ।

शंयोरभिध्वन्तु नः । अथर्व १।६।१

जल हमें शान्ति और हृदय प्राप्ति देनेवाला होवे ।

शियया सन्धोष इधुशत त्वक्षं मे । अ. १।३३।४

अपना कल्याण करनेवाले शरीर से मेरी त्वचाको रक्षो करो ।

(हे आपः !) यो यः शियतमो रसः तस्य

भाजयते ह नः । अथर्व, १।५।३

हे जलो ! जो आपमें कल्याण करनेवाला रस है, उसका

हमें भागी करो । (हमें वह कल्याण करनेवाला तुम्हारा
भाग मिले ।)

आपो जनयथा च नः । अथर्व, १।५।३

हे जलो ! हमें अनाजो ।

आपो मघन्तु पीतये । अथर्व १।६।१

जल हमारे पीनेके छिये, रक्षणके छिये हो ।

शियेन मा चमृता पदयतापः । अ. १।३३।४

हे जलो ! कल्याणकारी नेत्र से आप मुझे देखो ।

आपो हि प्रा मयो भुवः ता न ऊर्जं दधातन ।

अथर्व, १।५।१

जल सचमुच सुखदायी है, वह जल हमें शक्ति दे ।

शं नो देवीरभिमृष्ये । अथर्व, १।५।१

दिग्ग्व जल हमें शान्तिसुख देवे ।

तस्मा अरंगमावयो यस्य श्रयाय जिव्यथ । ।

अथर्व, १।५।३

जिसके निवासके छिये आप वरन काते हैं, आपसे
पर्याप्त मात्रामें (वह वल) प्राप्त हो ।

अपामृत प्रवास्तिभिरश्वा भवथ वाजिनः ।

गावो भवथ वाजिनो ॥ अथर्व, १।५।४

जलके प्रसन्ननीय गुणोंसे थोड़े बलवान् होते हैं और
गौवं बलशालिनी होती हैं ।

सुभाषितोंका उपयोग

अथर्ववेदके पहिले तीन काण्डोंके सुभाषित यहाँ दिये
हैं । ये इतने ही हैं ऐसा नहीं । संख्यामें ये सुभाषित
अधिक भी हो सकते हैं । वे किस तरह अधिक हो सकते हैं
यह इस केलमें बताया ही है । व्यवहारमें उपयोगी सार्थ
अत्र आग सुभाषित कहा जाता है ।

सूरिरसि, यचोंचा असि, तनूपानोऽसि ।

अ. २।१।१४

तू शानी है, तू तेजस्वी है, तू शरीर रक्षक है । यह
एकमेत्र है, पर इसमें तीन सुभाषित हैं ।

सीसेकी गोली

‘तं तया सीसेन विध्यामः’ उस तुम्हको सीसेले
हम बेध करेंगे । सीसेले बेध करनेका अर्थ सीसेकी गोलीसे
बेध करेगे । गोला बंध करनेवालेको या पुरुषका बंध करने-
वालेको सीसेकी गोलीसे बेध करनेका दण्ड कहा है ।
सीसा था, सीसेकी गोली थी और गोलीसे बेध करनेका
साधन बंदूक जैसा कुछ था ऐसा यहाँ पता लगता है ।

जलचिकित्सासे सब रोग दूर होते हैं ऐसा पाठक जलके
सुभाषितोंमें देखेंगे । सुभाषितोंका उपयोग करनेकी रीति
यहाँ बताया है । वेदके उपदेशको मानवी आचार और
व्यवहारमें खानेकी रीति यह है । पाठक इसका उपयोग
करके वैदिक जीवनसे व्यवहार करके अपना काम प्राप्त करें ।



अथर्ववेद

का

सुकोष्क भाष्य ।

प्रथमं काण्डम् ।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सावरकर,
साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार,
भाष्यस्य स्वाध्याय मंडल, मानदायम पारसी [नि. सुरत]

तृतीय वार

मार्च २००९, इ.स. १९५१, म.स. १९५०

ब्रह्म और ज्येष्ठ ब्रह्म ।

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेदं परमेष्ठिनं यश्च वेदं प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥

(अथर्व० १०।७।१०)

“ (ये) जो (पुरुषे ब्रह्म) पुरुषमें ब्रह्म (विदुः) जानते हैं, वे (परमेष्ठिनं) परमेष्ठीको जानते हैं, जो परमेष्ठीको जानता है, और जो प्रजापतिको जानता है, तथा जो (ज्येष्ठं ब्राह्मणं) श्रेष्ठ ब्राह्मणको जानते हैं, वे स्कम्भको (अनुसंविदुः) उत्तम प्रकार जानते हैं । ”

६ साम्मनस्यम्—जनतामें ऐक्य, मिलाप, प्रेम, एकता आदिही स्थापना के उपाय ।

७ राजकर्म—राजके लिये कर्मेयोग्य कर्म ।

८ शत्रुनाशनम्—शत्रुको कष्ट पहुँचानेका उपाय ।

९ सप्तामविजय—युद्धमें विजय संपादन करना ।

१० शस्त्रनिशारणम्—शत्रुओंके शस्त्रोंका निवारण करना ।

११ परसेनामोहनेद्विजनस्त्वभनोचाटनादृनि—

शत्रुसामें मोह भ्रम उत्पन्न करना, उनमें उद्वेग-भय उत्पन्न करना, उनकी हलचलको रोकना, उनको उखाड़ देना आदिका साधन ।

१२ स्वमेनोमाहपरिरक्षणभयार्थानि—अपनी सेनास उखाड़ बहाना, और उसको निभेय करना ।

१३ सप्ताम जयपराजयपरीक्षा—युद्धमें जय होमा या पराजय होगा इसका विचार ।

१४ सेनापत्यादिप्रधानपुरश्चर्यकर्मणि—सेनापति मंत्री आदि मुख्य ओहदेदारोंके विषयका उद्योग ।

१५ परसेनामचरगम्—शत्रुकी सेनामें संचार करके गुप्त रीतिसे सब शान प्राप्त करना और वहाँके अपने ऊपर आनेवाले अनिष्टोंको दूर करना ।

१६ शत्रुमादितस्य राज्ञ पुन म्वराष्ट्रप्रवेतानम्—शत्रु-द्वारा उठाये गये अपने राजाको पुन साराष्ट्रमें स्थापन करनेके उद्योग ।

१७ पापभयकर्म—दत्तके साधनोंको दूर करना ।

१८ गोममूत्रिद्विपुष्टितराणि—गौ बैल आदिकोंका संवर्धन और दृष्टिमा गोपन करना ।

१९ गृहमग्न्यराणि—घरकी चोभा बहानेके कर्म ।

२० भैरव्यानि—रोगनिवारक औषधियाँ ।

२१ गर्भाजानादि कर्म—(जय संस्कार)

२२ गमापयगतापनम्—गमामें जय, विशादमें त्रय और कष्ट शान करनेके उपाय ।

२३ पृष्टिमायनम्—योग समवार कष्ट करनेका उपाय ।

२४ उपायानकर्म—शत्रुपर कडाई करना ।

२५ वर्तमगपयाम—त्रय विजय आदिमें साम ।

२६ यज्ञविमोचनम्—जय उत्पन्न करना ।

२७ अग्निधारिणारणम्—नाथने अग्नि कायन करना ।

२८ अग्निधार—शत्रुको नाश करनेका उपाय ।

२९ शत्रुपयनम्—गुप्तमें दंडकारणमें भयान ।

३० धातुपय—दीर्घ आनुपयकारक ।

३१ धातुपय—दीर्घ

इत्यादि अनेक विषय इस वेदमें आनेके कारण इसका अध्ययन विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे करना आवश्यक है । ये सब उपाय और कर्म मनुष्यमानके अभ्युदय नि.भयभके साधक होनेके कारण मानव जातिके लिये लाभदायक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता । परन्तु यहाँ विचार इतनाही है कि, ये सब विषय अथर्ववेदके सूक्तोंसे हम भिन्न रीतिसे जानकर अनुभवमें ला सकते हैं । नि.सद्व यह महान् और गंभीर तथा कष्टसे ज्ञान होनेवाला विषय है । इसलिये यदि सुविज्ञ पाठक इसमें अपना सहयोग देगे तोही इस गंभीर विषयका कुछ पता लग सकता है, और गुप्त विषय अधिक खुल सकता है । क्योंकि किसी एक मनुष्यके प्रयत्नसे इस कठिन विषयकी उत्पत्ति होना प्रायः अशक्य ही है ।

(४) मनका संबंध ।

अथर्ववेदद्वारा जो कर्म किये जाते हैं वे मनकी एकाग्रतासे उत्पन्न हुए सामर्थ्यसे ही किये जाते हैं, क्योंकि आत्मा, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि अत शक्तियोंसे ही अथर्ववेदका विशेष संबंध है, इस विषयमें देखिये—

मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्यतरं पक्षं संस्करोति

(गोप्य मा० ३।१२)

ब्रह्माचा प्रत्या विषयैकं पक्षं संस्करोते । मनसैव ब्रह्मा संस्करोति ॥

(ऐतरेय मा० ५।३३)

अर्थात् “अथर्ववेद यज्ञवेद और सामवेद द्वारा वागीपर संस्कार होकर एक भाग सुसंस्कृत होता है और अथर्ववेद द्वारा मनपर संस्कार होकर दूसरा भाग सुसंस्कृत होता है ।” मनुष्यमें वाणी और मन ये ही मुख्य दो पक्ष हैं । उन दोनोंसे ही मानवी उन्नतिके साधक अभ्युदय नि.भयत विषयक कर्म होते हैं ।

शरीरके रोग दूर करना ही अथवा राष्ट्रका विजय संपादन करना ही, तो ये सब कर्म मानसिक सामर्थ्यसे ही हो सकते हैं । इसी लिये अथर्ववेदमें मन-शक्तिकी अभिवृद्धि द्वारा उक्त कर्म और विविध पुष्टार्थ सिद्ध करनेके उपाय बताये हैं ।

(५) शान्तिकर्मके विभाग ।

गमाम तथा राष्ट्रमें शान्ति स्थापन करना अथर्ववेदका मुख्य विषय है । येनमय, शत्रुता, द्वेष आदि भावोंसे दूर करके मित्रता, एक विचार, सुमनागमना आदिही तृप्ति करना अथर्ववेदका माध्यम है । इसी कार्यकी गतिदेके लिये अथर्ववेदका धर्म प्रवर्णन है । दण्ड प्रवर्णनमें कई प्रकारकी शान्तियाँ हैं, जिनका मोक्षार्थ बंदन दंडी करना उचित है—

- १ भूचाल, विद्युत्पात आदिके भय निवारण करनेके लिये महाशान्ति ।
- २ आयुष्य प्राप्ति और वृद्धिके लिये वैश्वदेवी शान्ति ।
- ३ आन्यादि भयकी निवृत्तिके लिये आग्नेयी शान्ति ।
- ४ रोगादि निवृत्तिके लिये आग्नेयी शान्ति ।
- ५ ब्रह्मवर्चस—ज्ञानका तेज प्राप्त करनेके मार्गमें आने वाले विघ्न दूर करनेके लिये प्राची शान्ति ।
- ६ राज्यलक्ष्मी और ब्रह्मवर्चस प्राप्त करनेके लिये अथाय क्षात्र और ग्राह्य तेज की वृद्धि करनेके लिये भार्गवस्य शान्ति ।
- ७ प्रजा क्षय न हो और प्रजा पशु भक्ष आदिकी प्राप्ति हो इसलिये प्राजापत्या शान्ति ।
- ८ बुद्धि करनेके लिये सारिनी शान्ति ।
- ९ शापसम्पन्नताके लिये मायत्री शान्ति ।
- १० घनादि ऐश्वर्य प्राप्त करने, शत्रुसे होनेवाला भय दूर करने और अपने शत्रुको उखाड़ देनेके लिये आग्निरी शान्ति ।
- ११ पराक्रम दूर हो और अपने राज्यका विजय हो तथा अपना बल, अपनी उष्टि और अपना ऐश्वर्य बढ़े इसलिये ऐन्द्रि शान्ति ।
- १२ राज्यविस्तार करनेके लिये माहेन्द्री शान्ति ।
- १३ अपने धनका नाश न हो और अपना ऐश्वर्य बढ़े इसलिये करनेयोग्य कौवेरी शान्ति ।
- १४ विद्या तेज धन और आयु बढ़ानेवाली आदित्या शान्ति ।
- १५ भक्षकी विपुलता करनेवाली वैष्णवी शान्ति ।
- १६ वैभव प्राप्त करानेवाली तथा धन्य सत्कारपूर्वक महादिकी शान्ति करनेवाली वास्तोपत्या शान्ति ।
- १७ रोग और आपत्ति आदिके कष्टसे बचानेवाली रौद्री शान्ति ।
- १८ विजय प्राप्त करानेवाली अपराजिता शान्ति ।
- १९ शत्रुका भय दूर करनेवाली याम्या शान्ति ।
- २० जलभय दूर करनेवाली धारणी शान्ति ।
- २१ वायुभय दूर करनेवाली पापन्या शान्ति ।
- २२ कुलक्षय दूर करनेवाली और पुण्यवृद्धि करनेवाली सन्नति शान्ति ।
- २३ यक्षादि भोग बढ़ानेवाली तथा कारीगरीकी वृद्धि करनेवाली ग्यार्ही शान्ति ।
- २४ बालकोंके दृष्टिदूर करके उनको अष्टगुणसे बचानेके लिये कौमारी शान्ति ।

- २५ दुर्गातिसे बचानेके लिये नैऋति शान्ति ।
- २६ बलवृद्धि करनेवाली मायद्गणी शान्ति ।
- २७ घोडाकी अभिवृद्धि करनेके लिये गान्धर्वी शान्ति ।
- २८ हाथियोंकी अभिवृद्धि करनेके लिये पारावती शान्ति ।
- २९ शूम्भिके संग्रही कष्ट दूर करनेके लिये पार्थिवी शान्ति ।
- ३० सब प्रकारका भय दूर करनेवाली अभया शान्ति ।

ये और इस प्रकारकी अनेक शान्तिया अथर्ववेदसे सिद्ध होती हैं। इनका नामोंका भी यदि विचार पाठक करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि मनुष्यका जीवन सुखमय करनेके लिये ही इनका उपयोग नि संदेह है। वेदमंत्रोंका मनन करके प्राचान ऋषि मुनि अपनी उन्नति की विचार्य किस रीतिसे सिद्ध करते थे, इसकी कल्पना इन शान्तिवाक्यों विचार करनेसे हो सकती है। कई शान्तिवाक्यों नामोंसे पता लग सकता है कि किस ऋषिजी जीवते किस शान्तिर्कर्मशी उत्पत्ति हुई। यदि वैदिक धर्म जीवित और जाग्रत रूपमें फिर अपने जीवनमें डालना है तो पाठकोंकी भी इसी दृष्टिसे विचार करना अत्यावश्यक है।

विविध इष्टियां, याग, कर्तु, मेघ आदिकी जो योजना वैदिक धर्ममें है, वह उक्त बातकी सिद्धता करनेके लिये ही है। इन सबका विचार क्या है और इनकी श्रद्धा किस रीतिसे का जा सकती है इसका यथामति विचार आगे किया जायगा। परन्तु यहाँ निवेदन है कि पाठक भी अपनी बुद्धियोंकी इस दृष्टिसे काममें लावें और जो खोज होगी वह प्रकाशित करें। क्योंकि अनेक बुद्धिकी एकत्र होनेसे ही यह विद्या पुनः प्रकट हो सकती है अन्यथा इसके प्रकट होनेका कोई समभव नहीं है।

(६) मन्त्रोंके अनेक उद्देश्य ।

(७) सूक्तोंके गण ।

अथर्ववेदके सूक्तों और मंत्रोंके कई गण हैं, जिनके नाम “अमय गण, अपराजित गण, सामामिक गण” इतने प्रकार अनेक हैं। प्रथम कांडमें अपराजित गणके सूक्त निम्न-लिखित हैं—

१ विश्वा शरस्य पितरं ० (१।२)

२ मा नो विदन् विव्याधिनः ० (१।१९)

३ अद्भारधुद्रवतु देव ० (१।२०)

४ स्वस्तिदा विश्वा पतिः ० (१।२१)

इसके पश्चात् पष्ठकाण्डमें अपराजित गणके सूक्त निम्नलिखित हैं—

५ अय मनुः ० (६।६५)

६ निर्दस्ताः क्षत्रुः ० (६।६६)

७ परिवर्त्मानि ० (६।६७)

८ अभिर्यमः ० (६।७७)

९ इन्द्रो जयाति ० (६।९८)

१० अग्नि त्वेन्द्र ० (६।९९)

कौनसा सूक्त किस गणमें है, यह समझनेसे उसका अर्थ करना, उसके अर्थका मनन करना और उससे बोध लेना, बड़ा सुगम हो सकता है। तथा गणोंके मंत्रोंके अंदर परस्पर संबंध देखना भी सुगम हो जाता है। इसलिये इस गणोंका विचार वेद पढ़नेके समय अवश्य ध्यानमें भरना चाहिये। हम आगे बतायेंगे कि कौनसा सूक्त किस गणमें आता है और उसका परस्पर संबंध किस पद्धतिसे देखना होता है।

पूर्वोक्त शांतिधर्म जिन जिन छान्तिश्लोकों संबंध राजसूक्त-स्थिति है, उन छान्तिधर्मोंके साथ अपराजित गणके मंत्रोंका संबंध है, इस एक बातसे पाठक बहुत कुछ बोध प्राप्त कर सकते हैं। एक एक गणके विषयमें हम स्वतंत्र निबंध लिखकर उसका अधिक विचार आगे करेंगे। उसका अनुसंधान पाठक करें इसी लिये यह बात यहाँ दर्शायी है।

अब इन छह गणोंका विचार हो जायगा तब ही वेद की रिता ज्ञात हो सकती है, अन्यथा नहीं। यही यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि कई सूक्त किसी गणके साथ सम्बन्ध नहीं रखते अपौरुषे स्वतंत्र हैं अथवा उनका सम्बन्ध गणसूक्तोंके समान किंवा अन्य सूक्तोंके नहीं है।

“स्वतंत्र-गूढत” और “गण-गूढत” इनका विचार करनेके लिये हमने गूढतके मंत्रोंका मनन स्वतंत्र शांतिमें करना चाहिये, और गणगूढतके मंत्रोंका मनन गणगूढतोंके संबंध-विचार करते ही करना चाहिये।

(८) अथर्ववेदका महत्त्व ।

ऋग्वेदसे ज्ञान, यजुर्वेदसे उत्तम कर्म और सामवेदसे उत्तम पुरुषकी उपासना, इन तीन काण्डोंका अभ्यास होनेके पश्चात् आत्माका ज्ञान और बल प्राप्त करनेके मार्ग बतानेका कार्य अथर्ववेद करता है। इस कारण इसको “ऋग्वेद” अथवा “आत्मवेद” भी कहते हैं।

उत्तम ज्ञान, प्रशस्त कर्म और उत्तम पुरुषकी उपासना द्वारा अंतःशुद्धि होनेके पश्चात् ब्रह्मका ज्ञान संभवनीय है, इसलिये यह पूर्वोक्त वेदत्रयीसे भिन्न यह “चतुर्थ वेद” कहा जाता है।

उपासक लोग आत्माको जगत्में ढूँढते ढूँढते दृढ़ गये, उस समय उनको साक्षात्कार हुआ कि “आत्माको जगत्में कहाँ ढूँढते हो ? यहाँ आओ और अपने पास ही उसे ढूँढो !”

अर्थात् ईश्वरमेतास्वेवाऽप्स्वन्विच्छेति, तद्यद्यस्वीद्यार्वाहृतेन-मेतास्वेवाप्स्वन्विच्छेति, तद्यद्यस्वीभनत् ॥

(गोपय-ब्राह्मण १-७)

“अब पास ही उसे ढूँढो !” वह पास ही है। यह बात इस अर्थसे [अय-अर्वाहृ-अयवो (कृ)] वेदने कही, इसी लिये इसका नाम “अथर्ववेद” हुआ है। यह गोपय ब्राह्मणका कथन अथर्ववेदका ज्ञानक्षेत्र कहाँ तक है इसका वर्णन स्पष्ट शब्दोंमें कर रहा है। आत्माका पता अपने पास ही लगना है, यह बताना अथर्ववेदके ज्ञानक्षेत्रमें है। इसी लिये इसका नाम “ऋग्वेद” है क्योंकि यही ब्राह्मणका ज्ञान बताता है।

“यव” शब्द चंचलताका वाचक है। और “अ-यव” शब्द शांतिका अथवा एकाम्रताका द्योतक है। आत्माजन्म अथवा ब्रह्मसाक्षात्कार जो होना है, वह चित्तकी चंचलता दृढ़नेके पश्चात् और चित्तश्रुतियोंका निरीप होकर उसमें शांति आनेके पश्चात् ही होना है। यह आत्मज्ञानके मार्गकी सूचना इस प्रकार अपने नामसे ही इस अथर्ववेदने बता दी है। वेदके मामोका महत्त्व पाठक यहाँ देख सकते हैं।

“अयव-” (अय-अवेव) इस शब्दका अर्थ “अब इस ओर” ऐसा होता है। जगत्में दो पदार्थ हैं, एक मैं और दूसरा मेरेसे भिन्न संपूर्ण जगत्। हर एक मनुष्य समझता है कि मेरेसे भिन्न पदार्थोंसे ही मुझमें शक्ति आती है, मैं स्वयं अशक्त हूँ और शक्ति दूसरोंसे प्राप्त होती है। इस सर्वोपाहारण विचारसे भिन्न परंतु अत्यंत सत्य विचार जो अथर्ववेद जनताके सम्मुख रखना चाहता है, वह यह है कि “अब शक्ति भिन्ने अपनी ओर” ही देखो। सब जगत्में वह नियम देखो

कि श्रद्धे अंदरसे होती है, उस अंदरसे बढ़ते हैं, बालक अंदरसे बढ़ते हैं, अर्थात् शक्तिकी श्रद्धे अंदरसे हो रही है, इसलिये अपने अंदर अपनी ओर देखकर विचार करो । बाह्य जगत्में न देखते हुए, परंतु उसके साथ अपनी शक्तियोंको जोड़कर अपनी उन्नतिके हेतु अपने अंदर देखो, शक्ति अपने अंदर है न कि बाहर है । यह अथर्ववेदकी शिक्षा अत्यंत महत्त्वकी है ।

इस अथर्ववेदका स्वाध्याय करना है । ब्रह्मवेद होनेके कारण

यह वेद संपूर्ण रीतिसे समझना कठिन है, इसलिये जिस वेदके जितने मंत्र समझमें आवेंगे, उनकाही स्वाध्याय करना है । जिनका ठीक प्रकार ज्ञान नहीं हुआ उनके विषयमें हम कुछ भी नहीं लिखेंगे । तथा जो मंत्र स्वाध्यायके लिये यहां लेंगे उनके विषयमें थोड़ेसे थोड़े शब्दोंमेंही जो कुछ लिखना हो वह लिखेंगे अर्थात् बहुत विस्तार नहीं करेंगे । परंतु अर्थात्क हो सके वहां तक कोई बात संक्षिप्त नहीं छोड़ेंगे । इससे स्वाध्याय करने वालोंको बड़ी सुविधा होगी ।



अथर्ववेद ।

प्रथम--काण्ड ।

इस प्रथम काण्डमें छ अनुवाक, पैंतीस सूक्त और १५३ मंत्र हैं ।

१ प्रथम अनुवाकमें छः सूक्त हैं, तीसरे सूक्तमें ९ मंत्र हैं, शेष पाच सूक्तोंमें प्रत्येकमें चार चार हैं । इस प्रकार इस अनुवाकमें २९ मंत्र हैं ।

१ द्वितीय अनुवाकमें (७ से ११ तक) पाच सूक्त हैं । सप्तम सूक्तमें ७ और ग्यारहवें में ६, शेष तीनमें प्रत्येकमें चार चार मंत्र हैं । इस प्रकार कुल ३५ मंत्र हैं ।

३ तृतीय अनुवाक और पंचम अनुवाकों (१२ से २८ तक सूक्तों) के प्रत्येक सूक्तमें चार मंत्रवाले क्रमशः पाँच, पाच और सात सूक्त हैं । इन तीनोंकी मन्त्रसंख्या ६८ है ।

४ षष्ठ अनुवाकमें सात (२९ से ३५ तक) सूक्त हैं । २९ वें सूक्तमें छ मंत्र और ३४ वें में पाच मंत्र हैं, शेषमें चार चार हैं । इस प्रकार कुछ मन्त्रसंख्या ३१ है ।

इस ३५ सूक्तोंमें चार मन्त्रवाले सूक्त ३७ हैं, पाँच मन्त्रवाला एक, छः मन्त्रवाले दो, सात मन्त्रवाला एक, और नौ मन्त्रवाला एक है । यह सूक्त और मन्त्रविभाग देखनेसे पता लगता है कि यह अथर्ववेदका प्रथम काण्ड प्रधानतया चार मन्त्रवाले सूक्तोंका ढा है । इसका प्रथम सूक्त यह है इसमें बुद्धि बढानेका विषय कहा है जिसका नाम “ मेधा-जनन ” है—





मेधाजनन ।

(१) बुद्धिका संवर्धन करना ।

(प्राप्तिः—अथर्वा । देवता—वाचस्पतिः ।)

ये त्रिपुष्पाः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः । वाचस्पतिर्विष्ठा तेषां तन्वोऽग्रिष दधातु मे ॥१॥

अन्वयः— विश्वा रूपाणि विभ्रतः, ये त्रि-सप्ताः परियन्ति, तेषां तन्वः बला वाचस्पतिः अथ मे दधातु ॥१॥

अर्थ— सर्व रूपांको धारण करके, जो तीन-गुण-सात पदार्थ सर्वत्र व्यापते हैं, उनके धारक के बल वाणीवा दशमी भाग मुझे देवे ॥१॥

पदार्थ दो प्रकारके हैं एक रूपशाले और दूसरे रूपरहित । आत्मा परमात्मा रूपरहित हैं और संपूर्ण जगत् रूपशाले पदार्थोंसे भरा है । पदार्थोंके विविध रूप जो मनुष्य पशु पक्षी इत वनस्पति पाषाण आदि में दिखाई देते हैं—कौन धारण करता है, ये रूप कैसे बनते हैं ? इस शंकाके उत्तरमें वेद कह रहा है, कि जगत्के मूलमें जो सात पदार्थ—पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्र और अहंकार—हैं वे ही संपूर्ण जगत् में दिखाई देनेवाले विविध रूप धारण करते हैं । ये सात पदार्थ तीन अवस्थाओंमें गुजरते हुए जगत्के रूप और आकार धारण करते हैं । (१) सत्य अर्थात् समावस्था, (२) रज अर्थात् गतिरूप अवस्था और (३) तम अर्थात् गतिहीन अवस्था, इन तीन अवस्थाओंमें पूर्वोक्त सात पदार्थ गुजरनेसे जल इक्षीय पदार्थ बनते हैं, जो संपूर्ण सृष्टिका रूप धारण करते हैं ।

सृष्टिके हर एक आधारधारी पदार्थमें बड़ी शक्ति है । हमारा धारी भी सृष्टिके अंतर्गत होनेसे एक रूपजन पदार्थ है और हममें भी पूर्वोक्त " तीन गुण सात " पदार्थ हैं । और इन धारण धारीके अंदरके इन इक्षीय तत्वों का संबंध वायु जगत् के प्रभो इक्षीय तत्वोंके साथ है । धारीका दशम्य या ऐशान्य इत संबंधके ठीक होने और न होनेपर अवलंबित है ।

सृष्टिअंतर्गत इत तत्वोंको वायु जगत्के तत्वोंके साथ योग्य संबंध रखने द्वारा अपना आदेश्य विचार करके अपना बल अंदरने बजनेकी सूचना दत्त मंत्रद्वारा यहां मिलनी है । उगे वायु दृष्ट शत्रुसे अपना प्राणदा बन, वायु सूर्य-प्रकाशमें

अग्नि जेठ का बल, इसी प्रकार अग्न्याय बल बज्ज कर अपनी शक्ति परछायातक बढानी चाहिये । यह अवर्षवेदका मुख्य विषय है ।

जगत्का तत्त्वज्ञान जानकर, जगत् का अपने साथ संबंध अनुभव करके, अपना बल बज्जनेकी विद्याका अभ्यसन करके, सदा अनुष्ठान करना चाहिये । यह समतिश मूल मंत्र इत प्रथम मंत्रमें बताया है । यहां प्रश्न होता है, कि यह विद्या कौन देगा बना है ? उत्तरमें मंत्रने बताया है कि " वाचस्पति " ही उक्त ज्ञान देनेमें समर्थ है ।

" वाचस्पति " कौन है ? वाच्, वाच्, वाणी, वक्त्र, उपदेश, व्याख्यान ये समानार्थक शब्द हैं । वक्त्र करने-वाला अर्थात् उत्तम उपदेशक शुद्ध ही वाच वाचस्पतिसे अभि-प्रेत है । इस अर्थको लेतेसे इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार हुआ—

" मूल सात तत्त्व तीन अवस्थामें गुजर कर सब जगत्के संपूर्ण पदार्थोंके रूप बनाने हुए मंत्रमें विद्य है । इनके बलोंको अपने अंदर धारण करनेकी विद्या व्याख्याता शुद्ध माननी मुझे पढ़ाने । "

पुनरोहिं वाचस्पते देवेन मनसा सह । वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥
 इहैवाभि वि तनूमे आत्मी इव ज्ययां । वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥

लघ्वयः— हे वाचस्पते ! देवेन मनसा सह पुनः पुनः । हे वसोष्पते ! निरमय । श्रुतं मयि मयि एव अस्तु ॥ २ ॥

ज्यया उभे आत्मी इव, इह एव उभौ अभि वि तनु । वाचस्पतिः नि यच्छतु । श्रुतं मयि मयि एव अस्तु ॥ ३ ॥

अर्थ— हे वाणीके स्वामी ! दिव्य मनके साथ सन्मुख आओ । हे बहुओंके स्वामी ! मुझे आनंदित करो । पडा हुआ ज्ञान मुझमें स्थिर रहे ॥ २ ॥

बोरीसे धनुष्यकी दोला कोटियोंकी तरह, यहाँही (दोनोंको) तनाओ । वाणीका पति नियमसे बने ; पडा हुआ ज्ञान मेरेमें स्थिर रहे ।

इस मंत्रमें प्रारंभमें ही "पुनः" शब्द है । इसका अर्थ "बारम्बार, पुनः पुनः अथवा संमुख" है । शिष्यविद्याकी एक ओर और एक दूसरी ओर होना है, इसलिये गुरु शिष्यके सम्मुख और शिष्य गुरुके सम्मुख होते हैं । इन दोनोंको इसी प्रकार रहना चाहिये । यदि ये परस्पर सम्मुख न रहे तो पढाई असंभव है ।

गुरु (देवेन मनसा) देवी भावनासे युक्त मनसेही शिष्यके पाप बर्तान करे । मन ही प्रकारके हैं—एक देव मन, और दूसरा राक्षस मन । राक्षस मन जगत् में क्षणिक उत्पन्न करता है और देव मन जगत्में वासि रहता है । गुरु देवमनसे ही शिष्यको पढ़ाये ।

गुरु शिष्यसे (नि रमय) हममात्र करे, अर्थात् ऐसा पढ़ाये कि जिससे शिष्य आनन्दके साथ पढता जाय । इस शब्दके द्वारा पढाईकी "रमण पद्धति" वेदने प्रकट की है । रमणे भिन्न "रोदन पद्धति" है जिसमें रोते हुए शिष्य पढ़ाये जाते हैं ।

"हे उत्तम उपदेश करनेवाले गुरु ! देव भावसे युक्त मनसे ही शिष्यके सम्मुख जा । हे आम्त्यादि वस्तुओंके प्रयोग कर्ता गुरु ! तू शिष्यको रमाता हुआ उसे विद्या पढाओ । शिष्य भी कहे कि पढा हुआ ज्ञान अपने अंदर स्थिर रहे ॥"

अथर्ववेद कियलाद-संहितामें मंत्रका प्रारंभ "उप नेह" शब्दसे होता है और "वसोष्पते" के स्थानपर "असोष्पते" पाठ है । अमुपति (असोः पति) का अर्थ प्राणीका पति गुरु । "प्राणीनां पति" अर्थात् योगादि साधनद्वारा प्राणीको स्वाधीन रखनेवाला उत्तम योगी गुरु हो । वह शब्द भी गुरुका एक उत्तम लक्षण बता रहा है ।

धनुष्यकी दोनों कोटियों बोरीसे तनी रहती हैं इस तनी हुई अवस्थामें ही धनुष्य विजयका साधन हो सकता है । जिस समय दोनों कोटियोंसे बोरी हट जाती है उस समय धनुष्य धनुनाच या विजय प्राप्त करनेमें असमर्थ हो जाता है । इसी प्रकार जाति या समाजरूपी धनुष्यकी दो कोटियाँ गुरु और शिष्य हैं, इन दोनोंकी विद्यावही बोरी बांधी गयी है और इस बोरीसे यह धनुष्य तना हुआ अर्थात् अपने कार्यमें सिद्ध रहता है । समाजको यह धनुष्य क्या सिद्ध रखना चाहिये । इसीकी सिद्धतासे जाति, समाज या राष्ट्र जीवित, ज्ञान और उन्नत रहता है । जिस समय विद्याही बोरी गुरु शिष्यरूपी धनुष्यमें हट जाती है उस समय अज्ञान-भुग दूर होनेके कारण जाति पतित हो जाती है ।

उपहृतो वाचस्पतिरुपास्मान्वाचस्पतिर्ह्वयताम् । सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिपि ॥ ४ ॥

अन्वयः— वाचस्पतिः उपहृतः । वाचस्पतिः अस्मान् उपह्वयताम् । श्रुतेन सद्गमेमहि । श्रुतेन मा वि राधिपि ॥ ४ ॥

अर्थ— वाणीका स्वामी तुलाया गया । वह वाणीका स्वामी हम सबको तुलावे । ज्ञानसे हम सब युक्त हों । हम ज्ञानके साथ वनी विरोध न करें ॥ ४ ॥

स्थिर रखनेके लिये अग्नि दह रहा है । पहिले पड़ा हुआ ज्ञान स्थिर रहा तो ही आगे अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । यह भाव ध्यानमें धरनेसे इस संयुक्त अर्थ निम्न प्रकार होता है—

“ जिस प्रकार बोरीसे धनुष्यकी दोनों कोटियाँ विजय-के लिये तनी होती हैं, उसी प्रकार गुरु और शिष्य ये समानकी दो कोटियाँ विद्यासे सज्ज रखिये । आचार्य स्वयं नियमानुसार चलें और शिष्यको नियमानुसार चलावें । शिष्य अध्ययन किया हुआ ज्ञान हठ करके आगे बढ़े ॥ ”

“ उपहृत ” का अर्थ “ तुलाया, पुकारा, आह्वान किया अवस्था पूछा गया ” है । उसमें व्याख्याता गुरुको हमने तुलाया और उसे प्रश्न पूछे गये अर्थात् विद्याका व्याख्यान करनेके लिये उसे आह्वान किया गया है । गुरु भी शिष्यके प्रश्न सुनकर उनके प्रश्नोंका उचित उत्तर देकर उनका समाधान करे । अर्थात् गुरु कोई बात शिष्यसे छिगांर न रखे । इस प्रकार दोनोंके परस्पर प्रेमसे विद्याकी शिंदे होती रहे ।

हरएक अपने मनमें यह इच्छा रखे कि “ हम सब ज्ञानमें युक्त हों, ज्ञानकी वृद्धि करते रहें और कभी ज्ञानकी प्रगतिमें बाधा न डालें, ज्ञानका विरोध न करें और मिथ्या ज्ञानका प्रचार न करें । ”

इस स्वस्तीकरणका विचार करनेसे इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार प्रतीत होता है—

“ हम सब व्याख्याता गुरुमें आर्यना करने हैं । वह हमें सत्य उत्तर देवे । हम [प्रश्नेतरकी रीतिमें हम सब] ज्ञानमें युक्त होते रहें और कभी हमने ज्ञानकी उन्नतिमें बाधा उत्पन्न न हो । ”

अंदर स्थिर करनेकी विद्या । गुरु हमें सिखावे ॥ १ ॥ हे गुरु ! तू मनमें शुभ संकल्प धारण करके हमारे सम्मुख आ, हमें समाते [हुए पढ़ा] प्राप्त किया हुआ ज्ञान हममें स्थिर रहे ॥ २ ॥ दोनों दोनों धनुषकोटियोंके समानके समान यहाँ तू [विद्यासे हम दोनोंको] तथा [कर बांध दे] गुरु शिष्यमें चले और हमें चलावे । ज्ञान हममें स्थिर रहे ॥ ३ ॥ हम गुरुमें प्रश्न पूछते हैं, यह हमें उत्तर देवे । हम सत्य ज्ञानी बनें । कोई भी ज्ञानका विरोध न करे ॥ ४ ॥

इन मंत्रोंका जितना मनन होगा, इनपर जितना विचार होगा, उतना ज्ञान बढ़ानेका उपाय—(संघाजनन)— हो सकता है । आचार्य के कि पाठक इसका योग्य विचार करें और अपनी परिस्थितिमें अपने ज्ञानकी वृद्धि करनेके लिये योग्य । इसमें निम्न लिखित पांच बातोंका अवश्य विचार हो—

१ विद्या— जिनसे ज्ञान बनता है उन गुरुगुरुओंका ज्ञान प्राप्त करना और उनका अपना उत्सर्गित संशय दूर करना तथा उनका अनुष्ठान करनेका विधि जानना, यही गौतमेयोग्य विद्या है ।

विजय-सूक्त ।

(२)

यद् " अपराजित गण" का प्रथम सूक्त है जिसका ऋषि " अथर्वा और देवता " 'पञ्चम्य' है ।

विद्या शरस्य पितरं पुर्जन्यं भूरिधायसम् । विदो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्षसम् ॥१॥

ज्यांकि परि णो नुमाश्मानं तन्वं कृधि । वीडुर्वरीयोऽरतीरप द्वेषास्या कृधि ॥२॥

वृक्षं यद्रावंः परिपस्वजाना अनुष्फुरं शरमर्चन्त्युभम् । शरुमस्मधावय दिद्युमिन्द्र ॥३॥

यथा दां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजन्म । एवा रोगं चास्त्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥४॥

अर्थ— (शरस्य) शरका, बाणका पिता (भूरि-धायसं पञ्चम्य) बहुत प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला पञ्चम्य है यह (विद्य) हम जानते हैं । तथा (अस्व) इसका माता (भूरि-वर्षसं) बहुत प्रकारकी कुशलताओंसे युक्त पृथिवी है, यह हमें (सुविद्य) उत्तम प्रकारसे पता है ॥ १ ॥ हे (अथाके) माता ! (नः) हम सब पुत्रोंको (परि नम) परिणत कर अर्थात् हमारे (तन्वं) शरीरको (अश्मानं) पथर जैसा सुदृढ (कृधि) कर (वीडुः) बलवान बनकर (अ-रती) अशानके भावोंके तथा (द्वेषांसि) द्वेषोंको अर्थात् सब शत्रुओंको (वरीयः) पूर्ण रीतिसे (अप कृधि) दूर कर ॥ २ ॥ (यन्) जिस प्रकार (वृक्षं) वृक्षके साथ (परिपस्वजाना) लिपटी हुई या बंधी हुई (गावः) गौएँ अपने (ऋगुं शरं) तेजस्वी ह्म शरको (अनुष्फुरं) फुसीके साथ (अर्चन्ति) चाहती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र ! (अस्मत्) हमसे (दिद्युं शरं) तेज-पुत्र बाणको (पायय) दूर बहा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार (या) युलोक और पृथ्वीके (अन्तः) बीचमें (तेजन्) तेज (तिष्ठति) होता है, (एव) इसी प्रकार यह (मुञ्जः) मुंज (रोगं च आस्त्रावं च) रोग और सावके (अन्तः) बीचमें (इत् तिष्ठतु) निधयसे रहे ॥ ४ ॥

भाषार्थ— धारण-पोषण उत्तम प्रकारसे करनेवाला पिता पञ्चम्य है, कुशलतासे अनेक कर्म करनेवाली माता पृथ्वी है, इन दोनोंसे शर शरक-पुन उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ माता पुनके शरीरपर ऐसा परिणाम करावे कि जिससे वह बलवान बनकर शत्रुओंको पूर्ण रीतिसे दूर करनेमें समर्थ हो सके ॥ २ ॥ जिस प्रकार वृक्षके साथ बंधी हुई गौएँ अपने बछड़े को बेगसे प्राप्त करना चाहती हैं, उसी प्रकार हे ईश्वर ! तेज शर हमसे आगे बड़े ॥ ३ ॥ जिस प्रकार युलोक और पृथ्वीके बीचमें प्रकाश होता है, उसी प्रकार रोग और साव-पाय के बीचमें शर ठहरे ॥ ४ ॥

५ गुद तिष्य- सख पशुपत्ये दोनों नोक जिस प्रकार झोरीसे लगे रहते हैं, उस प्रकार विद्यास्त्री झोरीसे समाजके गुरु-शिष्य-स्त्री दोनों नोक एक दूसरेमें पूर्णतया सुसंबंध रहे । कभी उनमें दलियन न आसारे ।

यद् सब सूक्त शिष्यके सुखडाता उच्चारित होनेके समान है, इसमें अनुमान होता है कि गुरुको माने, रखने आदिके प्रबंधपर विचार कर उत्तरदायक शिष्यों या शिष्योंके संरक्षकों पर ही पूर्णता है ।

अनुमन्धान

१९ प्रथम सूक्तमें " विधावन " अर्थात् पुष्टिका संबंधन

करनेके मूलभूत नियम बताये हैं । गुरु, शिष्य तथा विद्यालय आदिका संबंध किस रीतिसे करना चाहिये, एक किस प्रकार पढ़ावे, शिष्य किस ढंगसे पढ़े और दोनों मिलकर राष्ट्रीय उन्नति किस रीतिसे करें इसका विचार भिया गया ।

इसके पश्चात् विद्याकी पढ़ाई शुरू होती है, जिसमें अपरा-जित गणका सूक्त " विद्या शरस्य पितरं " यह है । अथर्व-वेदमें यह द्वितीय सूक्त है । तृतीय सूक्त भी इसी बाधवर्षे प्राप्त होता है । इन दोनों सूक्तोंका विचार आवश्यक है ।—

यद् भावार्थ भी परिपूर्ण नहीं क्योंकि इस मंत्रोंके द्वारा एक ही उद्देश्य संबंध देकर जो भाव व्यक्त होता है, वह जानकर ही मंत्रोंका सच्चा भावार्थ जानना चाहिये । यद् भाव,

देखनेके लिये भागेका स्पर्ष्टाकरण देखिये—

(१) वैयक्तिक विजय ।

इस सूक्तमें पहिला वैयक्तिक विजय प्राप्त करनेके उपदेश निम्न प्रकार बताया है—

- १ उत्तम मातापितासे जन्म प्राप्त हो, (मंत्र १)
- २ शरीर बलवान बनाया जावे, (मंत्र २)
- ३ रोगादि शत्रुओंको दूर रखा जावे, (मंत्र २)
- ४ शरीरमें कुर्सी लाई जावे, (मंत्र ३)
- ५ जगत्में अपना तेज फैलानेका यत्न किया जावे, (मंत्र ४)
- ६ शीघ्रता से रोगोंको दूर किया जावे, (मंत्र ४)

पाठक विचारकी दृष्टिसे इन मंत्रोंका विचार करेंगे तो उनकी उक्त छः भाव वैयक्तिक उन्नतिके साधन पूर्वोक्त चारों मंत्रोंके अन्दर गुप्तरूपसे दिखाई देंगे । इनका विशेष विचार होनेके लिये यहाँ मंत्रोंके शब्दार्थ और स्पर्ष्टाकरण दिये जाते हैं—

(२) पिताके गुण-धर्म-कर्म ।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें पिताके गुणधर्म बतानेवाले ये शब्द आये हैं—“ पिता, पर्जन्य, भूरिधायस्, इक्ष, धीः । ” इनके अर्थोंका बोध होनेसे पिताके गुण धर्म कर्मोंका बोध हो सकता है; इसलिये इनका आशय देखिये—

- १ पिता - (माता) रक्षक, संभालनेवाला ।
- २ पर्जन्यः - (पूर्ति+जन्म) पूर्ति करनेवाला, पूर्णता करनेवाला । न्यूनताको दूर करनेवाला ।
- ३ भूरिधायस् - (भूरि) बहुत प्रशंसे (धायस्) धारण पोषण करनेवाला, दाता, उदारचरित ।
- ४ इक्षः - आपार, स्वयं भूप सहकर दूसरोंको छाया देनेवाला ।

(३) माताके गुण-धर्म-कर्म ।

“ माता, प्रथिवी, भूरिवर्षस् जयाका, गौ ” ये पांच शब्द पूर्वोक्त मंत्रोंमें माताके गुणधर्मकर्मोंकी प्रकट कर रहे हैं । इनका अर्थ देखिये—

- १ माता - बालकोंका हित करनेवाली ।
- २ प्रथिवी - समाशूल, सहनशील, पुत्रोंकी उन्नतिके लिये आवश्यक कष्ट सहन करनेवाली ।
- ३ भूरिवर्षस् - (भूरि) बहुत (वर्षस्) वृष्टतासे कर्म करनेमें समर्थ, कर्ममें अत्यंत पुशल, सदा कर्म करनेमें दक्ष, परिशरकी उन्नतिके लिये उत्तम कर्म करनेवाली ।
- ४ जया, जयाका - (जया-जया) जयका साधन करनेवाली, माता, प्रथिवी, रक्षी, बलशालिनी ।
- ५ गौः - प्रगतिशील, दुग्धदाहिनी पुत्रोंकी पुष्टि करनेवाली । किरण, स्वर्ग, रत्न, वाणी, सरस्वती, माता, जल, नेत्र, आकाश सर्व आदिके जन्मगुणोंसे युक्त ।

माताके गुणधर्म इन शब्दों द्वारा व्यक्त हो रहे हैं । अर्थात्—“ बालबच्चोंका हित करनेवाली समाशील, पुत्रोंकी उन्नतिके लिये करनेयोग्य कर्मोंमें सदा दक्ष रहनेवाली, बहुतही पुशलतासे अपने दुर्दुर्बली उन्नति करनेमें समर्थ, बलशालिनी, योके समान दुग्धादिद्वारा बालबच्चोंकी पुष्टि करनेवाली, किरणोंके समान प्रकाश करनेवाली, स्वर्गके समान गुणदायिनी, रत्नोंके समान घरकी घोषा बढानेवाली, गुप्त भाषा करनेमें चतुर, विदुषी, बलके समान जाति बढानेवाली, नेत्रोंके समान मार्ग दर्शनेवाली, आकाशके समान सबको आश्रय देनेवाली, स्वर्गके समान अज्ञानान्धकार दूर करनेवाली माता होनी चाहिये । ”

पिताके गुणधर्मधर्म पहिले बताये, और यहाँ माताके गुण धर्म बताये हैं । ये आदर्श माता पिता हैं, इनसे जो पुत्र पैदा होगा और जोमा तथा बहादा जयगा, वह भी यथा और पुत्रही होगा तथा पुत्रो भी उसी प्रकार बीना बनेगी समय बच सहे दे ।

४ ऋतुः—बुद्धिमान्, कुशल, कारीगर, तेजस्वी ।

५ शरः—शत्रुका नाश करनेवाला ।

६ दिगुः—तेजस्वी ।

७ तेजन—प्रकाशमान ।

८ सुजः—(सुजति मार्जयति) शुद्धता और पावित्र्य करनेवाला ।

पुन ऐसा हो कि जो “शत्रुका नाश करनेमें समर्थ हो, सुख अंगबाला हो, शर, बुद्धिमान्, कुशल, कारीगर, तेजस्वी, यशस्वी और पवित्र आचरणवाला हो ।” माता पिताको चरित है, कि वे ऐसा यत्न करें कि पुत्रमें वे गुणधर्म और धर्म बड़ें और इन गुणोंके द्वारा सुलका यश फैले ।

यह बात स्पष्ट हो है कि पूर्वोक्त गुणधर्म कर्मोंसे युक्त मातापिता होंगे तो उनके पुत्रों और पुत्रियोंमें ये गुणधर्म आ सकते हैं ।

(५) एक अद्भुत अलंकार



इस सूक्तमें बाण, धनुष्य और छोरीके अलंकारसे एक महत्त्वपूर्ण बातका प्रकाश किया है । धनुष्यका सबत भाग शिवर छोटी चरार्ध बाण है वह धनुष्यका समक्षिपे, छोटी भागका है और पुत्र बाणरूप है । पिताका बल और माताकी प्रेमा इनसे युक्त होकर पुत्र संसारमें पैदा जाता है । वह संसारमें बाहर अपने शत्रुओंका नाश करके यशका मागी होगा है । इस अलंकारका विचार पाठक करने से उनको

बड़ाही बोध प्राप्त हो सकता है । पुत्रकी उत्पत्तिमें माता पिताका कार्य कितना होता है इसकी ठीक कल्पना इस अलंकारसे पाठकोंके मनमें आ सकती है ।

छोरीके बिना केवल धनु जैसा शत्रुनाश करनेमें असमर्थ है उसी प्रकार छाँके बिना पुत्र असमर्थ है । तथा जिस प्रकार धनुके बिना छोरी कार्य करनेमें असमर्थ है उसी रीतिसे पुत्रके बिना भी असमर्थ है । माता पिता की योग्य प्रेरणा और योग्य शिक्षाद्वारा सुशिक्षित बना पुत्र ही जगत्में यशस्वी होता है । यह अलंकार गृहस्थियोंसे बड़ाही बोधप्रद हो सकता है ।

पिताके सूचक “पर्जन्य, वृक्ष” आदि शब्द तथा माताके सूचक “पृथिवी” आदि शब्द उनका ऋतुगामित्व होकर प्रज्ञाची होनेकी सूचना कर रहे हैं । [इस विषयमें स्वाध्याय मंडलद्वारा प्रकाशित “प्रज्ञाचर्य” पुस्तकके अंदर अथर्ववेदीय ऋद्धाचर्य सूक्तकी व्याख्यामें पृथ्वी, पर्जन्य और वृक्षोंके प्रज्ञाचर्यका प्रकरण अवश्य देखिये]

(६) कुटुम्बका विजय ।

व्यक्तित्वी उत्पत्तिके विषयमें पहिले बतायाही है कि वैयक्तिक विजय की सूचनाएं इस सूक्तमें किंच रूपमें हैं । कुटुम्बके या परिवारके विजयका संबंध पूर्वोक्त अलंकार तथा स्पष्टीकरणके देखनेसे स्पष्ट हो सकता है । कुटुम्बका विजय माता पिताके उत्तम कर्तव्य पालन करने और सुपुत्रा निर्माण करनेसे ही प्राप्त होता है ।

(मंत्र १) जैसा “अनेक प्रकारसे पोषण करनेवाला पर्जन्य पिता ऋतुगामी होकर वर्षा ऋतुमें अपने जलरूपी शीर्षका धिचन उत्तम उपजाऊ भूमिमें कराता है और शररूपी विषयी संतानकी उत्पाति करता है,” तद्वत् माता पिता ऋतुगामी होकर भीर पुत्र उत्पन्न करें ।

(मंत्र २) “हे जयका साधन करनेवाली माता ! अपने पुत्रोंका शरीर पचकर जैसा सुख बना, त्रिषसे पुत्र बलवान बनकर अपने शत्रुओंको दूर कर सके ।”

(मंत्र ३) —“जिस प्रकार वृषके साथ बंधी हुई गोवें अपने तेज बलकेसे चाहती हैं” [उसी प्रकार पिताके साथ रहती हुई माता भी अपने श्रेष्ठ तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करनेकी ही इच्छा करे] । अथवा—“ (पुत्र) धनुष्यके साथ रहनेवाली छोटी तेजस्वी (नर) बाण ही बनेसे छोटी है ।” [उसी प्रकार पतिव्रती उपासना करनेवाली स्त्री भी पुत्र उत्पन्न होनेकी ही अभिलाषा करे ।] “ हे (शत्रु) परमा-

मन् । हमसे तेजस्वी (शस्त्रः) बाणके समान तेजस्वी पुत्र चले अर्थात् उत्पन्न हो । ” [मातापिता परमात्माकी प्रार्थना ऐसी करें कि हे ईश्वर ! हमारा ऐसा पुत्र हो कि जो दूर दूर जाकर जगत्में विजय प्राप्त करे ।]

(मंत्र ४) - “ जिस प्रकार [पिता] युलोक और [माता] पृथिवीके मध्यमें विद्युत् आदि तेजस्वी पदार्थ [पुत्ररूपसे] रहते हैं, ” [उसी प्रकार माता पिता के मध्यमें तेजस्वी अंतर बालक वामकता रहे ।] “ जैसा सुख शर रोग और खावके घावके बांधमें रहना है ” अर्थात् उनको दूर करता है उसी प्रकार [यह पवित्रता करनेवाला पुत्र रोग घावके मध्यमें रहता हुआ भी स्वयं अपना बचाव करे और कुलका भी उद्धार करे]

यह भाव पहिलेकी अपेक्षा अधिक विस्तृत है और इसमें स्पष्टीकरणके लिये पूर्वापर संबंध रखनेवाले अधिक वाक्य जोड़ दिये हैं, जिससे पाठकी पता लग जायगा, कि यह सूक्त कुटुंबके विजयका उपदेश किस ढंगसे दे रहा है । जातिके या राष्ट्रके विजयकी सुनिवाह इस प्रकार कुटुंबकी आस्थापर तथा सुत्रका निर्माणपर ही अवलंबित है । जो लोग राष्ट्रीक उन्नति चाहते हैं, वे अपनी उन्नतिकी सुनिवाह इस प्रकार कुटुंबमें रखें । आदर्श कुटुंब-व्यवस्था ही सब विजयका मुख्य साधन है ।

(७) पूर्वापर-सम्बन्ध

पहिले सूक्तमें विद्या पढ़ानेका उपदेश दिया है । इस द्वितीय सूक्तसे पढ़ाईका प्रारंभ हो रहा है । विद्याका प्रारंभ बिल्कुल साधारण बातसे ही किया गया है । पास की वापसिका विषय हर एक स्थानके घनपुत्र जानते हैं । “ मेघसे पानी गिरता है और पृथ्वीसे घास उगता है ईशानसे घासका पिता मेघ और माता भूमि है । ” इतना ही विषय इस सूक्तके प्रारंभमें बताया है । इतनी साधारण घटनाका उपदेश करते हुए “ पिता-माता-पुत्र ” रूपी कुटुंबकी उन्नतिकी शिक्षा किस ढंगसे बेदने बतायी है यह पाठक यहां देख चुके हैं । पावके अंदर सुख या शर एक जातिकी घास है । यह सर-कंडा स्वयं घासका बंध करनेमें समर्थ नहीं होता । क्योंकि कोमल रहता है । परंतु जब उसके साथ कठिन कोड़ेका संयोग किया जाता है और पीछे पर लगाने आते हैं, तब बड़ा कोमल धरकंडा घनपुत्रपर चढ़कर खोरीकी गति प्राप्त करके घासका नाश करनेमें समर्थ होता है । इसी प्रकार कोमल बालक गुरु गुरुकी कठिन तपस्या करता हुआ ब्रह्मचर्य पालनरूपी कठिन

व्रजसे युक्त होकर उन्नतिके नियमोंके पालनसे अपनी गतिको एक मार्गमें रखता हुआ अपने कुटुंबके, जातिके तथा राष्ट्रके अनुओंको मग्न देनेमें समर्थ होता है ।

पहिले सूक्तके तृतीय मंत्रमें घनपुत्रकी उपमा देकर बताया है कि “ गुह शिष्यरूपी घनपुत्र दो कोठियों विद्यारूपी कोठिसे तनी हैं । ” प्रथम सूक्तमें यह अलंकार भिन्न उपदेश दे रहा है और इस सूक्तका घनपुत्रका दृष्टांत भिन्न उपदेश दे रहा है । दृष्टांतमें एकदेशी बातकी ही देखना होता है, इसलिये एक ही दृष्टांतसे भिन्न उपदेश देना कोई दोष नहीं है । प्रथम सूक्तके दृष्टांतमें भी खोरीका स्थल विद्या माता अर्थात् सरस्वती देवीको दिया है उसमें मातृत्व का सादृश्य है ।

जंगलमें वृक्षके साथ बंधी हुई गाय भी अपने बछड़ेका स्मरण करती रहती है, गायका बछड़ेके ऊपर का प्रेम सबसे बढ़िया प्रेम है । इस प्रकारका प्रेम अपने बालकके विषयमें माताके हृदयमें होना चाहिये । अपना बालक अति तेजस्वी हो, अति यशस्वी हो, यही आकांक्षा माता मनमें धारण करे और इस आकांक्षके साथ बढ़े माता अपने बालकको दूध पिलावेगी, तो वह गुण पुत्रमें नि संदेह उतरेंगे । इस विषयमें तृतीय मंत्र मनन करनेके योग्य है ।

(८) कुटुंबका आदर्श ।

चतुर्थ मंत्रमें आदर्श कुटुंबका नमूना घनपुत्र रखा है । युलोक पिता, भूमि माता और इनके बीच का तेजस्वी गोलक इनका पुत्र है । अपने घरमें भी यही आदर्श होवे । आकाश और पृथ्वीमें जैसा सूर्य होता है उसी प्रकार पिता और माताके मध्यमें बालक वामकता रहे । कितना उच्च आदर्श है ! हर एक गृहस्थी इसका स्मरण रखे ।

(९) औषधिप्रयोग ।

सुख घाव अपने रस आदिसे अनेक रोगों और अनेक शस्त्रोंको दूर करता है, क्योंकि सुख पोषक, घृष्टता तथा निर्मलता कामेवाला है । इसलिये स्पष्ट है कि यदि पोषकता और पवित्रता का गुण अपने अंदर बढ़ाया जाय तो रोगादि दूर रह सकते हैं । हर एकके लिये यह सूचना अपनाने योग्य है ।

सुख या शर औषधिप्रयोग करते घावके रोग तथा मृदापात आदि रोग दूर होते हैं । इस विषयका सूचक उपदेश इस सूक्तके अन्त्यमें है । वैद्य लोग इसका विचार करें ।

(१०) राष्ट्रका विजय ।

व्यक्ति, कुटुंब, जाति, देश तथा राष्ट्रके विजयपूर्ण अभ्युदय-के नियमोंमें समानता है। पाठक इस बातको अच्छी प्रकार जानते हैं। व्यक्ति कार्यक्षेत्र छोड़ और राष्ट्रका विस्तृत है, छोटेपन और विस्तृतपन की बातको छोड़नेसे दोनों स्थानोंमें नियमोंकी एकस्वताका अनुभव आ सकता है।

इंद्रवंश ही विस्तृत रूप राष्ट्र है, ऐसा मान लें और पूर्वस्थानमें एक घर या एक परिवारेके विषयमें जो उपदेश बताया है, वही विस्तृत रूपसे राष्ट्रमें देखेंगे तो पाठकोंको राष्ट्रीय उन्नति का नियम पुरातन रीतिसे ही ज्ञात हो जायगा।

परमें पिता शासक है, राष्ट्रमें राजा शासक है; घरमें माता प्रबंधकर्त्री है, राष्ट्रमें प्रजाद्वारा चुनी हुई राष्ट्रमा प्रबंधकर्त्री है। परमें पुत्र वीर बनाया जाता है और राष्ट्रमें बालवयुओंमें वीरता बढाई जाती है। इत्यादि साम्य देखकर पाठक जान सकते हैं कि यह सूक्त राष्ट्रीय विजयका उपदेश किस ढंगसे देता है। पुरातन स्थानमें वर्णन किये हुए पिता, माता और

पुत्रके गुणधर्मकर्म यहां राष्ट्रीय क्षेत्रमें अतिविस्तारसे देखनेसे इस क्षेत्रकी बात पाठकोंको अतिस्पष्ट हो जायगी। इस भावको ध्यानमें धारण करनेसे इस सूक्तका राष्ट्रीय भाव निम्न-लिखित प्रकार होगा—

“ प्रजाका उत्तम धारणपोषण और पूर्णता करनेवाला राजा ही धूरका सच्चा पिता और उसकी माता बहुत कर्मकी प्रेरणा करनेवाली मातृभूमि ही है ॥ १ ॥ हे मातृभूमि ! हम सबके शरीर अति सुदृढ हों, जिससे हम सब उत्तम बलवान बनकर अपने शत्रुओंको भगा देंगे ॥ २ ॥ जिस प्रकार मौ अपने बछड़ेका हित सदा चाहती है, उसी प्रकार हे ईश्वर ! मातृभूमिके प्रेमसे बड़े हुए वीर भोगें बढें ॥ ३ ॥ जिस प्रकार माकाश और भूमिके बीचमें तेजोगोलक होते हैं उसी प्रकार राजा और प्रजाके मध्यमें वीर चमकते रहें। तथा वे पवित्रता करते हुए रोगादि-भयसे दूर हों ॥ ४ ॥

साधारणतः यह आशय अतिव्यंक्षेपसे है। पाठक इस प्रका-विचार करें और वेदके आधारके समझनेका यत्न करें।

आरोग्य-सूक्त ।

(३)

पूर्ण सूक्तका अभ्यास करनेसे यह ज्ञान हुआ कि परमेश्वर पिता है, पृथ्वी माता है और इनके पुत्र दक्षवदनस्पति आदि सब हैं। यही शंका उत्पन्न होती है कि, क्या परमेश्वरके समान सूर्य, चंद्र, वायु आदि भी दक्षवदनस्पतियोंके लिये पितृधानीय हैं या नहीं, क्या इनके न होते हुए, वेबल अकेला एक ही परमेश्वर तृणादि की उत्पत्ति करनेमें समर्थ हो सकता है ? इसके उत्तरमें यह तृतीय सूक्त है—

[ऋषि—अथर्वा । देवता—(मंत्रोंमें उक्त अनेक) देवताएँ]

विद्या श्रारस्य पितरं पर्जन्यं श्रतवृष्णम् ।

तेना ते तन्वेत्ते शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं द्रिष्टं अस्तु बालित्वि ॥ १ ॥

विद्या श्रारस्य पितरं मित्रं श्रतवृष्णम् ।

तेना ते तन्वेत्ते शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं द्रिष्टं अस्तु बालित्वि ॥ २ ॥

विद्या श्रारस्य पितरं वरुणं श्रतवृष्णम् ।

तेना ते तन्वेत्ते शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं द्रिष्टं अस्तु बालित्वि ॥ ३ ॥

विद्या शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृण्यम् ।

तेनां ते तन्वे इ शं करं पृथिव्यां तं निषेचनं ग्रहिष्टं अस्तु बालिति ॥ ४ ॥

विद्या शरस्य पितरं चर्यं शतवृण्यम् ।

तेनां ते तन्वे इ शं करं पृथिव्यां तं निषेचनं ग्रहिष्टं अस्तु बालिति ॥ ५ ॥

अर्थ— (विद्या) हमें पता है कि शरके पिता (शत-वृण्य) ऐक्यों बलोंसे युक्त पर्जन्य, मित्र, वहग, चन्द्र, सूर्य (ये पाच) हैं । (तेन) इन पाँचों की वीर्यसे (ते तन्व) तेरे शरीरके लिये मैं (श कर) आरोग्य कर । (पृथिव्या) पृथिवीसे अर्द्धर (ते निषेचनम्) तेरा भिन्न हाने और सब दोष (ते) तेरे शरीरसे (बाल इति) शीघ्र ही (यदि अस्तु) बाहर हो जायें ॥ १—५ ॥

भावार्थ— तुणादि मनुष्यपर्यंत खण्डिका माता भूमि है और पिता पर्जन्य, मित्र वहग चन्द्र, सूर्य ये पाच हैं । इनमें अन्त बल है । उनके बलोंका योग्य उपयोग करनेसे मनुष्यके शरीरमें आरोग्य स्थिर रह सकता है, मनुष्यका जीवन दीर्घ हो सकता है और उसके शरीरसे सब दोष बाहर हो जाते हैं ।

आरोग्यका साधन ।

पाँच मैत्रोंका मिलकर वह एकहा मण्डन है और इसमें मनुष्यादि प्राणियों तथा वृक्षवनस्पतियोंके आरोग्यके सुदृढ साधन का दिये हैं । 'शर' शब्द पास वाचक हाता हुआ भी सामान्य अर्थसे यहाँ उपलक्षण है और तृणसे लेकर मनुष्यतक खण्डिका आश्रय सममें है । विशेष अर्थमें "शर" सङ्गठन वनस्पतिका गुणधर्म बताया जाता है यह बात भी स्पष्ट ही है ।

इन मन्त्रोंमें पाच पिता कहें हैं । "पिता" शब्द पाता अर्थात् रसा, संरक्षण करनेवाला इस अर्थमें यहाँ प्रयुक्त है । तुणादिसे लेकर मानव-सृष्टिपर्यंत सब की सुरक्षा करनेका कार्य इनका ही है । ये पाँचों सब खण्डिका रक्षा कर ही रहे हैं । देखिये १ पर्जन्य वृष्टिद्वारा जलसिंचन कर सबका रक्षण करता है । २ मित्र प्राणवायु है और इस वायुसे ही सब जीवित रहते हैं । ३ वहग जलकी देवता है और वह जल सबका जीवन ही कहलाता है ।

४ चन्द्र औषधियोंका अधिपति है और औषधियों साधन

जाती है, पाठक विचार करें और लाभ उठावें—

पर्जन्यसे आरोग्य ।

पर्जन्यका शुद्ध जल जो खाती आदि मध्य मण्डलों प्राप्त किया जा सकता है वह यहाँ आरोग्यप्रद है । दिनके पूरे लघन के समय यदि इसका पान किया जाय तो शरीरके सम्पूर्ण दोष दूर हो जाते हैं और पूर्ण निरोगता प्राप्त हो सकती है । वृष्टि जलके स्नानसे शरीरके गुल्म गुन्नी आदि रोग निवारण होता है । अतस्त्रिषमं शुद्ध प्राण विराजमान है वह वृष्टिके पत्रावधुओंसे साथ भूमिपर जाता है । इसलिये वृष्टिजलका स्नान आरोग्य वर्षक है ।

मित्र (प्राण) वायुसे आरोग्य ।

प्राणवायुसे योगमापनमें आरोग्यरक्षणका जो उपाय वर्णन किया है वह यहाँ अनुवर्धय है । दोनों नाभिकाग्र-प्रत्यक्ष नेत्रिये, भ्रूजिह्वा अथवा जलही मानने दृग्गुर्धर मन्त्रित रहनेसे प्राणवायु अर्द्ध प्राप्त और तमम वायुताप करता है । शुद्ध वायुमें हम शरीर उन्नत कर रहते हैं मा बाला वायुपालनका आरोग्यवर्धक है । जो मन्त्र १३३

प्राप्त होता है। अन्य जल अर्थात् तालाब, बूए, नदी आदिसे लेके स्नानसे उनमें उसी प्रकार तैलसे भी कई दोष दूर हो जाते हैं। अन्वाकृताका यह विषय है वह पाठक यहाँ अनुसंधान करके देख। यह बड़ा ही विस्तृत विषय है क्योंकि प्रायः सभी बीमारियाँ जन्त्रविक्रियासे दूर हो सकती हैं।

चन्द्र (सोम) देवसे आरोग्य।

चन्द्र औषधियोंका राजा है, इसका दूसरा नाम सोम है। सोमादि औषधियोंसे आरोग्य प्राप्त करनेका साधन चरकदि व्याख्यानसे अपने वैद्य ग्रंथोंमें लिखा ही है। इसी साधनका दूसरा नाम “वैद्यक” है।

सूर्यदेवसे आरोग्य।

सूर्य पवित्रता करनेवाला है। सूर्यकिरणसे जीवनका तत्त्व सर्वत्र फैला है। सूर्यकिरणोंका स्नान नये शरीरसे करनेसे अर्थात् धूपमें अपना शरीर तर्पणसे आरोग्य प्राप्त होता है। सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा करनेका भी एक उपाय ही है।

पृथ्वीपाद पिता।

ये पाँच देव अनेक प्रकारसे मनुष्य, पशुपक्षी, उल, वन-रपति आदिहोंका आरोग्य साधन करते हैं। दृक्वनरपति और आरम्भक पशु उक्त पृथ्वीपाद भित्तों अर्थात् पाचों देवोंके साथ पाँचों गिर्वाणोंके पाच-पाचों रक्षकोंके साथ मिल रहते हैं, इस उद्देशे सप्त आरोग्यपत्र होते हैं। नागरिक पशुपक्षी मनुष्यके उन्निम वनवागीजन्तुमें संश्लिष्ट होते हैं कारण रोगोंसे अधिक ग्रस्त होते हैं। जगत् लोग प्रायः सदैव सदैव रोगोंके कारण अधिक नाशग होत हैं। परन्तु नागरिक लोग कि जो सदा संयम मद्राज्य रहते हैं सदा रोग वलासे बचत होते हैं और जल क्षुद्र तथा सूर्य प्रकाश आदिहोंसे अपने आपसे दूर रहते हैं, अर्थात् जो अपने पचरिगात्रमें ही विमुख रहते हैं वेदा अधिक-से अधिक रोगी होते हैं और प्रति दिन इन सगणों पांडित नागरिक रोगोंमें ही गिरि रोग बढ रहे हैं और अस्वास्थ्यसे भे ही सदा दुःखी होते हैं।

दगलिये वेद कहता है कि पत्न्य, मित्र (प्राय) वायु, जम्भेय वरुण, चंद्र, सूर्यदेव इन पाँच देवोंको अपना पिता अपना अपना मरसक जानो और —

विचार करें और इस निरर्गनिर्वाणोंका पाठन करके अपना आरोग्य प्राप्त करें।

पृथ्वीमें जीवन।

पृथ्वीमें प्राणिमात्रका सामान्यतः और मनुष्यका उच्च जीवन विज्ञेयन तक पाचों शक्तियोंपर ही निर्भर है। मंत्रका “नियेचन” शब्द “जीवनरूप जल” का सूचक है। इसलिये—
ते प्रथिव्यां नियेचनम्।

इस मंत्रसागवा आशय “तेरा पृथ्वीमें जीवन” पूर्वोक्त पाचों देवताओंके साथ संबधित है यह स्पष्ट है। जो शरीर का आरोग्य, शरीरका कल्याण करनेवाले हैं वेही जीवन अपना दीर्घ जीवन देनेवाले निश्चयसे हैं। इनके द्वारा ही—
ते बालू इति बहि मस्तु।

“तेरे शरीरके दोष रोग बाहर हो जाय।” पूर्वोक्त पाचों देवोंके योग्य संबंधसे शरीरके सब दोष शरीरसे बाहर हो जाते हैं। देखिये—

- (१) वृष्टिजल पान पूर्वक लंघन करनेसे मूत्रद्वारा शरीर रोग बाहर हो जाते हैं।
- (२) शुद्ध प्राणके अंदर जानेसे रक्तशुद्धि होती है और उच्छ्वसद्वारा दोष दूर होते हैं।
- (३) जलविक्रियाद्वारा हरएक अवयवके दोष दूर किये जा सकते हैं।
- (४) सोम आदिक औषधियोंका औषधि नाम इसलिये है, कि वे शरीरके (दोष-धी) दोषोंको धोती हैं।
- (५) सूर्यकिरण पसीना जाने तथा अन्याय रीतिमेंसे शरीरके रोग रोग दूर कर देते हैं।

इस रीतिमें पाठक अनुभव करें कि ये पाँच देव किस प्रकार शरीरका (संहर) कल्याण करते हैं। आरोग्य देते हैं, (नियेचन) जीवन बढ़ाते हैं, और (बहि) दोषोंको बाहर निकाल देते हैं।

“शं” शब्द “शक्ति” का सूचक है। शरीरमें “शक्ति, समता, सुख” आदि स्थापन करना आरोग्यका भाव होता रहा है। ये देव “श” करनेवाले हैं, इसका तात्पर्य यही है कि, ये आरोग्य बढ़ानेवाले हैं। आरोग्य बढ़ानेके कारण जीवन बढ़ानेवाले अर्थात् दीर्घ जीवन करनेवाले हैं और सदा सर्वदा दीर्घांश रोग बाहर करनेवाले हैं। पाठक इस मंत्रके मनसे अपने आरोग्यके मुख्य सिद्धान्तका ज्ञान स्पष्टतया प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार आरोग्यके मुख्य साधनका सामान्यतया उद्देश्य करके मूलोप निव रक्षण विशेष उपाय बताते हैं—

मूत्रदोष-निवारण ।

यदान्त्रेषु गवीन्योर्षद्वस्तावधि संश्रुतम् । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्वालिति सर्वकम् ॥६॥

प्र तै भिनधि मेहंते वर्रै वेदन्त्या इव । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्वालिति सर्वकम् ॥७॥

विपितं ते वास्तिविलं समुद्रस्योर्दधेरिव । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्वालिति सर्वकम् ॥८॥

यथेपुका परापतदवमुष्टाऽधि धन्वनः । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्वालिति सर्वकम् ॥९॥

अर्थ— (यत्) जो (आन्त्रेषु) आंतोंमें (गवीन्योः) गृध्र नाडियों तथा जो (वस्त्रौ) मूत्राशयमें मूत्र (संश्रुतं) इकट्ठा हुआ है। यह तेरा मूत्र (सर्वकं) सबका सब एकदम बाहर (मुच्यताम्) निकल जाय ॥ ६ ॥ (वेदन्त्याः) झीलके पानीके (वर्रै) बंबको (इव) जिस प्रकार खोल देते हैं तद्वत् तेरे (वेदन्) मूत्रद्वारको (प्र भिनधि) मैं खोल देता हूँ ॥ ७ ॥ समुद्रके अथवा (उच्छेः) बड़े तालाबके जलके लिये मार्ग खुला करनेके समान तैप (वास्ति-विलं) मूत्राशयका विलं भी (विपितं) खोल दिया है... ॥ ८ ॥ जिस प्रकार धनुष्यसे छूटा हुआ (इपुका) बाण (परा अपतत्) दूर जाता है, उस प्रकार तैप सब मूत्र बाहर निकल जाये ॥ ९ ॥

भावार्थ—तालाब आदिसे जिस प्रकार नहर निकाल देते हैं जिससे तालाबका पानी सुखपूर्वक बाहर जाता है उसी प्रकार मूत्राशयसे मूत्र मूत्रनाडियों द्वारा मूत्रेशियसे बाहर निकल जाये ।

मूत्र छुली रीतिसे बाहर जानेसे शरीरके बहुत दोष दूर हो जाते हैं । शरीरके सब विष मानो इस मूत्रमें इकट्ठे होते हैं और वे मूत्र बाहर जानसे विष भी उसके साथ बाहर जाते हैं और आरोग्य प्राप्त होता है । इसलिये किसी रोगी का मूत्र अंदर दक जानेसे मूत्रके विष शरीरमें फैलते हैं और रोगी शीघ्र ही मर जाता है । इस कारण आरोग्यके लिये मूत्रका उत्सर्ग नियमपूर्वक होना अत्यंत आवश्यक है । यदि बड़ मूत्र मूत्राशयमें दक जाय तो मूत्र नलिकाकी खोल कर मूत्रका मार्ग खुला करना आवश्यक है । इस कार्यके लिये चार या कुछ औषधिका प्रयोग करना सहायक है । वैद्य लोग इसका उपयोग करें । इसपर दूसरा उपाय मूत्रद्वार खोलनेका है, इसके लिये लोह शलाका, कठितयंत्र (Catheter कैथेटर) का प्रयोग करनेकी सुचना इन धर्मों की उपमाओंसे मिलती है । यह मूत्राशय यंत्र सोनेका, चांदीका या लोहेका बनाया जाता है, यह बाहरीक नलिका आरंभमें गोल ही होती है, आग्रज्जल यह रबर आदि अल्पान्य पदार्थोंका भी बना बनाया मिलता है । इस समय इसको हर एक डाक्टरके पास पाठक देखा सकते हैं । यह मूत्र शरीरमें मूत्राशयमें योग्य रीतिसे जाता जाता है । यह बड़ा पंजुनेसे अंदर दखा हुआ मूत्र इगके अंदर भी नतीसे बाहर हो जाता है ।

करते हैं मूत्रद्वारमें कोमा दूध अथवा जल आदि अंदर मूत्राशयमें खींचने और उसके द्वारा मूत्राशयको शुद्ध करनेका सामर्थ्य अपनेमें बढाते हैं । इसका अभ्यास करनेसे न केवल मूत्राशयपर प्रभुत्व प्राप्त होता है, परंतु मूर्खों की नाडियोंमें समेत संपूर्ण शरीराशयपर भी प्रभुत्व प्राप्त होता है । कर्पूरला होनेकी निम्न इसीके योग्य अभ्यासमें प्राप्त होगी है । योगी लोग इस अभ्यासकी अतिशुल्लभ करते हैं और योग्य परीक्षा होनेके पश्चात् ही यह अभ्यास सिध्द करने लिये शिराया जाना है । पूर्णब्रह्मचर्य रहना इसी अभ्यासमें माध्य होता है । यद्वरन धर्म प्राप्त करते हुए भी पूर्ण ब्रह्मचर्य प्राप्त होनेकी संभावना इस अभ्याससे ही सकती है ।

योगी लोग इसकी सहायकसे बमोली आदि चिकित्सा

पूर्वापपर सम्बन्ध

द्वितीय सूक्तमें आरोग्य साधनका विषय प्रारंभ किया था । उसी आरोग्यप्राप्तिना विस्तृत नियम इस तृताय सूक्तके प्रथम पात्र मंत्रोंके गणमें कहा है । उसके आरोग्यका मानो यह मूल-मंत्र ही है । हरएक अवस्थामें सुखयुक्ता आरोग्यसाधन करनेवा-
उपाय इस गणमें वर्णन किया है । इस तृतीय सूक्तके अंतिम-
चार मंत्रोंमें मृताशयके दोषको दूर करनेका साधन बताया है ।

इस सूक्तका “शान वृष्य” शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । “वृष्य” शब्द घल, बौर्य, उत्साह, प्रजननसामर्थ्य आदिका-
पात्रक है । ये शेरकी बल देनेवाले पशुओंमें पाये जाते हैं वह-
यहां इस सूक्तमें स्पष्ट हुआ है । वार्यवर्षक अन्य उपायोंका-
अवलम्बन न करके पाठन यदि इन पात्रोंकी ही योग्य रीतिसे-
वर्तते रहेंगे तो उनकी अनुपम लाभ हो सकता है ।

त्रितीय सूक्तमें, “भूरि-धायस” शब्द है जिसका अर्थ
‘अनेक प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला’ पूर्व स्थानमें दिया-
है । यह भी पूर्वजन्मके साहचर्यके कारण इस सूक्तमें अनुश्रुति-
से आया है और पात्रोंके विशेषण बनता है । पाठक इस-
शब्दको के हर मंत्रोंमें अर्थ देखे और बोध प्राप्त करें ।

“भूरि-धायन” शब्दका “शान वृष्य” शब्दसंज्ञित संबंध-
है, मानो ये दोनों शब्द एक दूसरेके सहायक हैं । विशेष-
प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला ही शेरों का विशेषण हो-
सकता है । क्योंकि पृथिके साथ ही चलना संबंध है । इस प्रकार-
पूर्व सूक्तसे हम सूक्तका संबंध देखिये ।

शरीरशास्त्रका ज्ञान ।

हम सूक्तके मननसे पठनेसे ज्ञान ही प्राप्त होगा कि शरीर-

शास्त्रका ज्ञान अथर्ववेदिका यथावत् जाननेके लिये अथर्वत-
आवश्यक है । मृताशयमें शलाकाका प्रयोग बिना वहांके अवय-
वोंके जाननेसे नहीं हो सकता । शरीरशास्त्रको न जाननेवाला-
मनुष्य योगसाधन भी नहीं कर सकता, तथा अथर्ववेदका ज्ञान-
भी यथा योग्य रीतिसे प्राप्त नहीं कर सकता ।

यह “अभि-रस” का विषय है, अर्थात् अंगोंके रसोंकाही-
यह अथर्वशास्त्र है । अर्थात् जिसने अंगोंका ज्ञान नहीं प्राप्त-
किया है, अंगोंका अंदरके जीवन रसोंका जिसको कुछ भी-
ज्ञान नहीं है वह अथर्वविद्यासे बहुत लाभ प्राप्त नहीं कर-
सकता ।

डाक्टर लोग जिस प्रकार सुईकी सहायता करके शरीर-
गोला यथावत् ज्ञान प्राप्त करते हैं उसी प्रकार योगियों और-
अथर्वगिरिषद्विद्याके पढ़नेवालोंको करना उचित है ।

हमने यहाँ सोचा था कि इस सूक्तमें वर्णित शलाकाके-
प्रयोगके लिये आवश्यक अवयवोंका परिचय चित्रोंद्वारा किया-
जावे, परंतु इससे कई शोध अधिक भ्रममें भी पड़ सकते हैं-
और जो चित्रोंकी ठीक प्रकार समझ नहीं सकते वे उल्टाही-
प्रयोग करके दोषके भावी हो सकते हैं । इस भयभीत सामने-
देखकर इस बातको चित्रोंसे स्पष्ट करनेका विचार इस समय-
के लिये दूर कर दिया है । और हम यहाँ पाठकोंसे निवेदन-
करना चाहते हैं कि वे इस प्रयोगका ज्ञान छुपित डाक्टरोंसे-
ही प्राप्त करें तथा ऊपर दिये हुए योग-प्रक्रियाका ज्ञान किसी-
उत्तम योगीके पास जाकर लायें, क्योंकि अंगरस विविधतामें-
इन बातोंकी आवश्यकता है । इनके बिना केवल मंत्रार्थ पढ़नेसे-
अथवा शाब्दिक ज्ञान समझने मात्रसे भी उपयोग नहीं हो-
सकता ।

जल-सूक्त ।

पूर्व सूक्तमें आरोग्यसाधन अथवा शरीरके वर्णन किया है इसलिये अब उसी जलका विशेष वर्णन हमसे आगेके तीन-
सूक्तोंमें करेंगे :-

[४]

(ऋषिः- सिन्धुद्रोणः । देवता[अपानपात्र, सोमः-] आपः ।)

अमृष्यां मृत्युर्धमिन्नामर्या अपरीयताम् । पृच्छन्तीमर्षुना पर्याः ॥ १ ॥

अमृष्या उप ययं यामिन्नां ययं मृह । ता नो हिन्वन्त्यपुमम् ॥ २ ॥

अपो देवीरूपं ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुस्यः कर्त्तुं हविः ॥ ३ ॥

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु मेपजम् । अपामृतं प्रशस्तिमिरक्षा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥ ४ ॥

अर्थ—(अध्वरीयतां) यक्षकर्ताओंके (जामयः) बहिनोंके समान और (अभ्ययः) माताओंके समान जलरी नदिय,
(अध्वभिः यन्ति) अपने मागोंसे आती हैं जो (मधुना) मधु-शब्दके साथ (पयः) दूध या जल (पृथ्व्यः) मिलाती हैं ॥ १ ॥
(याः) जो (अमृः) ये नदिया (उपसूर्ये) सूर्यके सम्मुख होती हैं अथवा (यामिः) जिनके साथ सूर्य होता है । वे हम सबका
(अध्वरं) यज्ञ (हिन्यन्ति) सांग करती हैं ॥ २ ॥ (यत्र) जहाँ हमारी (गावः) गौवें पानी (पिबन्ति) पीती हैं उन
(देवीः आपः) दिव्य जलोंकी (सिन्धुस्यः) नदियोंके लिये हवि करनेके कारण (उप ह्वये) मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ ३ ॥
(अप्सु अन्तः) जलमें अमृत है, (अप्सु मेपजं) जलमें दवाई है (उप) और (अपं प्रक्षान्तिभिः) जलके प्रक्षोभनीय गुण
पमोंसे (भक्षः वाजिनः) घोड़े बलवान् (भवथ) होने और गौवें बलयुक्त होती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जल उनके लिये माता और बहिनके समान हितकारक होता है जो उनका उत्तम उपयोग करना जानते हैं । जल की
नदियाँ वह रक्षी हैं, माँगे वह दूधमें शहद मिला रही हैं । जो जल सूर्यकिरणसे शुद्ध बनता है अथवा जिसकी पवित्रता सूर्य करता
है वह जल हमारा आरोग्य सिद्ध करे । जिन नदियोंमें हमारी गौवें जल पीती हैं और जिनके लिये हवि बनाया जाता है उनके
जलका गुणगान करना चाहिये । जलमें अमृत है, जलमें औषध है, उनके शुभ गुण से घोड़े बलवान् बनते हैं और गौवें भी
बलवती बनती हैं ।

[५]

(ऋषिः- सिन्धुद्वीपः । देवता-[अपानपात्, सोमः] आपः) ।

आपो हि सा मय्योभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । मर्ह रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

यो वः शिवतमो रमुस्तस्य भाजयतेह नः । उश्वीरिषि मातरः ॥ २ ॥

तस्मा अरं रामाम वो यस्म क्षयांश्च जिन्वथ । आपो ज्ञनपथा च नः ॥ ३ ॥

ईशाना वापांणा क्षयन्तीर्धर्षणीनाम् । अपो याचामि मेपजम् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (आपः) जली ! (हि) क्योंकि आप (मयोभुवः) गुणधारक (स्य) ही इसलिये (ताः) ती तुम
(नः ऊर्जे) हमारे बलके लिये तथा (मर्ह रणाय चक्षसे) बड़ी रणायत्ताके दर्शनके लिये हमें (दधान) पुष्ट
करो ॥ १ ॥ (यः) जो (वः) आपके अंदर (शिवतमः रमः) अत्यन्त कल्याणकारी रम है (तस्य) उनका
(न इह भाजयत) हमें यहाँ भागी करो (ह्य) श्रेणी (उश्वीरिषि मातरः) इच्छा करनेवाली माताएं करती हैं ॥ २ ॥ हे
जली ! त्रिषुके (क्षयांश्च) निराशके लिये आप (जिन्वथ) लुप्त करते हो (तस्मै) उसके लिये हम (यः अरं रामाम)
आपकी पूर्णतया प्राप्त करने । और आप (नः) हमें (ज्ञनपथा) यज्ञाओं ॥ ३ ॥ (वापांणां) इच्छा करनेवाली माताओं
(ईशाना) स्वामी इसलिये (धर्षणीनां) प्राप्तिमात्रके (क्षयन्ती) निराशके हेतु ऐसे (अपः) जलोंसे (मेपजं) दवाई
आपकी मागना करता हूँ ॥

भावार्थ—जल गुणधारक है, हमसे बल बढ़ता है, रमणीयता प्राप्त होती है और पुष्टि भी है । जिन प्रकार पुत्रोंके
माताके दूधसे पुष्टि का भाग मिलता है, वही प्रकार जलके अंदरके जलम गुणधर्षक रम हमें प्राप्त हो । त्रिषुके प्राप्तिमात्रकी
स्थिति होती है, वह रम हमें प्राप्त हो और उनसे हमारी कष्ट होती रहे । अपने इस गुण प्राप्त होने के और प्राप्तिमात्रकी
स्थिति होती है, उस जलसे हमें क्षयपथ प्राप्त होगा रहे ॥

[६]

[ऋषिः- तिन्धुदीपः । देवता (अपांनपात्) आपः, २ आपः सोमो अमिश्र]
 शं नो देवीरभिष्टय आपो मवन्तु पीतये । शं योरभि संवन्तु नः ॥ १ ॥

अप्सु मे सोमो अग्रवीदन्तर्विश्रानि भेषजा । अग्निं च विश्वशैभुवम् ॥ २ ॥

आपः पूणीत भेषजं वरुणं तन्वेष्टे मम । ज्योक् च सूर्यं दृष्टे ॥ ३ ॥

शं न आपो धन्वन्त्याः शमु सन्त्वनुप्याः ।

शं नः स्निग्धिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥ ४ ॥

अर्थ—(देवी आप) दिव्य जल (न श) हमें सुख दे और (अभिष्टये) इष्ट प्राप्तिके लिये तथा (पीतये) पीनेके लिये हो और हमपर शांतिशः (अभि स्रज्ज्नु) स्नान चलावे ॥ १ ॥ (मे) मुझे (सोम अग्रवीद्) सोमने कहा कि (अप्सु अन्त) जलमें (विश्रानि भेषजा) खम औषधिया है और अग्नि (विश्व-श-भुव) सब कल्याण करनेवाला है ॥ २ ॥ (आप) जलो । (भेषज पूणीत) औषध दो और (मम तन्वे) मेरे शरीरके (वरुणं) संरक्षण दे जिससे मैं सूर्यको (ज्योक् रवौ) दीर्घकालतक देख ॥ ३ ॥ (म.) हमारे लिये (धन्वन्त्या आपः) मरुदेशका जल (च) पुष्करारक हो, (अन्प्या) जलपूर्ण प्रदेशका जल सुखदायक हो, (स्निग्धिमा) खोदे हुए कूबे आदिक जल सुखदायक हो, (कुम्भे) घड़ेमें भरा जल सुखदायक हो, (वार्षिकी) शुद्धिका जल सुखदायक होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—दिव्य जल हमें पीनेके लिये मिले और वह हमारा सुख वढ़ावे ॥ १ ॥ जलमें सब औषध रहते हैं और अग्नि सुख वढ़ानेवाला है ॥ २ ॥ जलसे हमारी थकिसा होवे और शरीरका बचाव रोगोंसे होकर हमारा दीर्घ आयु बने ॥ ३ ॥ मरुदेशका, जलमय देशका, कूबेका, शुद्धिका तथा घड़ोंमें भरा हुआ जल हमारा सुख वढ़ानेवाला होवे ॥ ४ ॥

ये तीन सूक्त जलका वर्णन कर रहे हैं । तीनों सूक्त इकट्ठे हैं इसलिये तीनोंका विचार यहाँ इकट्ठाही करेंगे ।

जलकी मिश्रता ।

जल निम्न प्रकारका है यह बात पूर्व सूक्तोंमें कही है—

१ देवी (दिव्या) आपः (४१३) —आराधने अर्थात् भेषजे प्राप्त होनेवाला जल, इसी का नाम “वार्षिकी” भी है ।

२ वार्षिकी आपः (११४) —शुद्धिसे प्राप्त होनेवाला जल ।

३ र्विपुः (४१३) —नदी तथा समुद्री प्राप्त होनेवाला जल ।

४ अन्प्या आपः (११४) —जलमय प्रदेशमें प्राप्त होनेवाला जल ।

५ धन्वन्त्या आपः (११४) —मरुदेश, रेतीले देशमें, अपवा मोटी चट्टि होनेवाले देशमें विद्यमान जल ।

६ स्निग्धिमा आपः (११४) —खोदकर बनाये हुए कूप बावलीसे प्राप्त होनेवाला जल ।

शुद्धिसे प्राप्त होनेवाला जल भी रेतीले स्थान, कीचटमी मिट्टीके स्थान आदिमें गिरनेसे भिन्न गुण धरनेसे युक्त होता है । जिस स्थानमें घाली साल भोचट बना रहता है, उसमें पड़े हुए पानीकी अवस्था भिन्न होती है और रेतीमेंसे प्राप्त हुए पानीके गुणधर्म भिन्न है । इसी कारण ये सब जल विभिन्न गुणधर्मसे युक्त होने हैं । जलका उपयोग आरोग्यके लिये करना हो, तो प्रथम सबसे उत्तम शुद्ध और पवित्र जल प्राप्त करना आवश्यक है ।

उपरोक्त जल जो बाहर प्राप्त होगा है वह परम साफ़ पशोंमें रखनेके कारण उपरोक्त गुणधर्ममें बदल होता है । अर्थात् कूबेका ताशा पानी जो गुणधर्म रागता है, वही घटमें साफ़ (शुभे आनृताः ११४) घड़ेमें कई दिन रखनेपर भिन्न गुणधर्मसे युक्त होता पाँवर है । तथा प्रवाही नदीका पानी और कूबेके स्थिर पानीके गुणधर्म भी भिन्न हो गये हैं ।

इसी प्रकार एक ही जल विभिन्न स्थानमें और विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होता है। यह दर्शानेके लिये निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

अमूया उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । (४ । २)

“वह जल जो सूर्यके सम्मुख रहता है, अथवा जिसके साथ सूर्य रहता है।” अर्थात् सूर्यकिरणोंके साथ स्पर्श करनेवाला जल भिन्न गुणधर्मोंवाला बनता है और सदा अभेदमें रहनेके कारण जिसपर सूर्यकिरण नहीं गिरते उसके गुणधर्म भिन्न होते हैं। जिन धूर्वोंपर वृक्षादिकी हमेशा छाया होती है और जिनपर नहीं होती उनके जलोके गुणधर्म भिन्न होते हैं। तथा—

अभ्ययो यत्पथध्वनिः । (४ । १)

“नदियाँ अपने मार्गसे चलती हैं।” इसमें जलमें गतिका वर्णन है। यह गतिमान जल और स्थिर जल विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होता है। स्थिर जलसे कुमिकीटक तथा सड़ावट होना संभव है उस प्रकार गतिवाले जलमें नहीं। इसी प्रकार गतिशील मंदता और तेजीके कारण भी जलके गुणधर्मोंमें भेद होते हैं। तथा—

पृथग्गीर्मीधुना पयः । (४ । १)

“मधु अर्थात् सुख-पराग आदिसे जलमें मिलावट होती है।” इससे भी पानीके गुणधर्म बदलते हैं। नदी तालावके तटपर वृक्षादि होते हैं और उस जलमें वृक्षवनस्पतियोंसे फूल, फूलके पराग, पत्ते आदि गिरते हैं, जलमें सरते या मिलते हैं। यह कारण है कि जिससे जलके गुणधर्म बदलते हैं तथा—

यत्र गावः पियन्ति । (४ । ३)

“जिस जलाशयमें गाँव पानी पीती हैं,” जहाँ गाँव, भैंसे आदि पशु जाते हैं, जलपान करते हैं। उस पानीकी अवस्था भी बदल जाती है।

जल लेनेके समय इन बातोंका विचार करना चाहिये। जो जलकी अवस्थाएं वर्णन की हैं, उनमें सबसे उत्तम अवस्थावाला जल ही पीने आदि कार्यके लिये योग्य है। हरएक अवस्थामें प्राप्त होनेवाला जल लाभदायक नहीं होगा। वेदने ये सब जलकी अवस्थाएं बताकर स्पष्ट कर दिया है कि जलमें भी उत्तम मध्यम अधम अवस्थाका जल हो सकता है और यदि उत्तम आरोग्य प्राप्त करना हो तो जलममें उन्नम पवित्र जलही लेना चाहिये। पाठक इन अवस्थाओंका उत्तम विचार करें।

जलमें औषध ।

जलका नाम ही “अमृत” है अर्थात् जीवन रूप रस हो

ही जल है यही बात मंत्र कहता है—

अप्सु अमृतम् । (४ । ४)

अप्सु मेपनम् । (४ । ४)

“जलमें अमृत है, जलमें औषध है,” जल अमृतमय है और औषधिमय है। मरनेसे बचानेवाला अमृत कहलाता है, और शरीरके दोषोंको धोकर शरीरकी निर्दोषता सिद्ध करनेवाला भेषज कहलाता है। जल इन गुणोंसे युक्त है। इसी लिये जलको कहा है—

शिवसमः रसः । (५ । २)

“जल अत्यंत कल्याण करनेवाला रस है।” केवल “शिवो रसः” कहा नहीं है, परंतु “शिवतमो रसः” कहा है, इससे स्पष्ट है कि इससे अत्यंत कल्याण होना संभव है। यही बात अन्य शब्दोंसे भी वेद स्पष्ट कर रहा है—

आपः मयोमुखः । (५ । १)

“जल हितकारक है।” यहाँका “मयस्” शब्द “सुख, आनंद, समाधान, नृप्ति” आदि अर्थका बोध कराता है। यदि जल पूर्ण आरोग्य साधक न होगा तो उससे आनंद बढ़ना असंभव है। इसलिये जल अमृतमय है यह स्पष्ट भिन्न होता है रक्षो-भिमे कहा है।—

अप्सु विद्यानि भेषजनि । (१ । २)

“जलमें सब दवाइयाँ हैं।” जलमें केवल एकही रोग की औषधि नहीं प्रत्युत सब प्रकारकी औषधियाँ हैं। इसीलिये हरएक बीमारोंकी जलचिकित्साएँ इलाज किया जा सकता है। योग्य वैद्य और पथ्यपालन करनेवाला रोगी होगा, तो आरोग्य विःसंदेह प्राप्त होगा। इसलिये कहा है—

आपः शृणीम भेषजम् । (१ । २)

अतो याचाभि भेषजम् । (५ । ४)

“जल औषध करता है। जलसे औषध माँगता हूँ।” अर्थात् जलसे चिकित्सा होती है। रोगोंकी निग्रहि जलचिकित्सा से हो सकती है। रोगोंके कारण शरीरमें जो विषमता होती है उसे दूर करना और शरीरके रक्त पानुओंमें समता स्थापित करना जलचिकित्सासे संभवनीय है।

समता और विषमता ।

शरीरकी समता आरोग्य है और विषमता रोग है। समता स्थापन करनेकी ध्वन्या वेदके “सं, प्राप्ति” आदि शब्द करते हैं और विषमता दूर करनेका आह “योः” शब्द वेदमें कर रहा है। योनों मिलकर “सं-योः” शब्द बनता है। इसका संदुर्लभ तात्पर्य “समताकी स्थापना और विषमताका दूर करना” है। इसलिये कहा है—

धर्म-प्रचार-सूक्त ।

(ऋषिः— चातनः । देवतः— अग्निः (जातवेदाः), ३ अग्नीन्द्री)

(७)

स्तुधानमम् आ वह यातुधानं किमीदिनम् । त्वं हि देव वन्दितो हुन्ता दस्योर्वभूविथ ॥१॥

आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् । अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२॥

विलपन्तु यातुधानां अस्त्रिणो ये किमीदिनः । अयेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्षतम् ॥३॥

अग्निः पूर्वं आ रभतां मेन्द्रो नुदत बाहुमान् । त्रयीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्यस्य ॥४॥

पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान्वृषधः ।

त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् आ येन्तु प्रमुवाणा उपेदम् ॥५॥

आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे । दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६॥

त्यमग्ने यातुधानानुपवद्धां ह्रा वह । अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृधतु ॥७॥

अर्थ— हे अग्ने ! (स्तुधानं) स्तुति करनेवाले (यातुधानं किमीदिनं) यातक शत्रुओंको भी (वा यह) यहां ले आ । (हि) क्योंकि हे देव ! (वन्दितः त्वं) नमनको प्राप्त हुआ तू (दस्योः) डाकूका (हुन्ता) हतन या प्रति करने वाला (वभूविथ) होता है ॥ १ ॥ हे (परमेष्ठिन्) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले (जातवेदः) ज्ञानको प्राप्त करनेवाले और (तनू-वशिन्) छरीरका संयम करनेवाले अग्ने ! तू (तौलस्य आज्यस्य) तौले हुए पी आदि का (प्राशान) भोजन कर और (यातुधानान्) दुष्टों (वि लापय) विलाप करा ॥ २ ॥ (ये) जो (यातुधानाः) दुष्ट (अस्त्रिणः) भद्र करनेवाले और (किमीदिनः) पापक हे वे (विलपन्तु) विलाप करें । (अयं) और अब, हे अग्ने ! (इदं हविः) यह हवि तू और (इन्द्रं च) इन्द्र (प्रनिह-यंतम्) स्वीकार करे ॥ ३ ॥ (पूर्वं) अग्निः आरभतां पहिला अग्नि आरंभ करे, तथा पश्चात् (बाहुमान् इन्द्रं प्र नुदतु) बाहुबलवाला इन्द्र विशेष प्रेरणा करे, जिसे (सर्वं यातुमान्) सब दुष्ट लोग (एव) आकर (मरीतु) बीजे, कि (अयं अस्मि इति) यह मैं हूं ॥ ४ ॥ हे (जातवेदः) ज्ञानी ! (ते वीर्यं पदयाम) तेरा पराक्रम इन देखें । हे (वृ-षयाः) मनुष्योंके मार्ग दर्शक ! (यातुधानान्) दुष्टोंको (नः) हमारा आदिष्ट (प्र मूढि) विषय रूपों कह दे । (रया) वृत्तये (पुरस्तात्) पहिले (परितप्ताः) तपे हुए (ते सर्वे) वे सब (इदं मुवाणा) यह कहते हुए (उप आयन्तु) हमारे पास आनायें ॥ ५ ॥ हे (जातवेदः) शूनी ! (आरभस्व) आरंभ कर (अस्माकम् आर्थाय) हमारे प्रयोजनके लिये तू (जज्ञिषे) उत्पन्न हुआ है । हे अग्ने ! तू हमारा दूत बनकर यातुधानोंको विलाप करा ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तू [यातुधानान्] दुष्टों (उपवद्धान्) बांधे हुए अर्थात् बांधकर [ह्रा आ वह] यहां लेआ । [अयं] और इन्द्र आने बगने [एव मरीतापि] इनके मरतक [वृधतु] काट डाले ॥ ७ ॥

इसका भावार्थ हम सबने पीछे लिखें क्योंकि इस सूक्तमें कई शब्दोंके अर्थोंका विचार करनेवाला चाहिए । इस सूक्तमें कई शब्द भ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं, और जबतक इनका निश्चित निश्चित करना चाहिये—

अग्नि कौन है ?

इस सूक्तमें अग्निपद से किसका ग्रहण करना चाहिये, इसका निश्चय धरने वाले ये शब्द इस सूक्तमें हैं—“जातवेदः, परमेष्ठिन्, तन्वाशिन्, वृक्ष, वन्दित, दत्तः, देवः, अग्निः ।” इन शब्दोंका अर्थ देखकर अग्नि का स्वरूप सबसे प्रथम हम देखेंगे—

१ जातवेद — [जातं वेति] जो बनी हुई सृष्टिको ठीक ठीक जानता है । [जात-वेदः] जिसने ज्ञान प्राप्त किया है । अर्थात् ज्ञानी दृष्टियोग और अस्मद्विद्या का यथावत् जानने वाला ।

२ परमेष्ठिन्—(परमे पदे स्थाना) परमपद में ठहर-नेवाला अर्थात् समाधिही अंतिम अवस्थाको जो प्राप्त है, आत्मानुभव जिसने प्राप्त किया है, सूर्या-चतुर्थ अवस्थाना अनुभूत करनेवाला ।

३ तन्वाशिन्—(तन्-वाशिन्) अपने शरीर और इन्द्रियोंको रक्षापान करने वाला, इन्द्रिय संशम और मनोनिग्रह करनेवाला, आत्मनाद्विद्या-शक्तिये जिसने अपनी कायासिद्धि की है । यही शत्रुघ्न परमेष्ठिन् होना संभव है ।

४ वृक्ष — “वृक्षम्” शब्द ऋषि द्वारा उपदेश देने का भाव बना रहा है । मनुष्योंको जो योग्य धर्म मार्गका उपदेश देता है ।

पर पहुँचाने वाला यह दूत धर्मका उपदेशक ही है ।

५ देवः—प्रकाशमान, तेजस्वी ।

८ अग्निः— प्रकाश देकर अन्धकारका नाश करनेवाला, ज्ञानकी रोगिणी बढाकर अज्ञानान्धकार का नाश करनेवाला । उत्पत्ता (बर्मा) उत्पन्न करके हलचल करने वाला ।

ये सब शब्द योग्य उपदेशक का ही वर्णन कर रहे हैं । इस प्रकार वेदमें “अग्नि” शब्द ज्ञानी उपदेशक ब्राह्मणका वाचक है । तथा “इन्द्र” शब्द क्षत्रियका वाचक है ।

ब्रह्म क्षत्रिय ।

“ब्रह्म क्षत्रिय” शब्द ब्राह्मण और क्षत्रिय का बोध करता है । वेदमें ये दो शब्द इकट्ठे कई स्थानपर आगये हैं । यही भाव “अग्नि-इन्द्र” ये दो शब्द वेदमें कई स्थानोंपर व्यक्त कर रहे हैं । अग्नि शब्द ब्राह्मणका और इन्द्र शब्द क्षत्रियका वाचक है । अग्नि शब्दका ब्राह्मण अर्थ हमने देखा, अब इन्द्र शब्दका अर्थ देखेंगे—

इन्द्र कौन है ?

स्वयं इन्द्र शब्द क्षत्रिय वाचक है, क्योंकि इसका अर्थ ही शत्रु नाशक है—

१ इन्द्रः—(इन्-द्रः) शत्रुओंको छिन्न भिन्न करनेवाला ।

२ बाहुमान्—बाहुवाला, भुजावाला, अर्थात् बाहुबलके लिये सुप्रसिद्ध । हर एक मनुष्य भुजावाला होता ही है, परन्तु क्षत्रियही ही “बाहुमान्” इसलिये कहा है, कि वरुण कार्य

समान ही है। वास्तव में मासिन कण्ठे को ही थोड़ा स्वच्छ करना चाहिये, इसी तरह अपार्मिक शक्तिके लोगों को ही धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये, यही सच्चा धर्म प्रचार है, यह बतानेके लिये इस सूक्तमें धर्म प्रचार करने योग्य लोगोंका वर्णन निम्न लिखित शब्दोंसे किया है—“यातुघान, किमादिन्, दस्यु, अग्रिन् ।” अब इनका आशय देखिये

१ यातु—“यातु” भटकनेवाले का नाम है। जिसको घरदार कुछभी नहीं है और जो व-य पक्षके समान उधर उधर भटकता रहता है उसका नाम “यातु” है। भटकने का अर्थ बतानेवाला “या” धातु इसमें है।

२ यातुमान्—यातुमान्, यातुवान्, यातुमत्, शब्दका भाव “यातुवाला” है अर्थात् जिसके पास बहुतसे यातु (भटकनेवाले) लोग होते हैं। अर्थात् भटकने वालों के जमाव का सुविधा।

३ यातुमावान्—बहुतसे यातुमानों को अपने काबूमें रखनेवाला।

४ यातुघान्—यातुओंका धारण पोषण करनेवाला, अर्थात् भटकनेवालोंको अपने पास रखकर उनकी पोषण करनेवाला। “यातु घान्” भी इसी भावका वाचक है।

पाठकोंने जान लिया होगा, कि ये शब्द विशेष बातको व्यक्त कर रहे हैं। जिसको घरदार कौण्ड आदि होते हैं, और जो कुछेकमें रहता है, वह उतना उपद्रव देनेवाला नहीं होता। जितना कि जिसका घरदार कुछभी न हो, और जो भटकने वाला होता है। यह सदा भूखा रहता है, किसी प्रकारका मनका समान-धान उसको नहीं होता, इसलिये हरएक प्रकारका उपद्रव देनेके लिये वह तैयार होता है, इसी कारण “यातु” शब्द “बुरी शक्ति वाला” इस अर्थमें प्रयुक्त होता है। दुष्ट, डाकु, चोर, लुटेरे, बटमार आदि इसी शब्दके अर्थ आगे जाकर बने हैं। ये चोर डाकु जबतक अकेले अकेले रहते हैं, तब तक उनकी नाम “यातु” है, ऐसे दोचार डाकुओंको अपने वधमें रखकर बड़ा बलनेवाला “यातुमान्, यातुवान्, यातुमत्” अर्थात् यातुवाला किंवा डातुवाला बड़ा जाता है। पहिले भी लपेटा इससे समानको अधिक बड़ पड़चले हैं। इस प्रकारके छोटे डाकुओंके अनेक संघोंको अपने आधीन रखने वाला “यातुमान्” अर्थात् डाकुओंकी कई जमातोंको अपने आधीन रखनेवाला। यह पूर्वी अरेंद्रा अधिक बड़ प्राचीन और प्रान्तोंको भी पड़ना सकता है। इसके नाम “यातुघान यातुघान्” है। पाठक इससे जान सकते हैं, कि ये वैरिक्त शब्द

जो कि वेदमें कई स्थानोंमें आते हैं, और और दुष्ट लोगोंके वाचक हैं। अब और देखिये—

५ अग्रिन्—अग्रि (अतति) सतत भटकता रहता है। यह शब्द भी पूर्व शब्द का ही भाव बताता है। इसका दूसरा भाव (अति) खानेवाला, सदा अपने भोगके लिये दूसरोंका मत्ता बाटनेवाला। जो जोउत्ते घनके लिये खून करते हैं, इसप्रकारके दुष्ट लोगोंका वाचक यह शब्द है।

६ किमादिन्—(किं इदानीं) अब क्या खाए, इस प्रकार की शक्तिवाले भूखे दिवा पेटके लिये ही दूसरोंका घात घात करनेवाले दुष्ट लोग।

७ दस्यु—(दस्यु उपभवे) घातघात करनेवाले, दुष्टोंका नाम करनेवाले हर प्रकारके दुष्ट लोग।

ये सब संघ समाजके सुवर्ण नाश करते हैं, इनके कारण समाजके लोगोंको कष्ट होते हैं। ये ग्राममें आगये, तो ग्राममें चोरी, डकैती, लूट, लुटमार होती है, यही विषयक अ वाचार होते हैं, राज्योंको अनेक प्रकारके पक्ष होते हैं इसलिये इन लोगोंकी धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये, यह हम सूक्तका आदेश है। जो परदारते हीन हैं, जो जगलों और वनों में रहते हैं, जो चोरा डकैती आदि कुछ कर्म करते हैं। उनकी धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये। अर्थात् जो नगरिक हैं, जो पहिले ही धर्मके प्रेमी हैं उनमें धर्म की जगति कानी पोषण है। पांडु जिनके पास धर्म की आधार नहीं पहुँची और जिनका जीवन-क्रम ही धर्मोपाय मार्गमें सदा चलता रहता है, उनका सुधार करके ही उनकी उत्तम मार्गिक बनाना चाहिये। धर्मोपदेशक यह अपना कार्य क्षेत्र देखें।

धर्मोपदेशक के गुण, वाचन कार्यमें निष्ठा, शत्रिय के गुण, और जिन लोगोंमें धर्म प्रचारकी अप्रत्यक्ष आदरपत्रा है उनमें गुणपूर्ण हमने इस सूक्तके आधारोंमें देते। अब इन वाचकोंके प्रकाश में यह सूक्त देखना है—

दुष्टोंका सुधार।

प्रथम मंत्र—“हे धर्मोपदेशक! तुम्हारा प्रस्ताव करने-वाले दुष्ट डकैतों को सदा से नाश करो कि तुम्हें वधना द्वारा करनेपर दस्युओंका नाशक होता है” ध १ ॥

इस पहिले मंत्रमें दो विधान हैं—

समझा दे, उन कुछ कर्मों से उनको बड़ निवृत्त करे, जब वे ठीक प्रकार जानें कि चोरी आदि उनके व्यवसाय बुरे हैं और मान्योंकी रक्षा करनेवाला सत्य धर्म भिन्न है और वह सत्य धर्म इस धर्मोपदेशसे प्राप्त हो सकता है, तब वे इसके पास धृष्टा भक्तिसे आवेंगे, इसी प्रशंसा करेंगे और इसके सामने मिर झुकायेगे अर्थात् इनकी प्रशाम करेंगे। जब उनमें इतनी धृष्टाभक्ति बढेगी, तब उनका वादपनका नाश या हनन स्वयं ही हो जायगा। इसलिये मंत्र कहता है कि “धर्मोपदेशकं दुष्ट मनुष्योको अपने उपदेशद्वारा अपनी प्रशंसा करनेवाले बनाकर अर्थात् अपने अनुगामी बनाकर, अपने समाजमें ले आवे, और उनमें नमस्कार प्राप्त करके उनका घातक बनें।”

“जिससे नमस्कार प्राप्त करना उनकाही घात करना” प्रथम भिन्न या प्रतीत होता है, परन्तु अव्यापिक दुष्ट मनुष्यों के मुधार करनेवाले ऐवाही बनता है। जब दुष्ट मनुष्य धार्मिक बन जाता है उस समय वह पहिले धर्मोपदेशक के सामने अदना मिर झुकता है और सिर झुकाने ही दुष्ट मनुष्यके रूपसे मर कर धार्मिक नवजीवन प्राप्त करने द्वारा वह आगे बसा ही मनुष्य बनता है। यदि एक वाक्य धर्मोपदेश सुनकर धार्मिक बन गया, तो उसका सामाजिक दृष्टिसे सत्य अर्थ यही है कि एक वाद गुरु तथा और एक मत्वा धार्मिक मनुष्य तथा वेदा श्रद्धा। अब हमारा मन देखिये—

खाना चाहिये। ये उपदेशक सदा भ्रमणमें रहनेके कारण तथा जलवायुके सदा परिवर्तन होनेसे इनकी पाचक शक्तिमें बिगाड़ होना संभव है; अतः जितनी पाचक शक्ति होती है, उससे भी कम ही खाना इनके लिये योग्य है। इस कारण वेद कहता है, कि “उपदेशक तोलकर ही धी आदि पदार्थ खावें।” कमी अधिक न खावें।

मंत्रमें दूसरी बात “दुष्टोंकी हलाने” की है। यदि उपदेशक प्रभावशाली होगा, और यदि उसके उपदेशसे श्रोताओंकी अपने दुराचारका पता लगा तथा उनके अंतःकरणमें धर्म भावना जागृत हो गई तो उनके रो पड़नेमें तथा अपने पूर्व दुराचारमय जीवनके विषयमें पूर्ण पश्चात्ताप होनेमें कोई सन्देहही नहीं है। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका भाव देखनेके पश्चात् अब तिसरा मंत्र देखिये—

दुष्टजीवनका पश्चात्ताप

द्वितीय मंत्र—“दुष्ट लोग रो पड़ें, और वे धर्मोपदेशक। तेरे लिये यह हमारा दान है, क्षयिय भी इसका स्वीकार करे” ॥ ३ ॥

सब धर्मोपदेशक के धर्मोपदेश सुनकर दुष्ट लोगोंको अपने दुःखकारण पश्चात्ताप होने और वे रो पड़ें। तथा जनता ऐसे धर्मोपदेशकों तथा उनके सहायक श्रमिकोंको भी यथा शक्ति

ऐसा हो, कि सब दुष्ट दुराचारी मनुष्य अपना आचरण सुधारने और खुले दिलसे उपदेशकों पास आकर कहें कि “ हम अब आपकी शरणमें आगये हैं । ” यही धर्म प्रचारका साधन है । धर्म प्रचारते दुराचारी झुठ झुठर जाय और अच्छे धार्मिक बनें, वे अपने पूर्व दुराचाराका पश्चात्पन्न करें, तथा जब पूर्व दुराचाराका उनको स्मरण आवे उस समय उनको रोना आवे । क्षत्रियके बल की अपेक्षा न करते हुए केवल ब्राह्मण ही अपनी धार्मिक और आत्मिक शक्तिते यह कार्य करें । पिछेमे क्षत्रिय उनको मन्त्र पढ़ुवावे । क्षत्रियके जोरसे जो धर्म प्रचार होता है, वह सत्य नहीं है, परन्तु ब्राह्मण अपने धार्मिक दृष्टिसे जो हृदय पकड़ा देता है, वही सच्चा धर्मपरिवर्तन है । इस प्रकार चतुर्थ मंत्रका आशय देखनेके पश्चात् अब अगला मंत्र देखिये—

दुष्टोंकी पश्चात्तापसे शुद्धि ।

पंचम मंत्र— “ हे ज्ञानी उपदेशक ! हम तुम्हारा पराक्रम देखेंगे । हे मनुष्योंकी सम्मर्यां बतलानेवाले ! तुम दुष्टोंको हमारे धर्मका उपदेश करो । तुम्हारे प्रयत्नसे पश्चात्ताप की प्राप्ति हुए सब दुष्ट लोग हमारे पास आवें और वैसाही कहें । ” ॥ ५ ॥

पूँछेक प्रकारका सच्चा धर्मोपदेशक त्रिम समय धर्मोपदेश के लिये चलने लगता है, उस समय उसका गौरव कहते हुए लोग कहते हैं कि “ हे उपदेशक ! अब तू उपदेश करनेके लिये जा रहा है, हम देखेंगे कि तुम अपने परिशुद्ध सद्गुणधर्मसे कितने लोगोंके हृदयमें पलटा उत्पन्न करते हो और कितनों को सत्य धर्मकी दीक्षा देते हो । हमेंगे तुम्हारे पराक्रमका हमें पता लग जायगा । तुम ज्ञात्री, हम तुम्हारा गौरव करते हैं । पश्यधर्मका संदेश सब जनता तक पहुंचाओ । तब उपदेशकी शान्तिसे तब हुए और पश्चात्ताप की प्राप्ति हुए लोग हमारे अंदर आवें और कहें “ कि हमने अब धर्मोपदेश पाया है । और अब हम आपकी ओर हैं । ”

“ तम, संतम, परितम ” ये शब्द पश्चात्ताप के सूचक हैं । तप धर्म तपकर शुद्ध होनेका सूचक है । अति तपकर संताप, चोदा, ताया आदि भावोंमें शुद्ध करता है अर्थात् उनके मत्वांचं दूर करता है । इसी प्रकार यदांचा आत्म-जो शक्ती धर्मोपदेशक दे-वह अपनी शान्तिमें सब दुष्टोंको तपयता है और अच्छे प्रकार उनके मत्वांचं दूर करता है । आदिही यही सिद्धि है । भोगके जीवनकी छोड़कर तपके जीवनमें आना ही धार्मिक बनना है । इस अर्थमें इस मंत्रका “ परित-तपा ” शब्द

बड़े भावका सूचक है । अब छठे मंत्रका भावार्थ देखिये—

धर्मका दूत ।

षष्ठ मंत्र— “ हे ज्ञानी पुरुष ! अपना कार्य आरंभ कर । हमारे कार्य के लिये ही तुम्हें आगे किया है । हे उपदेशक ! तू हमारा धार्मिक संदेश पहुंचाने वाला दूत बन कर दुष्टोंको पश्चात्तापसे रखा दे ” ॥ ६ ॥

धर्म प्रचारके लिये बाहर जानेवाले उपदेशकोंको लोग कहते हैं कि— “ अब तू अपना धर्म प्रचारका कार्य आरंभ कर दो । बिना कर देवदेवशासनमें जा और वहां सत्यधर्मका प्रचार कर । यही हमारा कार्य है और इसी कार्यके लिये तुम्हें आगे भेजा जाता है, अबधा आगे रखा जाता है । हमारा धार्मिक संदेश जगत्में फैलाना है, इस संदेशको स्थान स्थानमें पहुंचानेवाला दुष्टही तू है । अब जा और धार्मिक संदेशको चारों दिशाओंमें फैला दो और इस समय तक जो लोग अधार्मिक दृष्टिमें रहते हैं, उनकी अपने सद्गुणधर्मद्वारा शुद्ध करो और उनकी अपने पूर्व दुराचारा पूर्ण पश्चात्ताप होने दो । उनके दिलोंमें ऐसा पलटा दो कि जिससे वे अपने पूर्वचरणका स्मरण करके रोने लगें । ” इस प्रकार अवतार सुधार करनेके लिये धर्मोपदेशकोंको भेजा जाता है ।

डाकुओंको दण्ड ।

इतना धर्मोपदेश होकर भी जो दुष्टरंगे नहीं और अपना दुराचार जारी रखेंगे अबधा पूर्णक प्रभारके श्रेष्ठ धर्मोपदेशकोंके पराकाष्ठाके प्रयत्न करनेपर भी ओ अपना दुष्ट आचरण नहीं छोड़ते और जनतामें बोध फैलाने आदिमें अत्यंत बड़बटे ही रहेंगे, उनकी योग्य दण्ड देना ब्राह्मणका कार्य नहीं, वह पाप क्षत्रियका है यह आशय अपने मंत्रमें कहा है—

सप्तम मंत्र— “ हे धर्मोपदेशक ! तुम्हारे प्रयत्न करनेपर भी तुम डाकुआदि अपने दुराचार छोड़ते नहीं । उनको योग्य दण्ड देना और पश्चात्ताप करनेके लिये तत्परायण फाट दे ” ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ धर्मोपदेशक अपना धर्मोपदेशका प्रयत्न करें और

अन्योंको भी यह उपदेश मिल सकता है, कि हम भी धार्मिक बननेसे बच सकते हैं, नहीं तो हमारी भी वही अवस्था बनेगी।

ब्राह्मण और क्षत्रियोंके प्रयत्नका प्रमाण।

इस सूक्तमें ब्राह्मणके प्रयत्न के लिये छ मन्त्र हैं और एकही मन्त्रमें क्षत्रियका कठोर दण्ड आगे करनेको सूचित किया है। इससे स्पष्ट है कि हमसे कम छ गुणा प्रयत्न ब्राह्मण अपने अनुपदेशने करें, इतने प्रयत्न करनेपरभी यदि वे न सुधरे, हमसे कम छ बार प्रयत्न करनेपर भी न सुधरे छ बार अवसर देने पर भी जो लोग दुष्टता नहीं छोड़ते, उनपर ही क्षत्रियका क्रूर प्रहार होना योग्य है। क्योंकि जिसकी जमसे ही दुष्टता करने का अभ्यास होगा वे एक बारके उपदेशसे पट्ट जायगे अथवा सुधरेगे यह कठिन अथवा अशक्य है। इसलिये भिन्न उपपत्तियों से उनकी अधिक अवसर देने चाहिये। इतना करनेपर भी जो नहीं सुधरते उनको या तो बधन में डालना या गिराफ़ेद करना चाहिये।

ब्राह्मण भी हनन करता है और क्षत्रियोंकी बरता है परन्तु दोनोंके हनन में बड़ा भारी भेद है। पहिले मन्त्र में ब्राह्मण की रीति बताई है और सप्तम मन्त्रमें क्षत्रिय की पद्धति बतायी है। क्षत्रिय की रीति यही है कि लक्षवार लेकर दुष्टका गला काट डालना, अथवा दुष्टोंकी कारागृहमें बन्धनकर रखना। ब्राह्मण की रीति इससे भिन्न है, ब्राह्मण उपदेश करता है, उपदेश द्वारा धीमाधीन दिलोंकी पलटा देता है, उनको अनुगामी बना देता है, उनके मनकी दुष्टता का नाश करता है। दोनोंका उद्देश्य दुष्टोंकी सत्ता कम करने का ही होता है, परन्तु ब्राह्मण दुष्टोंकी सुधारनेका प्रयत्न करता है, हृदय मुक्त बनाता है और सुशोभी सत्ता बनाता है। और क्षत्रिय उनकी कमल करके उनकी सत्ता पटाता है। इसी लिये ब्राह्मण के प्रयत्न श्रेष्ठ और क्षत्रियके दण्ड दक्षिण हैं।

वेदमें कहा “हनन, दहन, परिताप, विलाप” आदि शब्द आते हैं वहां सर्वत्र एकसांहीं अर्थ लेना उचित नहीं। वे शब्द ब्राह्मण के लिये प्रयुक्त हुए हैं वा क्षत्रिय के लिये हुए हैं यह देखना चाहिये। हनन से शत्रुकी संख्या घटती है, ब्राह्मण, क्षत्रिय दोनों अपने अपने शस्त्रसे हनन करते हैं, परन्तु ऊपर बतायाया है, कि ब्राह्मण विचार परिवर्तन द्वारा शत्रुका नाश करता है और क्षत्रिय शिरच्छेदादि द्वारा शत्रुको घटाता है। इसी प्रकार “विलाप” भी दो प्रकार का है। क्षत्रिय शत्रुकी कतल करता है उस समय भी शत्रुके ओग विनाश करत है और रोते पीटते ही हैं। उसी प्रकार ब्राह्मण धर्मोपदेश द्वारा जिस समय श्रोताओंका हृदयमें मज्जिका और धर्मप्रेम उत्पन्न करने द्वारा कृत दुराचाराका पश्चात्ताप उत्पन्न करता है उस समय भी वे कोप रोंते हैं और आसू बहाते हैं। इन दोनों आसू बहाने में बड़ा भारी भेद है। जो शत्रु परिवर्तन ब्राह्मण कर सकता है, वह क्षत्रिय वधापि नहीं कर सकता। यही बात “परिताप, सन्ताप” आदिके विषयमें समझनी चाहिये।

इस सूक्तका अर्थ करनेवाले विद्वानोंने इस ब्रह्मक्षत्रिय प्रणालीके भेदको न समझने के कारण इन शब्दोंके अर्थोंका बड़ा अनर्थ किया है। इत्यत्रिय पाठक इस भेदका पहिले समझें और पश्चात् मन्त्रोंके उपदेश जाननेका प्रयत्न करें। यह बात एकाग्र तीक्ष्ण प्रज्ञासे आगई, तो मन्त्रोंका आशय समझनेमें कोई कठिनाता नहीं होती, परन्तु ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके क्रमशः बोध और तीक्ष्ण मार्गोंका भेद यदि ठीक प्रकार समझने नहीं आया, तो अज्ञान अनर्थ प्रतीत होगा। इत्यत्रिय दुष्टोंका सत्ता ब्राह्मण किस प्रकार घटाता है और क्षत्रिय किस प्रकार घटाता है, इसी प्रकार ये दोनों शत्रुओंको तिन तिनके दण्डते हैं, तपोते हैं और जलाते हैं, यह पाठक अपने विचार से और बड़ा बताने मार्गसे ठीक समझें और ऐसे मूर्खोंका तात्पर्य जानें।

(८)

(ऋषिः—चातनः । देवता—अग्निः, वृहस्पतिः)

इदं वृषिपुत्रपानान् नदी फेनमिवा बहन् । य इदं श्री पुमानर्कसिह म स्तुवतां जनः ॥१॥
अपं स्तुतान आगमदिमं स्म प्रति हस्यत । वृहस्पते वदो लब्धार्थोपोमा वि विचपनम् ॥२॥
यातुपानम्प गोमप त्रि प्रजा नयस्य च । नि स्तुतानम्प पातय परमशुपुताचरम् ॥३॥

यत्रैषामग्रे जनिमानि वेत्थु गुहां सुतामत्रिणीं जातवेदः ।

तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जहोषिं शततर्हमग्रे

॥४॥

अर्थ— (नदी केनं ह्य) नदी केन को जैसी खाती है उस प्रकार (इदं हविः) यह दान (यातुधानान् भागहत्) दुष्टोंको बहो लवे । (यः पुमान्) जो पुरुष अथवा जो स्त्री (इदं अकः) यह पाप करती रही है । (सः जनः) वह मनुष्य तेरी (स्तुवतां) प्रशंसा करे ॥ १ ॥ (स्तुवानः अयं) प्रशंसा करनेवाला यह जाऊ (आगत) आया है, (इमं) इसका (ह्यम प्रति हर्षत) अवश्य स्वागत करो । हे (बृहस्पते) ज्ञानी उपदेशक ! इसको (यतो लक्ष्म्या) वशमें रखकर, हे (भगनी-पोमी) आग्नि और सोम ! (वि त्रिष्वत्) इसका विशेष निरीक्षण करो ॥ २ ॥ हे (सोमय) सोमपान करनेवाले ! (यातुधानान् य प्रजां) दुष्टकी सन्तान के प्रति (जहि) जा, पहुँच और (च नयस्व) उन्हें लेजा अर्थात् सम्मार्गसे चला । तथा (स्तुवातस्य) प्रशंसा करनेवालेका (परं जत अवयं) प्रेष्ठ और रनिष्ठ (आग्नि) आगें (नि पातय) नीचे फेर दो ॥ ३ ॥ हे (अग्ने जातयेदः) तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ! (यत्र गुहा) जहाँ कहाँ गुफामें (पृथा) इन (अत्रिणां सतां) भट करनेवाले सजनों के (जनिमानि) पुत्रों और संतानों को (वेत्थु) तू जानना है (तान् ब्रह्मणा वावृधानः) उनको ज्ञानसे बढाता हुआ (पृथां शततर्हं जहि) इनके सैन्यों को घाँटा मारा कर ॥ ४ ॥

यह सूक्त भी पूर्वसूक्त का ही उपदेश विशेष रीतिसे बताता है। दुष्ट लोगोंकी किस रीतिसे सुधारना योग्य है इसका विचार इस सूक्तमें देखने योग्य है। इस सूक्तमें ब्राह्मण उपदेशक का एक और विशेषण आगया है वह “बृहस्पतिः” है। इसका अर्थ ज्ञानपति प्रसिद्ध है, बृहस्पति देवोंका गुरु ब्राह्मण ही है; इसलिये इस विषयमें शंका ही नहीं है। “सोम” शब्द इसीका वाचक इस सूक्त में है। “सोमोऽस्माकं प्राज्ञगाना राजा।” ब्राह्मणोंका मुखिया सोम है, उसी प्रकार बृहस्पति भी प्रेष्ठ ज्ञानी ब्राह्मण ही है। पाठक इन शब्दोंको पूर्णतः सूक्तके ब्राह्मण वाचक शब्दोंकी साथ मिलाकर देखें और साथका मिलकर मनन करें, तो उनकी पता लग आयेगी कि ब्रह्मोपदेशक ब्राह्मण किन गुणोंसे युक्त होना चाहिये। अथ ब्रह्मणः मन्त्रोक्ता आशय देखिये—

हों या पुरुष हों, जो भेद उनमें पाशाचरण करनेवाला हो, वह उपदेश सुनते ही धर्म मानते गेरित होकर तथा धर्ममें आनेके लिये उत्सुक होकर, धर्ममें प्रवेश करे और अवर्माचरण की निन्दा करे। पाठक ध्यान रखें, कि इदमके भाव परिशीलित होनेका यह पहिला लक्षण है। धर्ममें प्रविष्ट होनेके पश्चात् धर्म-संघके लोग उद्यमे रित प्रहार आचरण करे इस नियमका उप-देश द्वितीय मंत्रमें देखिये—

नचप्राविष्टका आदर ।

द्वितीय मंत्र—“यह स्तुति करता हुआ भागया है, इसका स्वागत करो। हे ज्ञानी पुरुष ! उनको अपने वशमें रख कर, ब्राह्मण और उनका मुखिया से उग्र पर ध्यान रखे ॥ २ ॥”

वर्चःप्राप्ति-सूक्त ।

यह सूक्त “वर्चस्य-गण” का प्रथम सूक्त है । वर्चस्यगणके सूक्तोंमें “तेज संवर्धन, बलसंवर्धन, धनकी प्राप्ति, शरीरकी पुष्टि, समाज या राष्ट्रमें सम्मानप्राप्ति” आदि अनेक विषय होते हैं । वर्चस्यगणमें कई सूक्त हैं, उनका निर्देश आगे उम्मी उम्मी स्थानपर किया जायगा —

(९)

[श्रुतिः— अथर्वा । देवता-यस्वादयो नानादेवताः]

अस्मिन्वसु वसवो धारयन्स्वन्द्रः पूषा धरुणो मित्रो अग्निः ।	
इगमादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरास्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ॥ १ ॥	॥ १ ॥
अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अमिकृत वा हिरण्यम् ।	
सुपत्नो अस्मदधरे भवन्तुत्तमं नाकुमर्धि रोहयेमम् ॥ २ ॥	॥ २ ॥
येनेन्द्राय समभरुः पयोस्युत्तमेन व्रतणा जातवेदः ।	
तेन स्वमेव इह वर्षयेम सज्जातानां श्रेष्ठ्य आ वसेनम् ॥ ३ ॥	॥ ३ ॥
एषां पुष्टमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोर्षमुत चित्तान्यमे ।	
सुपत्नो अस्मदधरे भवन्तुत्तमं नाकुमर्धि रोहयेमम् ॥ ४ ॥	॥ ४ ॥

अर्थ — (अस्मिन्) हम पुरुषमें (वसवः) वसु देवता तथा इन्द्र, पूषा, धरुण, मित्र, अग्नि ये देव (वसु) धनको (धारय-
न्तु) धारण करें । आदित्य और विश्वे देव (इगं) हम पुरुषको (उत्तरास्मिन् ज्योतिषि) अग्नि सप्तम तेजमें धारण करें ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवो । (अस्य) हम पुरुषके (प्रदिशि) आदिगणें उपाते, सूर्य, अग्नि और हिरण्य (अमिकृत) देव ।
(सुपत्नः) शत्रु (अस्मद अधरे) हमारे नीचे (भवन्तु) हों और (इगं) इसको (उत्तमं नारं) उत्तम गुणमें (अग्नि
रोहय) हम बड़ाओ ॥ २ ॥ हे (जातवेदः) शायी उपदेष्टा । (येन उत्तमेन व्रतणा) जिस उत्तम ज्ञानसे इन्द्रके लिये
(पयोसि समभरुः) इन्द्रादि रत्न दिये जाते हैं (तेन) उस उत्तम ज्ञानसे, हे (अमे) तेजस्वी पुरुष । (इगं) इगरो (इह)
यहां (वर्षय) बड़ाओ और (पृथं) इसको (सज्जातानां श्रेष्ठ्ये) अपनी जानिमें श्रेष्ठ ध्यानमें (आ भेदि) स्थापित कर ॥ ३ ॥
हे (अग्ने) तेजस्वी पुरुष । (एषां) इनके यज्ञ, (वर्चं) तेज, (रायः पौर्षं) धनकी वृद्धि और चित्त आदिमें (एषं
आ वदे) मैं प्राप्ति करता हूं । (सपत्नः) शत्रु हमारे नीचेके स्थानमें रहें और (इमं) इन मनुष्योंसे वजन पुरुषमें (अग्नि रोहय)
पुष्टीका दो ॥ ४ ॥

व्यक्तिमें देवतांश निवासक शक्तियां	समाजमें देवता समाश्रित्यशक्ति आठ शक्तियां	विश्वमें देवता व्यवहार (आठ)
स्थूलसारीर रक्षादि धातु गरीरका तेज	मातृभूमि जल नदी नद आदि अग्नि विपुल आदि	पृथ्वी आप् तेजः ऊर्ध्वतिः
प्राण कान अज्ञान प्रकाश	शुद्ध वायु स्थान औपधि, यनस्पति धान्यादि	वपुः अकाशः सोमः
इन्द्रिय गग शान आनतेज उष्टि शांतभाव मित्रभाव	साधारण जनता प्राधान्य, ज्ञानी मनुष्य छात्रि वीर राष्ट्रोपक अधिकारी	अहः नक्षत्राणि, देवाः महान् इन्द्रः पूषा वरुणः
मित्रभाव माणी सातंत्र्य तेज, दर्शनशक्ति गम दिम्ब गुण तेज	मित्र जन ह भी उपदेशक स्वतंत्र विचारके लोग वार्त्तिक शिक्षान् सश विद्वान्, कारीगर	मित्रः अग्निः आदित्याः सूर्यः विश्वे देवाः
वृष्ट विचार आनेष्ट तेजो गम	धन शत्रु स्वाध्यायता " " "	हिरण्यं उपमाः मातृ (स्वर्ग) उत्तमं उर्ध्वतिः मध्यमं " क्षयनं "

“ दृष्टव्यम् ” पुलकितं अंशवत्प्राप्तं वैदिक भाव वर्णन
किया है वह हम गम्य अवश्य पढ़िये । (स्वाध्याय मंडलद्वारा
पठयितुं गम्य १॥)

इस सूक्तमें प्रारंभमें ही “अस्मिन्” पद है इसका अर्थ “इस मनुष्यमें” ऐसा है । अत्र होता है कि किस मनुष्यके उद्देश्यसे यह शब्द यहाँ आया है ? पूर्व सूक्तके साथ इस सूक्तका संबंध देखनेसे स्पष्टतापूर्वक पता लगता है कि इस सूक्तका संबंध पूर्व सूक्तमें वर्णित “नवप्रविष्ट शुद्ध हुए” मनुष्यके सम्बन्ध है । जो मनुष्य भवकी वृत्ति बदलनेके कारण अपने धर्ममें प्रविष्ट हुआ है, उसकी सबसे अधिक उम्मीद करनेकी इच्छा करना प्रत्येक मनुष्यका आवश्यक कर्तव्यही है । अपने धर्ममें जो छे-छूटे अंश प्राप्त है, वह उसको छीप प्राप्त हो, हम विषयकी इच्छा करनेमें धारण करनी चाहिये, अर्थात् उसकी विशेष तेज प्राप्त हो ऐसा इच्छा करना चाहिये । यद्यपि इस सूक्तका पूर्वा-पर संबंध देखनेसे यह सूक्त नव प्रविष्टकी तेजवृद्धिके लिये है ऐसा प्रतीत होता है; तथापि इष्टक मनुष्यकी तेज वृद्धिके सामान्य निर्देश भी इसमें है और इस दृष्टिके यह सामान्य सूक्त सब मनुष्यके उपयोगी भी है । पाठक इसका दोनों प्रकारसे विचार करें ।

अब यहाँ पूर्वोक्त संश्लेष भावार्थ दिया जाता है और वह भावार्थ देनेके समय व्यक्तिमें जो देवतांश हैं उनको संकेत कर दिया जाता है । पाठक इसकी तुलना पूर्वोक्त कोष्टकसे करें-

उत्पत्तिक मूलमन्त्र ।

प्रथम मंत्र “ इस मनुष्यमें जो निवासक शक्तियां हैं तथा ज्ञान बल, उष्टि, धाति, मित्रता तथा माणी आदिकी शक्तियां हैं, ये सब शक्तियां इसमें धन्यता स्थापित करें । इसके स्वतंत्र विचार और इसकी सब इंद्रियां इसको उत्तम तेजमें धारण करें ॥ १ ॥ ”

अंदर समता और शांति रचना, (५) मनमें मित्रभाव बढाना और ईश्वर भाव कम करना, तथा (६) वाणीकी शक्ति विकसित करना । इन छः शाक्तियोंके बढ जानेसे मनुष्य हरएक प्रकारका धन प्राप्त कर सकता है और उससे अपने आपको धन्य बना सकता है । यहाँ का “ वसु ” शब्द धनवाचक है परंतु यह धन केवल पैसाही नहीं, परंतु यह वह धन है, कि जिससे मनुष्य अपने आपको छेठ पुरुषोंमें धन्य मान सकता है । इस वसुमें सब निवासक शाक्तियोंके विकाससे प्राप्त होनेवाली धन्यता आ जाती है । (१) “ निवासक शाक्ति, (२) क्षात्रतेज, (३) पुष्टि, (४) समता, (५) मित्रभाव, (६) वक्तृत्व, ” इन छः गुणोंकी वृद्धि करनेकी सूचना इस प्रकार प्रथम मंत्रके प्रथमाध्याये दी है और दूसरे अध्याये कहा है कि (७) इसके स्वतंत्र विचार और (८) इनकी इन्द्रिय शक्तियाँ इनको क्षामोत्तम तेजस्वी स्थानमें पहुँचावें । मनुष्यके स्वतंत्र विचारही मनुष्यकी उन्नति का गिराते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ स्थायी नहीं तो ही वह संयमी मनुष्य छेठ बनता है अन्यथा इन्द्रियोंके आधीन बनकर दुर्बल बन जाता हुआ मनुष्य प्रतिदिन दीन होता जाता है । मनुष्यकी निःसंदेह उन्नति करनेका यह अष्टविध साधन प्रथम मंत्रने दिया है । वह हरएक मनुष्यको देखने-योग्य है । अब दूसरा मंत्र देखिये—

विजयके लिये संयम ।

द्वितीय मंत्र—“ हे देवो ! इस मनुष्यकी आशामें तेज, नेत्र, वाणी और धन रहे । हमारे शत्रु नीचे हो जाय और इसकी सुखकी उत्पत्ति अवस्था प्राप्त हो ॥ २ ॥ ”

इस मंत्रमें “ (अल्प प्रदिशि सूर्यः अस्तु) इसकी आशामें सूर्य रहे ” यह वाक्य है । वाक्य जान सकते हैं कि जिसकी भी मनुष्यकी आशामें सूर्य रह ही नहीं सकता, क्योंकि वह मनुष्यकी शक्तिने बाहर है, परन्तु सूर्य आकाश और शरीरमें नेत्र स्थानमें रहता है और जिसको नेत्र इन्द्रिय कहते हैं वह तो संयमी पुरुषके आधीन रह सकता है । इससे पूर्व बौद्धिकी बात सिद्ध होती है कि व्यक्ति के नियमों के विचार करनेके समय देवताओंके शरीरस्थानीय अंगही सेने चाहिये जैसा कि पहले मंत्रमें किया है और इस मंत्रमें भी करना है ।

तात्पर्य-मनुष्य इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रह करके अपनी शक्तियोंको अपने आधीन रखे । अपनी इन्द्रियोंको अपने आधीन रखना आत्मविजय प्राप्त करना है । इस प्रकार आत्मावश्य ही मनुष्यही शत्रुओंको दबा सकता और उत्तम सुख प्राप्त कर सकता है । यदि जगतमें विजय पाना है, शत्रुओंको दबाता है, तथा उत्तम सुख कमाना है, तो अपनी शक्तियोंका सबसे प्रथम स्थायी करना चाहिये, यह महत्त्वपूर्ण उपदेश वहाँ मिलता है । अब तृतीय मंत्र देखिये—

ज्ञानसे जातिमें श्रेष्ठताकी प्राप्ति ।

तृतीय मंत्र—“ जिस उत्तम ज्ञानसे क्षत्रियको उत्तमोत्तम रत्न प्राप्त होते हैं, हे धर्मोपदेसक ! उसी उत्तम ज्ञानसे यह भी इस मनुष्यकी वृद्धि कर और अपनी जातिमें इसे श्रेष्ठता प्राप्त हो ॥ ३ ॥

क्षत्रियोंको, इन्द्रो अथवा राजाको जिस ज्ञानसे उत्तम भोग प्राप्त होते हैं और जिस ज्ञानसे वह सबसे अग्र सनत्ता जाता है, वह ज्ञान इस मनुष्यको प्राप्त हो और यह मनुष्य भी पैसाही अपनी जातिमें अथवा अग्निराष्ट्रमें छेठ बन । राष्ट्रके हरएक पुरुषको छेठ ज्ञान प्राप्त करनेके सब साधन पुनः रदने चाहिये । वह मनुष्य नूनन प्रवृत्त हो वा उसी जातिमें उत्पन्न हुआ हो । तथा हरएक मनुष्यमें यह महत्त्वकांक्षा होनी चाहिये कि मैं भी उस ज्ञानको प्राप्त करके पैसाही छेठ बनूँगा, मैं अपनी जातिका नेता बनूँगा और अपने देशमें छेठता प्राप्त करूँगा । यह मंत्रका आशय हरएकको नित्य स्वयंसे रचना उचित है । अब अगला मंत्र देखिये—

असत्यभाषणादि पापोंसे छुटकारा ।

(१०)

(ऋषिः-अथर्वी । देवताः १ असुरः, २-४ वरुणः ।)

अयं देवानामसुरो वि राजनि वश्या हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।

तत्स्परि प्रक्षेपा शार्शदान उग्रस्य मन्योरुद्रिमं नयामि ॥ १ ॥

नर्मस्ते राजन्वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्यग्निं निचिकेपि द्रुगधम् ।

सहस्रमन्यान्प्र सुवामि साकं श्रुतं जीवाति श्रुतस्तत्रापम् ॥ २ ॥

यदुवकभानृतं जिह्वया वृजिनं च ह । राज्ञस्तथा सत्यधर्मणो मुश्यामि वरुणादुहम् ॥ ३ ॥

मुश्यामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महत्स्परि । सज्जातानुग्रेहा यदं व्रज चापं चिकीहि नः ॥ ४ ॥

अर्थ- (अर्थ) यत् (देवानां असुरः) देवोंकी भी जीवन देनेवाला ईश्वर (जि राजनि) प्रधानता दे । (हि) क्योंकि (राजः वरुणस्य) राजा वरुण देव अर्थात् ईश्वर की (यता) इच्छा (सत्या) सत्य दे । (ततः परि) इतना होनेपर भी (प्रक्षेपा) शानघे (शार्शदानः) तीक्ष्ण बना हुआ भी (उग्रस्य मन्योः) प्रबल ईश्वरके मोघते (हने) इस शत्रुत्वके (उह नयामि) ऊपर उठाता हूँ ॥ १ ॥ हे (वरुण राजन्) ईश्वर । (ते मन्यवे) तेरे मोघके (नम अस्तु) नमस्कार होने । दे (उग्र) प्रबल ईश्वर । य (विश्वं द्रुगधं) सम द्रोहादि पापोंके (निचिकेपि) ठीक प्रकार जाननादे । (सहस्रं मन्यान्) हजारों अस्त्रोंके (सारं) शाय शाय भी (प्रमुश्यामि) प्रेरणा करता हूँ । (धर्मं) यद् अनुम्य (तव) तेरा स्वतन्त्र ही (शरं शरदः) धी धर्म (जीवति) जीता रह सकता है ॥ २ ॥ हे समुद्र । (यत्) जो (वृजिनं) अलस्य धीर वाच वचन (जिह्वया) शिखाये (यदु वचनम्) यद् वचनम् तु बोला है, वसते तथा (सत्यधर्मो) सत्य न्यायी (राजः वरुणात्) राजा वरुण देव ईश्वरके (महं) मैं (त्वा) तुझसे (मुश्यामि) छुड़ाता हूँ ॥ ३ ॥ हे समुद्र । त्वा तुझसे (महतः वैश्वानरात् अर्जुनात्) बड़े समुद्रने समान ममी (विधना-यक देवते परि मुश्यामि) छुड़ाता हूँ । हे (उग्र) शीर । (हह) वर । (सज्जातान्) अपनी जातिवालोंके (भा यद्) यद् वद् दे और (नः) हमारा (मस्र) शान (अप चिकीहि) तु जान ॥ ४ ॥

पापसे छुटकारा पानेका मार्ग ।

यद्यपि यह सूक्त अति सरल है तथापि पाठकोंके विशेष सरल बोधके लिये यहां थोड़ा सा स्पष्टीकरण किया जाता है ।

इस सूक्तमें पापसे छुटकारा पानेका जो मार्ग बताया है वह निम्नलिखित है—

एक शासक ईश्वर ।

(१) “ देवानां असुरो विराजति ”—सूर्यवंशदि देवोंकी विविध शाक्ति देनेवाला एक प्रभु ईश्वरही सब जगत्का परम शासक है । इससे अधिक शक्तिशाली दूसरा कोई नहीं है । (मंत्र १)

(२) “ राजो बरुणस्य यथा हि सत्या ”—उस प्रभु ईश्वरका मध्य शासन है । उसकी इच्छा सर्वोपरि है । उसके अपूर्व शासनका कोई उल्लंघन कर नहीं सकता । (मंत्र १)

(३) “ विश्वं ह्युग्रं निश्चिकेपि हुग्रम् ”—दे प्रभु ईश्वर ! तू हम सबके पापोंको यथावत् जानता है । अर्थात् कोई मनुष्य अपने पाप उससे छिपा नहीं सकता । क्योंकि तू सर्वज्ञ है इसलिये हम सबके गुरे भले कर्म यह यथावत् सबी समय जानना है । (मंत्र २)

ईश्वरकी सर्वोपरि मानना, सबसे सामर्थ्यशाली यह है यह स्वीकार करना और उससे छिपाकर कोई मनुष्य कुछ कर नहीं सकता, यह निश्चित रीतिसे समझना, पापसे बचनेके लिये आश्रयक है । पापसे बचानेवाले ये तीन मन्त्रवर्ण विश्वास इस सूक्तमें कहे हैं, पाठक इनका मनन करें और इनकी अपने अंदर स्थिर करें । यही तीन भाग मनुष्यका पापसे बचाव कर सकते हैं ।

ज्ञान और भक्ति ।

मनुष्यने। पापसे बचानेवाले ज्ञान और भक्ति ये दो ही हैं । इनका वर्णन इस सूक्तमें निम्नलिखित रीतिसे किया है—

(१) “ ब्रह्मणा शासनात्मः । ” ज्ञानसे तीक्ष्ण बना हुआ मनुष्य पापसे बच जाता है और दूसरोंको भी बचाता है । छलिके तथा आत्मिके यथार्थ विज्ञानको “ ब्रह्म ” कहते हैं । यह ब्रह्म अर्थात् सृष्टिविद्या और आत्मविद्याका उत्तम ज्ञान मनुष्यको तीक्ष्ण बनाता है । अर्थात् तेज बनाता है । जिस प्रकार तेज राज शय्यका नाच करता है उसी प्रकार ज्ञानका तेज शरीर भी अज्ञान पाप आदि शय्यओंका नाच करता है । मनुष्यकी सभी उन्नतिका यही साधन है । (मंत्र १)

(२) “ ममसे राजन् बरुणास्तु मन्यवे । ”—दे ईश्वर ! तेरे बोधके सामने हम मनन करते हैं, तेरे शासनके सामने हम अपना धिर छुड़ते हैं । अर्थात् हम तेरी धरने

आकर रहते हैं, हम अपने आपसे तेरी इच्छामें समर्पित करते हैं । तू ही हमारा तारनेवाला है । तेरे बिना हम किसी अन्यको धरने जानेयोग्य समझते नहीं । (मंत्र २)

(३) “ शतं जीवति शरदस्तवायम् । ”—जो वर्ष जीवित रहेगा जो तेरा बनेगा । जो परमेश्वरका भक्त बनकर रहेगा उसका नाश कौन कर सकता है ? (मंत्र २)

पाठक इन तीन मंत्रभागोंमें ज्ञान और ईश्वरभक्तिसे पाप-मोचनकी संभावना देख सकते हैं । सृष्टिविद्याके नियमोंको जानकर तत्तुक्कल आचरण करना, आत्मविद्याकी जानकारी परमात्माको सार्वभौम सत्ताधार मानना, भक्तिसे ईश्वरके सम्मुख नम्र बनना और ईश्वरका भक्त बनकर आनन्दसे उसका होकर रहना यही पापमोचनका सीधा और निश्चित मार्ग है । पाठक ॥ सूक्तमें यह मार्ग देखें । इस सूक्तमें जिस मार्गसे पापमोचनकी संभावना कही है वह यही मार्ग है और यही निश्चित और सीधा मार्ग है ।

प्रायश्चित्त ।

पापसे बचनेके लिये प्रायश्चित्त भी यही कहा है और वह यही देखनेयोग्य है —

(१) “ ब्रह्म अपचिकीहि । ”—पूर्वज ज्ञान जानकर अपना उत्तम ज्ञान प्राप्त करना, तथा संक्षेपसे जो नियम ऊपर बताये हैं उनको जानना यह उपातिक प्रायश्चित्त साधन है । जब इस ज्ञानसे अपने अशुभागोंका पता लगेगा, अपने दुःख-राजकारका ज्ञान होगा तब पश्चात्तापसे छुड़िके करनेका मार्ग है, वह इस प्रकार है—(मंत्र ४)

(२) “ सज्जतादुमेव वद । ”—हे शीर ! तू अपनी जातिके पुत्रोंके सामने अपने सब अपराध कह दे । यही प्रायश्चित्त है । अपनी जातिके ही पुत्रोंके सम्मुख अपने अपराधोंको व छिपाते हुए कहना, वह बड़ा भारी प्रायश्चित्त है और इसके मनुष्यके मनकी शुद्धि होती है । (मंत्र ४)

ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् या जिस समय पश्चात्ताप हो उस समय अपने सब अपराध अपनी जातिके सम्मुख कहना बड़ा धैर्यका तथा मनकी पवित्रताका कार्य है । इसके मनुष्य इस प्रकार प्रायश्चित्त नहीं कर सकता । प्रायः मनुष्य अपने अपराधोंको छिपानेका ही यत्न करते हैं परंतु जो लोग अपने दोषोंको जनताके सम्मुख कह देते हैं वे शुद्ध बनकर धीप्रदी बने महामा बन जाते हैं ।

॥ सूक्तमें “ ब्रह्म ” आदि शब्दों द्वारा परमात्माका वर्णन हुआ है, “ सुखायि ” आदि शब्दोंसे पापियोंकी पापसे

छुटानेवाला मरौपदेशक का वर्णन है और "इमं" आदि शब्दोंसे पापी मनुष्योंका भी वर्णन हुआ है । घमोपदेशक पापियोंको पापसे बचानेका उद्देश्य परमेश्वरभक्तिका वर्णन बताकर कर रहा है, यह बात हम सूक्तके शब्दोंमें स्पष्ट होती है। अर्थात् घमोपदेशक इसी भाँति स्वयं पापसे बचे और दुष्टोंको पापसे बचावे ।

पापी मनुष्य ।

पापी मनुष्य सहस्रों प्रकारके पाप करता है, परंतु इस सूक्तमें कुछ मुख्य पापोंकाही उल्लेख किया है, वह भी यहाँ देखने-योग्य है—

(१) " विश्वं दुर्मयं । " — सब देव अर्थात् सब प्रकारका

घोसा । घोसा देना, काया-बान्धा-मनसे विघासना करना, बड़ा पाप है । इसमें बहुतसे पाप आ जाते हैं : (मं ० २)

(२) " यदुवच्यतुर्तं जिह्वा वृजिने बहु । " — जिह्वसे अस्वयं तथा पापभावसे युक्त वचन बोलना भी बड़ा पापका कर्म है (मं ० ३)

द्रोह करना और अत्याय बोलना, इन दोनोंमें प्रायः सब पाप समाज्जने हैं । इन पापी मनुष्योंका सुधार पूर्वोक्त रीतिसे ही होना सम्भव है । घमोपदेशक तथा साधारण जन यदि इस सूक्तका विचार करेंगे तो उनका पापमोचनके विषयमें बहुतही योग्य बोध मिल सकता है ।

यह पापमोचन-अकरण सम्यक् ।

सुख-प्रसूति-सूक्त ।

(११)

[ऋषिः—अथर्वी । देवता-पूषादेवा नाना देवताः]

वर्षद् ते पूषस्मिन्सुतोवर्ष्यमा होता कणोतु वेधाः ।

सिल्लतां नार्युतमंजाता वि पर्वाणि जिहतां छतुवा उ ॥ १ ॥

चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूष्णांनुत । देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्ण्वन्तु छतवे ॥ २ ॥

सुषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि । अथर्वा छपणे त्वमव त्वं विष्कले सुज ॥ ३ ॥

नेवं मसि न पीवसि नेवं मज्जस्वाहृतम् ।

अवैतु पृश्नि शेवंलं शुनें जराय्वत्तवेज्वं जरायुं पयताम् ॥ ४ ॥

वि ते भिनप्ति मेहनं वि योनिं वि ग्वीनिके ।

वि मातरं च पुत्रं च वि कुंभारं जरायुणारवं जरायुं पयताम् ॥ ५ ॥

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पृश्निः ।

एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पुतारं जरायुं पयताम् ॥ ६ ॥

अर्थ— (पूषन्) पौरव ईश्वर । (ते वर्षद्) तेरे लिये हम आत्मा जर्जल करते हैं । (जामिन्) यही हम प्रसूति के बादें गर्भसे होकर पैदा । (अथै यवनाया यथा विधाया ईश्वर महामता) (कुण्ड) बच्चे । (जरायुणा) निरपवृद्ध बच्चेको

जन्म देनेवाली (गारी) स्त्री (सिंघना) पक्षपाते रहे । तथा अपने (पर्वान्ति) शर्मको (स्तुति उ) सुप्रसूतिके लिये (निजिह्वा) खाले करें ॥ १ ॥ (विनः) आकाशकी (उत) तथा (भूम्या-) भूमि की (पतसः प्रविशः) चारों दिशाओंमें रहनेवाले (देवाः) देवानों (गर्भ समैरयन्) गर्भ को बनाया, इसलिये वेही (स्तुते) उसकी सुप्रसूतिके लिये (तं त्रि जुगुप्सुन्) उसको श्रद्धा करें, उसको याद कर लुका करें ॥ २ ॥ (स्या) उतम संतान उत्पन्न करनेवाली माता (व्यूर्णोत्तु) अपने अंगोंको लुका करे । हम (योनि) योनिको (निहायामसि) खोलते हैं । हे (सृणे) प्रसूत होनेवाली स्त्री । (त्वं) तू भी (श्रयय) अंदरसे प्रेरणा कर । और हे (विष्कले) वीर स्त्री । (त्वं) तू (अवसृज) बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ (न ह्य मत्से) नहीं तो मांसे, (न पारवि) न चर्मासे, और (न ह्य मज्जसु) न तो मज्जामें बड़े (लाहले) लिपटा है । (प्राप्ते सौमले) गरम सेवारके समान (जरायु) जेला (शुने अचये) कुत्तेके लिये खानेको (अर्चतु) नीचे आवे, (जरायु) जेला (भवपद्यताम्) नीचे गिर जाये ॥ ४ ॥ (ते मेदन्) तेरे गर्भके मार्गको, (योनि) योनिको तथा (गर्वाग्निके) दोनों नाडियोंको (त्रि त्रि वि गिनन्ति) विशेष रीतिसे लुका करता है । (मातरं पुन य-) माता और पुत्रको (त्रि) अन्न करता है तथा (ज्वारं जरायुणा वि) योनीके जेरीसे अन्न करता है । (जरायु) जेरी (अय पद्यताम्) नीचे गिर जाये ॥ ५ ॥ जेव वायु, जेसे मग और जेसे पक्षी (पतन्ति) चलते हैं (एव) इसी प्रकार है (दशमाद्य) दस महिनेवाले गर्भ । तू (जरायुणा साकं) जेरीके साथ (पत) नीचे आ तथा (जरायु अवपद्यताम्) जेरी नीचे गिर जाये ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सबके पोषण करनेवाले जगदीश । तेरे लिये हम अपना अर्पण करते हैं । इस प्रसूतिके समय सब जगत्का निर्माता तूही हमारा सहायक बन । यह स्त्री भी पक्षपाते रहे और इस समय अपने अंगोंको लुका करे ॥ १ ॥ आकाश और भूमि की चारों दिशाओंमें रहनेवाले सूर्यादि संपूर्ण देवानों इस गर्भको बनाया है । और वे ही इस समय अपनी सहायतासे इसको सुप्रसूत गर्भस्थानसे बाहर लेंगे ॥ २ ॥ स्त्री अब अपने अंग लुके करें, सहाय करनेवाली धार्ष्ट्योनि को खोले । हे स्त्री । तूही गर्भ अंदरसे प्रेरणा कर और मुखसे बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ यह गर्भ मांस, चर्मा वा मज्जामें विपका नहीं होता है । ॥४॥ पानीमें पर्यटोर बननेवाले गरम सेवारके समान अति कोमल धैर्यमें लिपटा हुआ होता है, यह सब धैर्यही धैर्य एकदम बाहर आवे और वह मानके साथ जेला कुत्तोंको खानेके लिये ला जाये ॥ ४ ॥ योनि, गर्भस्थान और पिछली नाडियोंको डाला किया जावे, प्रसूति होनेही मातासे बचा अन्न किया जावे और बच्चे जेनी नाल समेत अलग की जाये । नाल समेत सब जेनी पूर्णतासे बाहर निकल आवे ॥ ५ ॥ जिस प्रकार मन वेगसे विपरीत गिरता है, जेवे वायु और पक्षी वेगसे आकाशमें चलते हैं उसी प्रकार सबमें महिनेमें गर्भ जेरीके साथ गर्भस्थानसे बाहर आवे और जेरी आदि सब नीचे गिर जावे अर्थात् माताके गर्भस्थानमें सबका कुछ भाग अवशिष्ट न रहे ॥ ६ ॥

प्रसूति प्रकरण ।

इस सूक्तसे क्या प्रकरण प्रारंभ हुआ है । यह प्रकरण विशेषतः त्रिपदेके लिये और सामान्यतः मन्त्रके लिये विशेष लाभकारी है । विशेषतो प्रसूतिके गितने कष्ट सहने पड़ते हैं उनका दुःख त्रिगंधी जानती है । प्रसूतिके समय न्यून कष्ट होना प्रयत्नसे पाया है । गर्भाधारणसे लेकर प्रसूतिके समयतक अथवा गर्भाधारणसे भी पूर्ण समयमें भी जो विषम पालन करनीय है, उनका योग्य रीतिसे पालन करनेसे प्रसूतिके कष्ट बहुत घटे हुए जाना संभव है । इस विषयमें आगे बहुत उपदेश आनेवाला है । यही इस सूक्तमें त्रितना विषय भाषा है, उसकी साथ बड़ी हेतु है—

ईशमक्ति ।

परमेश्वरकी भक्तिही मनुष्यको दुःखोंसे बच कर सकती है । यदृच्छी लीपुत्र यदि परमेश्वरके उत्तम भक्त हों तो उन्हें पारवारीयों जिनको प्रसूतिके कष्ट न होंगे, यह बतानेके लिये इस सूक्तके प्रथम मन्त्रके पूर्वार्धमें ही सबसे पहिले ईश्वरकी मान्यतापूर्वक वर्णन किया है ।

“ यद् ” शब्द “ दवाहा ” अर्धमें अर्थात् “ आरामसम्पन्न ” के अर्थमें प्रयुक्त होता है । (हे पूत्र । ते यद्) हे ईश्वर । तेरे लिये हम अपने आपको समर्पण कर रहे हैं । तू ही (अर्थ या) अष्ट सज्जनोंका भाग करनेवाला अर्थात् दितृव्य है, तू ही (वेधा) सब व्यक्तका रचयिता और निर्माता है

और रही (होना) सब सुखोंका दाता है । इसलिये हम तेरे आश्रयसे रहते हैं और तेरे लियेही पूर्णतया समर्पित होते हैं ।

यहां पूर्व सूक्तमें वर्णन किये ईश्वरके गुण-अनुमंथनसे देखने योग्य हैं । " सब सूर्यादि देवताओंको शक्ति देनेवाला एक ईश्वर है और उसका शासनही सर्वोपरि है । " इत्यादि भाव जो पूर्व सूक्तमें कहे हैं, यहां देखिये । " सबसे समर्थ प्रभु ईश्वर मेरा महायन्त्रा है, और मैं उसकी गोदमें हूँ " इत्यादि भक्तिके भाव जिसके दृढयत्न अकृत्रिम प्रेमके माध्यम रहते हैं, यह मनुष्य विशेष शक्तिसे और आगेयसे युक्त होता है और प्रायः ऐसा मनुष्य सदा आनन्दमें रहता है ।

काम विकारका संयम करनेके लिये परमेश्वर भक्तिही एक दिव्य औषधि है । कामविकारका नियमन हुआ तो जिनको प्रसूतिके दुःख होमें मौन्य कम होगे, क्योंकि कामकी भांति होममेंही क्रिया अशक्त बनती है और अशक्तताके कारण प्रसूतिके बृद्ध अधिक होते हैं तथा प्रसूतिके पश्चात्के क्षणदि रोग भी बृद्ध देत हैं । इसलिये कामभोगका नियमन परमेश्वर भावसे कठिना उपदेश इत्येक औपलब्धिका यही अवश्य ध्यानमें करना चाहिये ।

देवोंका गर्भमें विकास ।

सूर्यादि देवताएं अपना अपना अंश गर्भमें रखी हैं, सब देवताओंका अंशभूतार गर्भमें होनेके पश्चात् आत्मा उत्पन्न होता है । इत्यारि विषय वेदमें स्थान स्थानपर आया है । [इस विषयमें स्नाय्यायमंत्र द्वारा प्रकाशित " प्रसूतवर्ष " पुस्तकमें " देवोंका अंशभूतार " शीर्षक विस्तृत लेख अवश्य पढ़िये । वहां विभिन्न वैदिकग्रन्थों द्वारा वह विषय स्पष्ट कर दिया है ।] तात्पर्य यही है कि प्रसूति के पश्चात् देवताएं रहती हैं और उनका संरक्षक ब्रह्मा देवताओंके साथ है । भूमि और आकाशकी भारी दिशाओंमें रहनेवाली सब देवताएं अपने गर्भमें अंशभूतयोंसे आनन्द हैं, मानो उनका संमेलन (समीकरण) ही गर्भमें हुआ है और उनका आपेक्षाता आत्मा भी उसी गर्भमें है । यह दृढविश्वास गर्भ धारण करनेवाली स्त्रियांका होना चाहिये । अर्थात् जो गर्भ अपने अंदर है वह अपने काम कामोपयोग का ही फल नहीं है, परंतु उसमें और अधिक मरणापूर्व आत्मा-प्रकटिका और देवी-कल्पना संरक्षित है । ऐसा भव्य गर्भवाली होने स्थिर रहनेसे गर्भवतीका स्वास्थ्य तथा गर्भकर पोषण भी उत्तम होता है । गर्भाधानके समयमें भी देवताओंका आश्रय किया जाता है । उस समयके मंत्र इस प्रकार पठके देखिये तो

१ (अ. ६, भा. १, सू. १)

उनकी पता लगेगी कि गर्भाधान कामविकारके योगके लिये नहीं है परंतु उच्च शक्तिशाली धारणा के लिये ही है । अस्तु ! गर्भिणी स्त्री अपने गर्भके विषयमें इतना लक्ष्य भव मनमें धारण करे और समझे कि जिन देवताओंके अंश गर्भमें इकट्ठे हुए हैं वेही देवताएं गर्भका पोषण और सुख प्रसूतिमें अग्रगण्य सहाय्य देंगी । अर्थात् इस प्रकार देवताओंकी सहायता और परमात्मा का आधार लुप्त है इसलिये सुख कोई कष्ट नहीं होगा । पाठक इस दांष्ट्रि इस सूक्तका द्वितीय मंत्र पढ़ें ।

गर्भवती स्त्री ।

पूर्वोक्त भाव गर्भवती अपने अंदर रहतासे धारण करे । अब गर्भवती स्त्री अपना गृहस्थाधर्ममें रहनेवाली का निर्णय तोताया विचार करे—

१ भारी-जो धर्मनीतिसे (नृणाति) चलती है अर्थात् धर्म नियमोंसे अपना आचरण करती है, तथा (नर) पुत्रके मार्ग रहती है, वह नारा कहलती है । अर्थात् विवेक गृहस्थाधर्मके नियमोंका पालन करेका भाव इस शब्दसे सूचित होता है । (मंत्र १)

२ कृतप्रजाता—(कृत) कल्याणमानुष्य (प्रजाता) प्रजनन करनेसे युक्त । अर्थात् गर्भ-धारण, गर्भ-पोषण और प्रसूति आदि सब कर्म जिसके सत्य धर्मनियमोंके अनुवृत्त होते हैं । कृतगामी होना, गर्भ धारणके पश्चात् तीन वर्षके उपान्त अपना बालक दुध पीना छोड़ दे तत्पश्चात् नानुगामी होना, इत्यादि सब नियमोंका पालन करनेवाली स्त्री सुतसे प्रसूत होती है । (मंत्र १)

३ स्या, सृज्या—जिस स्त्रीको प्रसूतिके कष्ट नहीं होते, अर्थात् जो सुतसे प्रसूत होती है । जिनको योग्य नियमोंके पालन द्वारा यह गुण अपनेमें स्थाना पाविये । (मंत्र १)

४ चिकृष्टा—धीर स्त्री अर्थात् धैर्यवती स्त्री । जिनको अपने अंदर धैर्य ब्रह्मा आवश्यक है । जोहमें कष्ट होने लगे तो चबराता नहीं पाविये । धैर्यसे उनको श्रमा पाविये । (मंत्र १)

गर्भवती जिनको इन चारों द्वारा प्राप्त होनेवाला मोक्ष अपने अंदर धारण करना उचित है, क्योंकि प्रसूतिके लिये इन गुणोंकी आवश्यकता है ।

गर्भ ।

इस सूक्तमें गर्भका नाम " दान म दान " आया है । इसका अर्थ " दान मातृका आनुकूल्य " देना है । यह ६३ वर्णों

गर्भका समय बना रहा है। दसवें माहिनेमें प्रसूतिका ठीक समय है। दसवें माहिनेमें पूर्व जो प्रसूति होती है, वह गर्भभी अपना अवस्थामें होनेके कारण मानाके कष्ट बढ़ती है। योग्य समयके पूर्व होनेवाले गर्भपान और गर्भजाव से सब मानाके कष्ट बढ़ाने-पाने हैं और ये सब दुःख गुरुस्थाप्रती साधारणके नियमहित मानीये हैं। होते हैं। जो गुरुस्थाप्रती स्त्री रूप योग्य नियमोपालन करते हैं, उनकी स्त्रियोंकी सुखसे प्रसूति होता है।

सुख प्रसूतिके लिये आदेश ।

१ स्त्री परदेशवासी नाकिके । (मंत्र १)

अपन गर्भमें दवाभाओका अभावतार हुआ है ऐसा भाव मनमें धारण करे । (मंत्र २)

२ (निश्चिन्ता) दस्तसे अपना व्यवहार करे । (मंत्र १)

४ प्रसूतिके समय (पक्षाणि विजिह्वा) अपने अगोरो पीना करे । (मंत्र १)

५ (सदा व्यूगोष्ठ) सुखप्रसूति चाहनेवाली स्त्री अपने मनको दाला अपना सुला करे अर्थात् ससत न बनावे । (मंत्र १)

६ (सुपणे) एवै श्रमय) सुख-प्रसूति चाहनेवाली स्त्री मनकी इच्छा साफिते भा अंदरसे प्रेरणा करे, तथा मनसे प्रसूतिके अंगको प्रेरित करे। वह प्रेरणा स्वयं उस स्त्री की ही अंदरसे उठनी चाहिये । (मंत्र १)

धार्ष्टकी सहायता ।

१ प्रसूतिके समय धार्ष्टकी सहायता आवश्यक होती है। वह धार्ष्टकी प्रसूत होनेकी स्त्रीको सुख सुचनाएं देती रहे और धारण देती रहे । " यामेश्वर तो। सायक है और सब दवाही सुनाने गर्भमें है अतः उनकी भी सहायता सुन्दर है "

इत्यादि धार्ष्टकीसे उसका धीरज बढ़ाये ।

२ आवश्यकता होनेपर योनिस्थान उचित रीतिसे सुला करे । (मंत्र १)

३ जेराके अंदर गर्भ होता है। गर्भके साथ जेरी मान लादि सब बाहर आजाय और कोई उसका पदार्थ माताके गर्भाशयमें न रहे जाय इस नियममें धार्ष्टी दक्षतासे अपना कार्य करे। वह पदार्थ अंदर रहनेसे बहुतही दुःख होता समझें । (मंत्र ४)

४ प्रसूतिके समय गर्भमार्ग, योनि और पिउले अवश्य खुले करने चाहिये। उनको यथायोग्य रीतिसे खुले करे, ताकि प्रसूति सुखसे होवे । (मंत्र ५)

५ प्रसूति होतीही मानाके पाससे पुनकी अलग करके उसपरका जेरीका बैठन हाकर जो आवश्यक कार्य कला हो वह सब योग्य रीतिसे करे । (मंत्र ५)

सूचना ।

वह विषय शारीरशास्त्रका है, केवल पाठ्यशास्त्र नहीं है। इस सूक्त चर्चामें अर्थ भा शारीरशास्त्रके प्रसूति प्रकरणके अनुसंधानकी सनक्षता उचित है। इसलिये जो वैद्य या वाक्तर है, जिन्होंने सुख-प्रसूति शास्त्रका विचार किया है, तथा जिन स्त्रियोंको इस शास्त्रके ज्ञानके सय अच्छा अनुभव भी है, उनकी इस सूक्तका अधिक विचार करना चाहिये। वेही इस सूक्तके " सिखवा, विजिह्वा, व्यूगोष्ठ " आदि शब्दोंमें ठीक प्रकार समझते हैं और वेही इस सूक्तकी ठीक व्याख्या कर सकते हैं ।

आशा है कि प्रसूति-शास्त्रके अभ्यासी इसका अभ्यास करेंगे और अधिक विद्वेय व्याख्या कर सकेंगे ।

[इति द्वितीय अध्यायक समाप्त ।]

श्वासादि-रोग-निवारण-सूक्त ।

(१२)

[ऋषिः—भृग्वंगिराः । देवता—यक्ष्मनाशनम्]

ज॒रायुजः प्रथ॑म उ॒न्विषो वृषा॑ वा॒तंभ्रजा॑ स्त॒नय॑न्नेति वृ॒ष्ट्या ।
 स॒नो मृ॒डाति॑ त॒न्वः ऋ॒जुगो रु॒जन् य एक॑मोर्ज॒स्त्रेधा वि॑चक्रमे ॥ १ ॥
 अ॒ङ्गे-अ॒ङ्गे शो॒चिषा॑ शि॒श्रिया॑र्णं न॑म॒स्यन्त॑स्त्वा ह॒विषा॑ विधेम ।
 अ॒ङ्कान्त॑स॒मङ्कान् ह॒विषा॑ विधेम॒ यो अ॒ग्रमी॑त्पर्वी॒स्या ग्र॑मीता ॥ २ ॥
 मु॒ञ्च क्षी॑र्ष॒क्या वृ॒त क्रा॑स ए॒नं प॑रु॒ष्प॒रुरावि॑वे॒द्या यो अ॑स्य ।
 यो अ॒भ्रजा॑ वा॒तजा॑ यश्च शु॒म्भो व॑न॒स्पती॑न्स॒चतां प॑र्व॒ताश्च ॥ ३ ॥
 यं मे प॑र॒स्मै गा॒त्राय॑ श॒मस्त॑न॒वरा॑य मे । यं मे च॒तु॒म्यो अ॒ङ्गेभ्यः॑ श॒मस्तु॑ त॒न्वेभ्य॑म॥ ४ ॥

यह भावार्थ मंत्रोंके अर्थोंके अनुसंधानसे पाठक पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें सूक्तका तात्पर्य आजायगा क्योंकि यह सूक्त सरल और सुप्रसिद्ध है । तथापि पाठकोंके विशेष बोधके लिये यहाँ विशेष बातोंका स्पष्टीकरण किया जाता है । यह " तत्कम-नाशन गण " का सूक्त है अर्थात् रोगादिनाशक भाव इसमें है ।

महत्त्वपूर्ण रूपक ।

सबसे पहले प्रथम मंत्रमें वर्णित महत्त्वपूर्ण रूपक विचार करनेयोग्य है । प्रथम सूक्तमें " (जरायुजः दशमास्य पुनः) जैरसे घटित उत्पन्न होनेवाले दशमासतक गर्भमें रहनेवाले पुनः " का वर्णन है । उसके साथ इस सूक्तका संबंध बतानेके लिये इस सूक्त के प्रारम्भमें ही "जरायुजः प्रथमः" ये शब्द आगये हैं । यहाँ पुनःका वर्णन यहाँ महत्त्वपूर्ण रूपकसे किया है । इस रूपकमें सूर्य ही " पुनः " है सूर्यके पुनः होनेका वर्णन वेदमें अनेक स्थानमें आगया है । यहाँका यह वर्णन धनसम आनेके लिये कुछ निवर्ग्यही और ध्यान देनेकी आवश्यकता है ।

परंतु यहाँ नूतनोत्पन्न बालकका वर्णनही करना नहीं है, बल्कि जीवनदाता सूर्यकाही वर्णन अर्थात् सूर्यके जीवन-पोषक रस-रसायन का वर्णन करना है । यह करनेका प्रस्ताव इस प्रकार इस सूक्त के प्रारम्भमें किया है । और इस प्रस्तावसे पूर्व सूक्त के साथ इस सूक्तका संबंध जोड़ दिया है ।

प्रायः प्रसूतिके समय तथापश्चात् स्त्रियोंमें अशक्तता आ जाती है और नाना रोगोंकी सम्भावना उत्पन्न होती है । इसलिये कष्टको दूर करना सुपथतासे किस रीतिसे साध्य होता है, यही बताना सूक्तका मुख्यतया विषय है । मानो इस मंत्रसे आरोग्य का विषय इस सूक्तमें प्रदर्शित किया है ।

आरोग्यका दाता ।

सूर्य ही आरोग्यका दाता है यह बात इस सूक्तके प्रथम मंत्रके उत्तराधमें स्पष्ट कही है

स वो मृदाति तन्वे ऋजुगो वजन् । (मंत्र १)

"वद (सूर्य) हमारे चारोंपों आरोग्य देता है, सीधा जाने-

संक्षेपसे सूर्यका हमारे आरोग्यसे संबंध । पाठक विचार करें और अधिक ज्ञान प्राप्त करें ।

इस रीतिसे प्रथम मंत्रमें आरोग्यका मुख्यमंत्र बताया है और उपमासे यह भी कहा है कि जिस प्रकार घरमें बालकसूती सूर्यका उदय होता है उसी प्रकार विश्वमें दिवस्पुत्र सूर्यका उदय होता है । पर छोटा विश्व है तथा विश्वही बड़ा घर है । इसलिये पुत्र घरके सूर्यका और विश्वके सूर्यका संबंध देखना चाहिये । आगेम्यके लिये तो इस घरके सूर्यका विश्वके साथ संबंध करना चाहिये अर्थात् जहासक हो सके बढातक बालक को घरमें बंद न रखते हुए विश्वसूर्यके लिये प्रकाशमें जाने : जाने : जानेका यत्न करना चाहिये, जिससे घरका सूर्य भी नारीय और बलवान बन सके ।

सूर्यकिरणोंसे विकिरता ।

आगे द्वितीय मंत्रमें कहा है कि (अंगे अंगे वीतिष्या सिद्धिप्राण) शरीरके प्रत्येक अंगमें तेजके अंशसे यह सूर्य रहता है, उनको (समस्यन्तः) समन करना चाहिये, अर्थात् समंश आदर करना चाहिये, सूर्यके तेजसे अपने तेजको बढाना चाहिये । जो लोग घरके अंधेरे बरतोंमें अपने आगरी बंद रखते हैं वे निरंतर होते हैं, वे जो लुनी इमामें घूमते हुए सूर्यप्रकाशसे अपना तेज बढाते हैं वे तेजस्वी होते जाते हैं ।

शरीरके प्रत्येक (पर्व) जोड़में यह अंश रहता है, इस सूर्यके अंशसे इस स्थानपर (प्रमाता) अपना अधिकार जमाया है । हर एक अवयवमें इसके (अंकात्) चिह्नको पहचानना चाहिये अं० (समंकात्) मिले जुले चिह्नोंकी भी परचासना चाहिये । जैसा आकाश तेजःप्रणे सूर्यका निजाल है, अन्य स्थानोंमें अन्य अंशोंसे है । यह सब जानना चाहिये । और जिस स्थानमें अनारोग्य या बीमारी हुई हो उस स्थानका आरोग्य सूर्य-प्रकाशका उचित रीतिसे प्रयोग करके प्राप्त करना चाहिये । सबके मंद सूर्यके प्रकाशमें लुनी आकाशसे सूर्य विष देवसे रहनेसे प्रायः नेत्ररोग दूर होजाते हैं । विशेष मंत्रांगोंके लिये विशेष सुक्तिसे सूर्य-किरणका प्रयोग करना चाहिये । विशेष अंगके लिये भी विशेष सुक्तिसे । सूर्यकिरणका प्रयोग करना होता है । माध्याह्न आरोग्यके लिये वह विशेष आयुष्य सूर्यकिरणोंसे तपानेमें भी बहुतवा कार्य है । जाता है । इस

सुक्तिमें केवल सूर्य किरणविकिरासे बहुतसे रोग दूर करना समभव है । यदि सहन हो सके इतने जग सूर्य प्रकाशमें नगा शरीर कुछ देरतक तपाया जाय तो भी सर्वसाधारण शरीर की नीरोगता बढ़ती है । शीतकालमें यह करना उत्तम है, परंतु गर्मीके दिनों और उष्ण देशोंमें विचारसे और सुक्तिसे ही इसका प्रयोग करना चाहिये । नहीं तो आरोग्यके स्थानपर अनारोग्य भी होना इसलिये यह सब अभ्यास सुक्तिसे हो बढाना चाहिये ।

तृतीय मंत्रमें (शिरीरयाः) शिरः, (कासः) छांभी, (पदः) शीर्षस्थानके रोग उक्त प्रकार इटानेकी सूचना दी है । (वातजाः) वात, (शुष्माः) पित्त, (अज्जनाः) कफके प्रकोपके कारण उत्पन्न हुए ये तथा अन्य रोग भी उक्त सुक्तिसे दूर करनेकी सूचना तृतीय मंत्रमें है । (पर्वतात् सचता) तथा पर्वतों पर रहकर (वनस्पतीन् सचता) उचित वनोपश्रियाका उपेक्षा करनेका भा उपदेश इसी मंत्रमें है । वनोपश्रियाका उपेक्षा करनेकी प्रकाशसे होता है, एक वृक्षदिक्को नीचे रहना और दूसरा शीर्ष ओषधियोंके रक्षादि उपयोग करना । पर्वतोंके उच्च शिखरोंपर निवास और वृक्षोंके नीचे बैठना उठना बड़ा आरोग्यदायक है, यह बातें हमने कई रोगिणोंपर सुक्तिसे अमलाई है और हमारे अनुमानसे बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है । पाठक भी इसके लाभ उठावें ।

चतुर्थ मंत्रमें शिर आदि उत्तमोंय तथा पाद आदि अधरोंय तापसे सब शरीरका स्वास्थ्य-पूर्वक रीतिसे प्राप्त करनेकी सूचना प्रार्थना मंत्रद्वारा दी है ।

सर्वसाधारण उपाय ।

इस सूत्रमें सर्व साधारणके लिये भी बड़ा बोध प्राप्त हो सका है । मुख्य बात यह है कि जो मंद शरीर सूर्यके किरणोंमें घूमने है अर्थात् अपने शरीरको सूर्यकिरणोंसे तपाने है उनको चर्म रोग, खांसी, दमा तथा शय आदि रोग होनेकी नहीं । ये सब रोग उनको होते हैं कि जो मंद शरीरपर सूर्यकिरण नहीं गते, अर्थात् मंद बंधोंमें बैठना होकर तब मंदगतिमें बैठते हैं । जो हमने बोध सैने वे इस सूत्रमें बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं । वेदमें इतिहृदये परवा नामही " सव " नाम है । यदि पाठक अपने घरको " सव " का कारण समझने तो वे उससे बड़ा अधिक देरतक रहने और सूर्यकिरणसे विशेषरूपसे आरोग्य प्राप्त कर सकेंगे ।

अन्तर्यामी ईश्वरको नमन ।

(१३)

[ऋषिः- भृगुवज्रिनाः । देवता-विद्युत्]

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनवित्तने । नमस्ते अस्त्ववमने येना दूदाशे अस्यसि ॥१॥

नमस्ते प्रवतो नपाद्यतस्तपः समूहमि । मृदया नस्तनूम्यो मयस्तोकेभ्यस्तुधि ॥२॥

प्रवतो नपाद्यन् एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हृतये तपुषे च कृष्णः ।

विष ते धाम परमं गुहा यत्समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३॥

यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इपुं कृष्णाना असनाय धृष्णम् ।

सा नो मृद विदधे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥४॥

अर्थ- (विद्युते ते) विशेष प्रकाशमान तुमको (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे । (स्तनवित्तने ते नमः) गडगडानेवाले तुमको नमस्कार होवे । (अवमने ते नमः अस्तु) ओंठे रुज तुमको नमस्कार होवे । (येना) जिसने तू (दूदाशे अस्त्यसि) दुःखदायीको दूर फैकता है ॥ १ ॥ है (प्रवतः नपात्) उच्चतासे न गिरानेवाले ! (ते नमः) तेरे लिये नमस्कार होवे । (यतः) क्योंकि तू (तपः समूहमि) तपसं इच्छा करता है । (नः तनूम्यः मृदय) हमारे शरीरोंको सुख दे और (तोकेभ्यः मयः कृधि) बच्चोंके लिये सुख प्रदान कर ॥ २ ॥ है (प्रवतः नपात्) उच्चतासे न गिरानेवाले । (तुभ्यं पूज नमः अस्तु) तुम्हारे लिये मैं नमस्कार होवे । (ते हृतये तपुषे च नमः कृष्णः) तेरे वज्र और तेजके लिये नमस्कार करते हैं । (यत् ते धामं) ओंठो स्थान (परमं गुहा) परम गुहा अर्थात् हृदयस्थी गुहामें है वह हम (विष) जानते हैं । उस (समुद्रे अंतः) समुद्रके अंदर (नाभिः निहितासि) तू नाभिस्थ रहा है ॥ ३ ॥ है (देवि देवी) (असनाय) शत्रुपर फैकनेके लिये (धृष्णं इपुं कृष्णाना) बलवान सुख बाग करनेवाले (विषे देवाः) सब देव (यां त्वा) जिस तुमको (अस्तनूम्य) प्रसन्न करते हैं, (तस्यै ते नमः अस्तु) उस तेरे लिये नमस्कार होवे । (सा) वह तू (विदधे गृणाना) तुझमें प्रशंसित होनेवाली (नः मृद) हमें सुख दे ॥ ४ ॥

भावार्थ- हे देवि ! ईश्वरी ! तू बिजली आदियें अपना तेज प्रकट करती है, मेघोंमें गर्जना कराती है और अपनी शक्तिसे ओले भी बरमाती है, इन सब बातोंसे तू हमारे सब दुःखोंको दूर कराती है, इसलिये तुझे हम सब प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥ है उच्चतासे न गिरानेवाली देवी ईश्वरी ! तू तपोमय जीवनको हमारे अंदर इच्छा करती है अर्थात् हमारे तपःशक्ति बढ़ाती है, उस तपसं हमें तथा हमारी संतानोंको सुखी कर, तेरे लिये प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥ है उच्चतासे न गिरानेवाली देवी ईश्वरी ! हम जानते हैं कि तू स्थान हृदयस्थी ओंठ गुहामें है, वहाके समुद्रके अंदर तू मय आभावरूप होकर रहती है, इसलिये तू तेज और तेरे दुष्ट विघातक शस्त्रास्त्र अथवा तेरी शक्तिके समुल्लह हम सिर झुकाते हैं ॥ ३ ॥ है देवी ईश्वरी ! शत्रुको दूर करनेके लिये शस्त्रास्त्र बनातेवाले सब तपस्विष्ठु लोग वहा तेरी भांति करते हैं इस कारण तुझमें प्रशंसित होनेवाली तू हमें सुख दे । हम सब तुझे प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

सूरत की देवता ।

इस सूक्तकी देवता "विद्युत्" है । यद्यपि विद्युत्का अर्थ मिट्टी है, और इस सूक्तका प्रारंभ मेघस्थानीय विद्युतके वर्णन

से ही हुआ है, तथापि विद्युत् का वर्णन करना मुख्य उद्देश्य इस सूक्तमें नहीं है । जिस प्रकार अन्धान्य सूक्तमें अग्नि आदि देवताओंके मिथसे परमात्माका वर्णन होता है, उसी प्रकार विद्युत् रूप की देवताके मिथसे ईश्वरका, जगन्माता, आदिमाता

देवोंके रूपमें, परमात्माका ही वर्णन यहाँ हुआ है, इस बातको स्पष्ट व्यक्त करनेवाले इसी सूक्तके निम्न मंत्रभाग यहाँ देखने योग्य हैं —

१ “प्रयतः न-पात्” — “प्रवत्” शब्दका अर्थ उष स्थान है । उष अवस्था, उद्यत भाव इस शब्दसे प्रकट होते हैं । उषतासे न गिरनेवाला यह “प्रवतो न-पात्” का आशय है । परमात्मा ही मनुष्यमात्रके उष अवस्थामें रहनेवाला और यहाँसे न गिरनेवाला है । (मंत्र २, १)

२ “ते परमं धाम गृह” — नेश परम धाम हृदय की शुद्धि है । हृदयमें आमाका निवास है, वही उमका परम पवित्र निवास-स्थान है, यह उपनिषद्वादिमें अनेक बार आगया है ।

३ “समुद्रे अन्तः नाभिः निदिवाऽमि ।” — उभी समुद्रमें मध्यभाग है । हृदय गुरुमें मानस सरोवर है, समुद्र है, विचारका अथवा भावनाओं का महासागर है । उभरी नाभि उसका आधार स्थान, वही आमा है । क्योंकि इस समुद्रकी सब लहरें उसकी ही प्रेरणासे अथवा शक्तिसे उठती हैं और उसी की शक्तिसे इस समुद्रमें शांति स्थापित होती है ।

४ “यो त्वां देवा अक्षजन्त विभे ।” — त्रिष जन्तुओंके सब देव प्रकट करते हैं । आमाका देवोद्गाता प्रकाशित होना बेहदमें अनंत स्थानोंमें स्पष्ट हुआ है । शरीरमें नेत्रादि अथ इंद्रियोंद्वारा आमाका प्रकाशन हो रहा है । यदि नेत्रादि इंद्रियाँ न हों, तो आमाका अस्तित्व भी ज्ञात नहीं हो सकेता । इस प्रकार सब इंद्रियादि देव शरीरमें आमाकी प्रकट करते हैं । विषमें सूर्यचंद्रादि देव परमात्माकी महिमा प्रकट कर रहे हैं । मनुष्य समाजमें सब विशाल पवित्रादी प्रकाश कर रहे हैं । इस प्रकार सर्वत्र देवोद्गाता आमा प्रकाशित होता है ।

इस सूक्तके परमात्माकी तैजस शक्तिवादी मुख्यतया वर्णन करना है । और वह वर्णन स्त्रीरूप देवोंके वर्णनद्वारा यहाँ किया है ।

जिस प्रकार मनुष्यका नेत्र देखता है, परंतु अपनी शक्तिसे वह देख नहीं सकता, किंतु हृदयस्थानीय आत्माकी शक्तिसे ही देख सकता है; इसी प्रकार अन्धान्त्र इंद्रियों आत्माकी शक्तिसे पेरित होकर ही अपना कार्य करता है । जैसी यह बात सतीमें है, उसी प्रकार जगतकी सूर्यादि देवताएँ तेज फैलाना आदि कार्य अपनी शक्तिसे नहीं कर सकतीं । विद्वम्बापी परमात्माकी शक्ति लेकर ही सूर्य प्रकाशना, विद्युत् चमकती और वज्र गड़ता है । इसलिये सूर्यराशत्र्य, विद्युत्की चमकाहटमें अथवा बाजुके वेगमें न केवल इन देवताओंकी शक्तियाँ प्रकट हो रही हैं, परंतु परमात्माकी ही शक्ति प्रकट हो रही है । यह भाव ध्यानमें रखकर यदि पाठक इस सूक्तका विचार करेंगे, तो उनको इस सूक्तमें विद्युत्की चमकाहटमें परमात्माका तैज फैल रहा है वही भाव प्रियत होना । इसी रीतिसे इन सूक्तका विचार करना चाहिये ।

प्रथम मंत्रमें विद्युत्की चमकाहट, मेघोंकी प्रचंड गर्जना, मेघोंसे पड़ती हुई अथवा जलकी छूटे आदिद्वारा परमात्माका प्रचंड कार्य देवता उचित है । इसीमें परमात्मा प्राणिमात्रके दुःख दूर करता है । छूटते अन्न और जल प्राप्त होनेके कारण प्राणियोंमें अनंत हँस दूर हो रहे हैं । यही परमात्माकी कृपा है ।

परमधाम ।

तृतीय मंत्रमें परमेश्वरके परम धामका पता दिया है । परमेश्वरका परम धाम हरएक के हृदयमें है, त्रितेयनः भक्तके हृदयमें ॥ है । परमेश्वरके भक्त ही उस धामको जानने हैं और वर्णन कर सकते हैं । कीन दूसरा उसको जान सकता है और वर्णन कर सकता है ? यही स्थान जानना और इसका अनुभव लेना मनुष्यका साध्य है ।

मनुष्य मनुष्यके अंदर गिर पड़ा है, इस समुद्र की लहरें यही मारी लहरा रही हैं, प्रबल वायु चल रहा है, धूबाघार मेघ बरस रहे हैं, बिजलियाँ चमक रही हैं, और वह मनुष्य ऐसे प्रशुब्ध समुद्रमें सहायताके लिये पुकार रहा है । उसका ख्याल है, कि सहायता बाहरसे आनेवाली है । यही मनुष्यका भ्रम है, यही अज्ञान है और यही कमजोरी है ।

यह तृतीय मंत्र स्पष्ट शब्दोंसे कह रहा है, कि उस प्रशुब्ध समुद्रका केन्द्र यही परमात्मा है और वह भक्तके हृदयमें विराजता है । हे भक्त ! यदि तू सबसुख इसकी सहायताके लिये पुकार रहा है तो अपने हृदयमेंही उसे हृदयकेका यत्न कर, यही उसका परम धाम है । और वहीही तू अपने बैभवसे प्रकाश रहा है ।

पाठको । आप यह ध्यानमें रखिये कि आपमेंसे हरएक के हृदयमें वह आत्मज्योति है । यही सब उन्नति को सहायक शक्ति है । आप उसे पकड़ लीजिये, तो आपकी उन्नति निःसंदेह हो जायगी । सब जगत् अदरते बड़ रहा है, बाहरसे नहीं । आपकी उन्नति ही यही नियम है ।

युद्धमें सहायता ।

युद्धके समय, शत्रुका हमला होनेके प्रसंगमें, वरके समयमें

इस परमात्माकी सहायता सब चाहते हैं । मरण, दुःख आदिके कारण मनुष्य परमात्माकी खोज करते हैं । इसीलिये बड़े समुत्पन्न दुःखको स्वीकारते हैं और अम्योंको छुड़ देते हैं । यही दुःखका महत्त्व है ।

चतुर्थ मंत्रमें कहा है, कि “सर्व देव उसी को प्रकट करते हैं ।” इसीका स्पष्टीकरण इसमें पूर्व किया जा चुका है । “युद्धमें अपनी पराजय या स्तुति प्रार्थना होती है” इसका भी कारण स्पष्टापूर्वक हमने देखा है । यह सब इसलिये करते हैं कि “शत्रुकी दूर भगवान्के लिये प्रबल शक्ति प्राप्त ॥” जो परमात्माके सबे भक्त होते हैं, या तो उनके समुत्पन्न कोई शत्रु नहीं उठर सकता, अथवा जो उनकी शत्रुता करता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है । अर्थात् परमेश्वर भक्तिही एक बड़ी मारी शक्ति है, जो संशय शत्रुओंका नाश कर सकती है ।

नमन ।

इस चार मंत्रोंके सूक्ष्ममें परमेश्वरको सात बार नमन किया है, अर्थात् यहांका अनेक बारका नमन विद्वत् कर रहा है, कि परमेश्वरकी सार्वभौम सत्ताके सामने सिर झुकाना, उससे सर्वत्र उपस्थित समस्तता, उसीसे सर्वतोपरी समस्तता मनुष्यकी उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है । उसको छोड़कर किसी दूसरेको नमन न करनेके संशयमें “तुभ्यं एव नमोऽस्तु” (मंत्र १) वह मंत्रभाष्य देखने योग्य है । “मैं तुमसे ही नमन करता हूँ” देरसे बिना किसी अन्वधी उपपत्ति में नहीं करता, दे ईश्वर । तेरे सामने ही मैं सिर झुकाता हूँ । मुझे अनुपरीत का और हतार्य कर । इस सूक्ष्ममें सर्वोत्कृष्ट उपपत्ति कही है, पाठक इसका उपयोग उपपत्ति के समय कर सकते हैं ।



कुलवधू-मूक्त

[भाषिः— भृगुहस्ताः । देवता-यमः]

(१४)

मर्गमस्या वर्षे आदिष्यति वृषादिष्व सज्जम् । महायुष्म इत् पर्वतो ज्योक् पिब्व्यात्ताम् ॥१॥
एषा ते राजन्मन्त्र्या वृषिर्नि धूतानां यम । सा मातृपुष्पनी गृहेऽप्यो आनुरयो पितुः ॥२॥
एषा मे कुत्रापि राजन्तामू ते पारं दपसि । ज्योक् पिब्व्यात्ताम् आ श्रीर्णः समोप्याव ॥३॥
अतिरक्तं ते मन्त्रेणा वदवर्षस्य गम्यस्य च । अन्तःक्रोशमिषं ज्ञामयोऽपि नद्यामि ते मर्गम् ॥४॥

अर्थ—(पृश्नाय अथि स्रजं हव) वृक्षसे जिस प्रकार फूलोंकी माला लेते हैं, उस प्रकार (अस्याः भगं ययः आदिपि) इस कन्याका ऐश्वर्य और तेज में स्वीकारता हूँ । (महासुप्तः पर्वतः हव) वहे जटवाले पर्वतके समान स्थितासे यह कन्या (पित्र्यु ज्योक् आस्यं) मातापिताके घर बहुत समयतक रहे ॥ १ ॥ हे (यम राजन्) नियमपालन करनेवाले स्वामिन् ! (एषा कन्या) यह कन्या (ते वधूः) तेरी वधू होकर (निभूयतां) व्यवहार करे । (अथो) अथवा (सा) वह माताके, भाईके (आयो) किंवा पिताके (गृहे बध्यताम्) घरमें रहे ॥ २ ॥ हे (राजन्) हे स्वामिन् ! (एषा) यह कन्या (ते कुल-या) तेरे कुलका पालन करनेवाली है । (तां) उसको (उ ते परिदधसि) तेरे लिये देते हैं । यह (ज्योक्) उस समयतक (पित्र्यु आस्यते) मातापिताके घरमें निवास करे (आ शीर्षः समोप्यात्) जबतक शिर न सजाया जाये ॥ ३ ॥ (आसितस्य) बंधन रहित, (कश्यपस्य) द्रष्टा (च) और (भायस्य) प्राण साधन करनेवाले (ते) तेरे (प्रहृगा) ज्ञानके साथ मैं [ते भगं अथि नमामि] तेरे ऐश्वर्यको बांधता हूँ, [जामयः नंतः कौशं हव] ब्रियौ अपनी पितारीची जैसे माँघती हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ [१] वृक्षसे फूल और पत्ते बिछाल कर जैसी माला बनाकर लेंग पहनते हैं उसी प्रकार इस कन्याका सौंदर्य और तेज में स्वीकारता हूँ और उसने अपने आपको सजाना चाइता हूँ । जिस प्रकार बड़ी जटवाला पर्वत अपने ही आधारपर स्थिर रहता है; उस प्रकार कन्या भी अपने मातापिताओंके घरमें निभर होकर देरतक सुरक्षित रहे ॥ १ ॥ [२] हे नियमपालक पति ! यह हमारी कन्या तेरी वधू होकर नियमपूर्वक व्यवहार करे । जिस समय वह आपके घर न रहेगी उस समय वह पिता, माता अथवा भाईके घर रहे, परंतु किसी अन्यके घर जाकर न रहे ॥ २ ॥ हे पति ! यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसको तेरे लिये हम समर्पण करते हैं । जबतक इसका शिर सजाने का समय न आवे तबतक यह मातापिताके घरमें रहे ॥ ३ ॥ बंधनरहित, द्रष्टा और प्राणोंको स्वाधीन करनेवाले तेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके भाग्यका संबंध मैं करता हूँ । जिस प्रकार ब्रियौ अपने जेवर सेवकमें बंद रहती हैं, उस प्रकार इसका भाग्य सुरक्षित रहे ॥ ४ ॥

पहला प्रस्ताव ।

इस सूक्तमें चार मंत्र हैं । पहले मंत्रमें मायी पतिका प्रस्तावरूप भाषण है । पति कन्याके रूपको और तेजको वर्णन करता है और उस तेजका स्वीकार करना चाहता है । इस विषयमें मंत्रका रूपक अतिस्पष्ट है—

“वृक्षनस्त्वित्यौसे पत्ते फूल और मंजरियाँ लेकर लोहा माला बनाते हैं, और उस मालाको गलेमें धारण करते हैं । इस प्रकार यह कन्या सुगंधित फूलोंवाली वस्त्री है, इसके फूल और पत्ते (मुखकमल और हृत्पत्रछव) अथवा इसका सौंदर्य और तेज में लेता हूँ और उससे मैं सुबोधित होना चाहता हूँ । नर्पात् मैं इस कन्याके साथ गृहस्थाश्रम करनेकी इच्छा करता हूँ । जैसा पर्वत अपने विद्याल आधारपर रहता है, उस प्रकार यह कन्या अपने मातापिताओंके सुदृढ आधार-पर रहे । नर्पात् मातापिताओंसे सुशिक्षा पाकर यह कन्या सुयोग्य बने और पश्चात् मेरे (पतिके) घर आजाये ।”

यह भाव प्रथम मंत्रका है । इसमें मायी पतिका प्रथम प्रस्ताव है । मायी पति कन्याका सौंदर्य और तेज वर्णन करता है और

उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट करता है । नर्पात् मायी पति कन्याकी प्रार्थना उसके माता पिताके पास करता है । और साथ यह भी कहता है कि, कन्या कुछ समयतक माता-पिताके घर ही रहे नर्पात् योग्य समय आनेतक कन्या माता-पिताके घर रहे, तत्पश्चात् पतिके घर आवे । योग्य समय की मर्यादा आगे तृतीय मंत्रमें कही जायगी ।

इस मंत्रके विचारसे पता चलता है कि, पुत्र्य अपनी सद्गुणव्यवहारिणी को पसंद करता है । पुत्र्य अपनी दम्पि के अनुसार कन्याको चुनता है और अपना मानस कन्दाके मातापिताओंसे निवेदन करता है । कन्याके मातापिता इस प्रस्ताव का विचार करते हैं और मायी पतिकी योग्य उत्तर देते हैं ।

परंतु भावी पति और कन्याके मातापिता या पालकोंका ही भाग है । इससे अनुमान होता है कि, कन्याको उतना अधिकार नहीं है, कि जितना पतिको है ।

तसि मंत्रमें कन्याके पालक कहते हैं कि, हम [ते तां परि दृष्टमि] तेरेलिये इस कन्याको समर्पण करते हैं ।” वह मंत्रभाग स्पष्ट बता रहा है कि, कन्या इस विषयमें परतंत्र है । मंत्रमें दो बार आया है कि “कन्या पिता माता अथवा भाईके घरमें रहे” अथवा आगे जाकर हम कह सकते हैं कि विवाह होनेपर वह पतिके घर रहे । परन्तु यह अभी स्वतन्त्रतासे न रहे ।

जिस प्रकार दूधका आधार लसही जड़े हैं, अथवा पर्वतका आधार उसकी अति विस्तृत भुमिपाद है, उसी प्रकार कन्याका पहला आधार मातृपिता अथवा भाई है, और पश्चात्तका आधार पति ही है । इससे भिन्न किसी अन्यथा आधार को लेना उचित नहीं है ।

अर्थ यह लेना योग्य है ।) राज्ञा शब्दका अर्थ “ प्रकृतिवा रंजन करनेवाला । ” गृहस्थधर्ममें धर्मपत्नी पुरुष की प्रकृति ही है । उस धर्मपत्नीका संतोष बढ़ानेवाला ।

३ असित — (अ-सितः अनन्तः) बंधनरहित । अर्थात् जिसका मन स्वतंत्रताका चाहनेवाला है । गुलामीके भाव जिसके मनमें नहीं है ।

४ कश्यपः—(पश्यकः) देखनेवाला । अपनी परिस्थितिको उत्तम रीतिसे जाननेवाला और अपने कर्तव्यको ठीक प्रकार समझनेवाला ।

५ गयः—(प्रागयल्लुक्तः) प्रागाम्यादि योगसाधनद्वारा जिसने अपने प्राणोंका बल बढ़ाया है ।

६ ब्रह्मग युक्तः— ज्ञानसे युक्त । ज्ञानी ।

ये छः शब्द इस सूक्तमें पतिके गुणधर्म बता रहे हैं ।

पाठक वर परीक्षाके विषयमें इन बातोंका ध्यान रखें । अब वधू परीक्षा करनेके नियम देखिये—

वधू-परीक्षा ।

इस सूक्तमें वधूपरीक्षाके मिश्रलिखित मंत्र मांग हैं—

१ कन्या— [कननीया] कन्य ऐसी हो, कि जिसकी देखनेसे मनमें प्रेम उत्पन्न हो । रूप तेज, अवयवोंका सुन्दरता, रक्कसता, शान आदि सब बातें, जिससे देखनेवाले के मनमें प्रेम उत्पन्न होता हो, इस कन्येमें जाना जाता है ।

२ श्वर— [उद्यते पतिगृहे] जो पतिके घर जाकर रहना पड़े करती है । जो पतिके घरको ही अपना सारा घर मानती है ।

३ कुलपा-कुलका पालन करनेवाली । पितृके तथा पति के कुलीन सभाशामिका पालन करनेवाली । जो अपने सदाचारसे दोनों कुलोंका पक्ष बढ़ाती है ।

४ से [वल्लुः] भगवत्—धर्मपत्नी ऐसी होगी चाहिये, कि जो पतिका भाग बढ़ावे । जिससे पतिको धन्यता अनुभव हो ।

५ पितृपु आत्मात्—विवाहके पूर्व भयवा आपरकात्मने मातापिता भयवा मां, इनके घरमें रहनेवाली और विवाहके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली । किता अन्धके घर जाकर रहनेकी इच्छा न करनेवाली कन्या होनी चाहिये ।

६ वृक्षात् छद्-इसके पुष्पमालाके समान कन्या हो, पितृके कुलकी वृक्षाकी पुष्पमालारूप कन्या सुगन्धित करे ।

ये छ. मंत्रमांग कन्याकी परीक्षा करनेके नियम बता रहे हैं । पाठक इनका उत्तम विचार करें और इन उपदेशोंके अनुकूल कन्याकी परीक्षा करें ।

कन्याके गुणधर्म ।

कन्या मुख्य तथा तेजस्विनी हो, पतिके घर प्रेमपूर्वक रहनेवाली हो, दोनों कुलोंका पक्ष अपने सदाचरणसे बढ़ानेवाली हो, पतिका भाग्य बढ़ानेवाली, धीमन्के पूर्व पितृके घरमें तथा जीवन प्राप्त होनेके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली, तथा पुष्पमालाके समान अपने कुलकी शोभा बढ़ानेवाली हो । इस प्रकारकी जो सुलक्षण कन्या हो उसकोही पसंद करना योग्य है ।

पुत्र जो कीटी, निस्तेज, दुर्बल, पतिके घर जानेकी इच्छा न करनेवाली, दुष्टाचारी, पतिके भागमें पड़नेवाली, तथा

दोषयुक्त हो, का कन्या विवाहके लिये योग्य नहीं है ।

मंगनीका समय ।

इस सूक्तसे विवाह के समयका ठीक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि उसका शापक कोई प्रमाण नहीं देता । कन्या सिरसजानेके समयके पूर्व माताके घर देरतक रहे । इस तृतीय मन्त्रके कथनसे मंगनीका समय अनुमान होनेके पूर्व कुछ वर्ष-अधिकसे अधिक एक से वर्ष-तेरा संभव है । तथापि वधूपरीक्षाके जो छः लक्षण ऊपर बताये हैं, वे लक्षण हास्यतया व्यक्त होनेके लिये शीघ्र दशाकी प्राप्तिही अर्थन आवश्यका है । "पतिके घर जानेकी कन्या" जिस अवस्थामें कन्याके मनमें आती है वह अवस्था मंगनीका प्रतीत होती है । ये छ शब्द अच्छी, प्रौढ, प्रसन्न, करुण उपवर, कन्याकी अवस्था बना रहे हैं । पाठक सब कर्तव्योंका विचार अच्छी प्रकार करेंगे, तो उनको कन्या की निरा आशुमें मंगनी होगी चाहिये इस विषयत निश्चय हो सकता है ।

आगे पति मंगनी करे और कन्याके माता पिता पूर्वोक्त लक्षणोंका खूब विचार करके भावी पतिके प्रस्तावका स्वीकार या अस्वीकार करें । इस सूक्तमें दूरेके मातापिताको तथा कन्याके अपना मत देनेका अधिकार है ऐसा माननेके लिये एक भी प्रमाण नहीं है । यह बात यदि किसी अन्य सूक्तमें भागे मिल जायगी, तो उस समय ही जानवी ।

सिरकी सजावट ।

तृतीय मंत्रमें कहा है "उद्योत् पितृशालाया मा सीमाः समोन्म्यात् ।" (देरतक मातापिताके घरमें कन्या रहे, जबतक सिरसजानेका समय आजावे ।) यहां एक बात कहना आवश्यक है, कि जिन समय स्त्री ऋतुमती गति है, उस समय उसको "पुष्पवती" कहते हैं । पुष्पवतीका अर्थ कुलोंके अपने आपको सजाने योग्य । प्रथम (जात) प्रथम ऋतु-प्राप्ति भयवा प्रथम पुष्पवती होने । उसका पूरा ज्ञान सदाकी तथा विशेषतः उसका मित्र होने से सजानेकी प्रथा भारतीयमें इस समय से सी है । मैसूर और मराठों और तो पहले यन्त्रपालनके प्रसंगके लिये मैसूरों द्वारा ही हून् इस पुष्पवती स्त्रीको सजावट के लिये लाये जाते हैं । मुंभमें भी कई जातिवासे वा प्रथा है । अन्य जातिवसे कम है, परंतु शिममें कुछ पारनेवाला रिवाज इस ऋतुप्राप्तिके समयके लिये विशेष है । यह रिवाज इस ऋतुप्राप्तिके समयके लिये विशेष है । यह रिवाज प्रतिदिन कम हो रहा है । एक अनन्तरात् कारण और कुछ बलाहके अभाव के कारण यह रिवाज मूल हो रहा है ।

धनी लोग इस प्रसंगके लिये सोने और रत्नोंके भी फूल बनाते हैं और पुष्पवती स्त्रीके चतुर्थ दिनमें उसका शिर बहुत सजाते हैं । जिन प्रांतोंमें घूंघट निकलनेका रिवाज है, उन प्रांतोंमें यह रिवाज कम है ऐसा हमारा ख्याल है, परंतु सच्ची बात बड़ा के लोग ही जान सकते हैं । इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि घूंघटकी प्रथा अवैदिक कारणोंसे हमारे समाजमें घुस गई है ।

मंगनीके पश्चात् विवाह ।

इस सूक्तके देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, मंगनीके पश्चात् विवाह का समय बहुत दूर का नहीं है । प्रथम मंत्रमें घरसे पहला प्रस्ताव अवधौत् मंगनीका प्रस्ताव हुआ है । और द्वितीय तथा तृतीय मंत्रमें ही कन्याके अर्पण का विषय आगया है । देखिये—

१ पृथा कन्या ते वधूः निधूयताम्—यह हमारी कन्या तेरी पत्नी बनकर निःशेष व्यवहार करे । तथा—

२ पृथा [कन्या] से कुलपा, तां स से परिदृष्टसि—

यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसलिये उसको तेरे लिये हम प्रदान करते हैं ।

३ ते भगं अपिनद्यामि—तेरा भाग्य [इस कन्या के साथ] बांघता हूँ, अर्थात् इससे तू अलग न हो ।

ये मंत्रमात्र स्पष्ट बता रहे हैं कि मंगनीका स्वीकार होनेके पश्चात् शीघ्र ही विवाहका समय होता है । यद्यपि इसमें समय का साक्षात् उल्लेख नहीं है, तथापि [१] मंगनी, [२] कन्यादान की संभति, [३] शिर सजानेके समयतक अर्थात् पुष्पवती होनेतक कन्याके पितृघरमें निवास का विधान स्पष्ट बता रहा है, कि मंगनी के पश्चात् विवाह होनेके बाद क्रतुमती और पुष्पवती होनेके मंतर कन्याका पातेके घर निवास होनेका क्रम दिखाई देता है । पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें । यह विषय अन्यान्य सूक्तोंके साथ संबंधित है, इसलिये इस विवाह-प्रकरणके सूक्त जहां जहां आवेंगे वहां वहां इसके साथ संबंध देसकर ही सब बातोंका निर्णय होगा । पाठक भी इस विषयमें अपने विचारों की सहायता देंगे, तो अधिक निर्दोष निधन होना संभव है ।

संगठन-महायज्ञ-सूक्त ।

[ऋषिः-अथर्व । देवता-सिंधुः]

(१५)

सं सं संवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पृथ्विणः ।

इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुपन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि

॥१॥

इहैप हवुमा यात म इह संस्रावणा जुतेम वर्धयथा गिरः ।

इहेतु सर्वो यः पृथुरस्मिन् तिष्ठतु या रुचिः ॥२॥

ये नृदिनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमर्षिताः । तेभिर्मै सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामासि ॥३॥

ये मर्षिपः संस्रवन्ति शीरस्य चोदकस्य च । तेभिर्मै सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामासि ॥४॥

अर्थ— [सिंधवः] नदिनां [मं ॥ संवन्तु] उत्तम रीति से मिलकर बढ़ती रहें, [वाताः सं] वायु उत्तम रीतिसे मिलकर बढ़ते रहें, [पृथ्विण सं] पृथ्वी भी उत्तम रीतिसे मिलकर बढ़ते रहें । इसी प्रकार (प्रदिवः) उत्तम दिग्गज (मे इमं यज्ञं) मेरे इस यज्ञके (जुपन्तां) सेवन करें, क्योंकि मैं (संस्राव्येण हविषा) संगठनके अर्पणके (नृदिनां) दान कर रहा हूँ ॥ १ ॥ (इह यज्ञं) यहाँ ही [मे वर्धं] मेरे यज्ञके प्रति (आयात्र) आओ

(उत) और हे (संस्त्रावणाः) संगठन करनेवाले [गिरः] वक्ताओं । [हमें वर्षयत] इस संगठनको बढ़ाओ ।
[यः पशुः] जो सब पशुभाव है वह (इह पशु) यहाँ आवे और (भस्मिन्) इसमें (या रायिः) जो संपाति है, वह
(विष्टतु) रहे ॥ २ ॥ (नदीनां) नदियोंके जो (अक्षिताः उत्सासः) अक्षय स्रोत इस (सद्रं) संगठन स्थानमें (संस्त्रवन्ति)
बढ़ रहे हैं, (तेभिः मे सर्वैः संस्त्रावैः) उन मेरे सब स्रोतोंसे हम सब (धनं) धन (संस्त्राययामसि) इकट्ठा करते हैं ॥ ३ ॥
(ये) जो (सर्पिणः) धीकी (क्षीरस्य) दूधकी (च उदकस्य) और जलकी धाराएँ (संस्त्रवन्ति) बढ़ रही हैं, (तेभिः मे
सर्वैः संस्त्रावैः) उन सब धाराओंसे हम (धनं संस्त्राययामसि) धन इकट्ठा करते हैं ॥ ४ ॥

• आचार्य-नदियाँ मिलकर बहती हैं, बागु मिलकर बहते हैं, पक्षी भी मिलकर चहते हैं, उस प्रकार दिव्य जन भी इस मेरे
यज्ञमें मिल जुलकर संमिश्रित हों, क्योंकि मैं संगठनके बढ़ानेवाले अर्पणसे ही यह संगठनका महायज्ञ कर रहा हूँ ॥ १ ॥
धींधे मेरे इस संगठनके महायज्ञमें आजाओ और हे संगठनके साधक वक्ता लोगो ! तुम अपने उत्तम संगठन बढ़ानेवाले वस्तुओंसे
इस संगठन महायज्ञको फैला दो । जो हम सबमें पशुभाव हों, वह यहाँ इस यज्ञमें आवे और हम सबमें धन्यताका भाव विरचालतक
निवास करे ॥ २ ॥ जो नदियोंके अक्षय स्रोत इस संगठन महायज्ञमें बढ़ रहे हैं उन सब स्रोतोंसे हम अपना धन संगठन-
द्वारा बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥ क्या घी, क्या दूध और क्या जलकी जो धाराएँ हमारे पास बढ़ रही हैं, उन सब धाराओंसे हम
अपना धन इस संगठनद्वारा बढ़ाते हैं ॥ ४ ॥

संगठनसे शक्तिकी वृद्धि ।

यह संगठन महायज्ञका सूत्र है । इसके प्रथम अंशमें
संगठनसे शक्ति बढ़नेका वर्णन है, यह संगठन करनेवालोंको देखना
और उसपर खूब विचार करना चाहिये । देखिये—

१ सिंघवः—नदियाँ । जो जल बहती हैं उसको स्रोत
कहते हैं । इस प्रकारके स्रोतों और हजारों स्रोत अब इकट्ठे
होते हैं और अपना भेदभाव छोड़कर एकरूप होकर बहते हैं,
सब उसका नाम "नदी" होता है । नदी भी जिस समय महा-
पूरसे बहती है, उस समय विविध छोटे स्रोतोंके एकरूप होकर
बहनेके कारण जो महाशक्ति प्रयत्न होती है, वह अपूर्व ही शक्ति
है । यह नदी इस समय बड़े बड़े यज्ञोंकी सहाय देती है, जो
उसके सामने आजाते हैं उनको भी अपने साथ पहा देती है ।
बड़े यज्ञ, बड़े मकान, बड़े पक्षी भी मदानदीके वेगके सामने
द्रुष्ट हो जाते हैं । यह वेग कहाँसे आता है ?

पाठक विचार करेंगे तो पता लग जायगा कि यह वेग छोटे
स्रोतमें नहीं होता, परंतु जब अनंत छोटे स्रोत एकरूप होकर
और अपना भेदभाव मटकर एकरूपसे बहने लगते हैं; अर्थात्
अनंत छोटे स्रोत अपना संगठन करते हैं, तभी उनमें वह
अभूतपूर्व शक्ति उत्पन्न होती है । इस प्रकार नदियाँ मनुष्योंकी
"संगठन द्वारा अपनी शक्ति बढ़ानेका उपदेश" दे रही हैं ।

२ पायः—बागु भी इसी प्रकार मनुष्योंको संगठनक
उपदेश दे रहे हैं । छोटे छोटे बागु जिस समय बहते हैं उस

समय वृक्षके पत्ते भी नदी हिलते, परंतु बड़ी सब एक हीकर
प्रचंड वेगमें जब बहने लगते हैं तब महाशक्ति दृष्ट जाते हैं और
मनुष्य भी डर जाते हैं । पाठक इन संज्ञावाचोंसे भी संगठन-
के बलका उपदेश ले सकते हैं । इस प्रकार बागु भी संगठनका
उपदेश मनुष्योंको दे रहा है ।

३ पक्षी—पक्षी भी संगठन करते हैं । जब एकएक पक्षी
होता है तो उसको दूसरा कोई भी मार सकता है, परंतु जब
सैकड़ों और हजारों पक्षियोंएक कलापमें रहकर अपना
संगठन करती हैं, तब उनकी शक्ति बड़ी भारी होती है ।
इस प्रकारके पक्षियोंके कलाप बड़े बड़े शेतोंका धान अन्य
समयमें प्राप्त करके खा जाते हैं । यह संगठनका सामर्थ्य पाठक
देखें और अपना संघ बनाकर अपना ऐश्वर्य बसायें । पक्षी यह
उपदेश मनुष्योंको अपने आचरणसे दे रहे हैं ।

इस प्रकार पहिले अंशमें ये तीन उदाहरण मनुष्योंके संघुष
रखकर संगठनका महत्व बताया है । यदि पाठक इन
उदाहरणोंका उपाय मनन करेंगे, तो उनको पता लग जायगा
कि अपना संगठन किस प्रकार किया जाय ।

यज्ञमें संगठिकरण ।

"यज्ञमें संगठन होय ही है । कोई यज्ञ ऐसा नहीं है कि
जिसमें संगठिकरण न हो । दहका मुख्य अर्थ संगठन ही है ।
प्रथम अंशके श्रितोपायमें इसीसे कहा है, कि नदियों,
बागुओंमें और पक्षियोंमें संगठनकी शक्ति अनुसर करके उप-
कार करने संगठन करनेके उद्देश्यसे हमारे समामने अर्थात्

हमारे देश, जाति या राष्ट्रके लोग, इस संगठन महायज्ञमें सम्मिलित हों। एक स्थानपर जमा होना पहिली सीढ़ी है। इसके पश्चात् परस्पर समर्पण करनेसे संगठनकी शक्ति बढ़ने लगती है। हवनमें घात प्रकारकी समिधाएँ एकत्रित होती हैं और अग्निद्वारा प्रकाश करती हैं। यदि एक एक समिधा अलग होगी तो अग्नि बुझ जायगा। इसी प्रकार जातिके सब लोग संगठित होनेसे उस जाति का वंश चारों दिशाओंमें फैलता है, परन्तु जिस जातिमें एकता नहीं होती, उसकी दिन प्रति दिन गिरावट होती जाती है। इससे यहाँ स्पष्ट हुआ कि संगठन करनेवाले लोगोंमें परस्परके लिये आत्मसमर्पण का आवश्यक चाहिये।

इस प्रकार प्रथम मंत्रने संगठन करनेके मूल सिद्धान्तोंका उक्तम उपदेश दिया है।

संगठनका प्रचार।

“सब लोग यहा आजाय, उनकी एक परिषद् बने और संगठन बढानेवाले उपाय बक्ता अपने ऐक्यभाव बढानेवाले बन्धुत्वमे इस संगठन महायज्ञका फैलाव करें।” यह द्वितीय मंत्रके पूर्वापरा भाव है।

सभा, परिषद्, महासभा आदि द्वारा जातियोंका संगठन करनेकी रीति इस मंत्रार्थमें कही है। सब लोग इसका महत्त्व जानते ही हैं। भागे जाकर इसी द्वितीय मंत्रमें एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह अवश्य ध्यानसे देखने योग्य है—

पशुभावका यज्ञ।

“जो सब पशुभाव हम सबमें हों वह इस यज्ञमें आजावे, और यही रहे अर्थात् फिर हमारे साथ वह पशुभाव न रहे।” पशुभावकी प्रधानता जिन मनुष्योंमें होती है, उनमें ही आपसके झगडे होते हैं। यदि पशुभाव संगठनके लिये दूर किया जाय और मनुष्यत्व का भाव बढ़ाया जाय, तो आपसके झगडे नहीं होंगे। इसलिये पशुभाव की यज्ञमें समाप्ति करनेकी सूचना इस द्वितीय मंत्रके तृतीय चरणमें दी है और संगठनके लिये

बहु अत्यंत आवश्यक है। इसके बिना कोई संगठन हो ही नहीं सकता।

पशुभाव छोड़नेका फल।

पशुभाव छोड़ने और मनुष्यत्वका विकास करनेसे तथा संगठनसे अपनी शक्ति बढ़ानेसे जो फल होता है उसका वर्णन द्वितीय मंत्रके चतुर्थ चरणमें किया है—

“जो धन है वह इस हमारे समाजमें स्थिर रहे।” संगठन का यही परिणाम होता है। जिससे मनुष्य धन्य होता है उसका नाम धन है। मनुष्यको धन्य बनानेवाले सब धन मनुष्यको अपने संगठन करनेके पश्चात् ही प्राप्त हो सकते हैं। इस द्वितीय मंत्रमें संगठनके नियम बताये हैं, वे ये हैं—

- १ एक स्थानपर सम्मिलित होना, समा करना,
- २ उचित वक्ता जनताको संगठनका महत्त्व समझा देवे,
- ३ अपने अन्दरका पशुभाव छोड़कर, पशुभावसे मुक्त होकर, लोग वापस जाय, सब लोग मनुष्य बनकर परस्पर बर्ताव करें।

इन बातोंके करनेसे संगठन होना संभवनीय है। इस प्रकार जो लोग संगठन करेंगे, वे जगत्में धन्य हो जायेंगे।

तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें फिर नदियोंके और जलोंके स्रोतों का वर्णन आया है, जो पूर्वोक्त रीतिसे एकताका उपदेश पुनः पुनः कर रहा है। संगठन करनेवालोंको घी, दूध दही आदि पदार्थ भरपूर मिल सकते हैं, मानो उनमें इन पदार्थोंकी मदद ही बहेगी। इसलिये संगठन करना मनुष्योंकी उपासिका एक मात्र प्रधान धारण है।

इस कारण तृतीय और चतुर्थ मंत्रोंके उत्तरार्धमें कहा है, कि “इन संप्रति प्रयत्नोंसे हम अपना धन बढ़ाते हैं।” संप्रति प्रयत्न ही यज्ञ, धन और नाम बढ़ता है।

आशा है कि पाठक इस सूचना अधिक विचार करेंगे और संगठनद्वारा अपनी पुढेपाय शक्ति बढ़ाकर अपना यज्ञ चारों दिशाओंमें फैलायेंगे।

चोर-नाशन-सूक्त ।

[श्रापि-चातनः । देवताः अग्निः, इन्द्रः, वरुणः]

(१६)

येऽमाशस्यां३ रात्रिमुदस्थुर्वाजमत्त्रिणः । अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्युमार्धं व्रवत् ॥ १ ॥
सीतायाध्याह्नं वरुणः सीतांयाधिरुपां वति । सीतं म इन्द्रः प्रायच्छत्तदुह्म यातुचातनम् ॥ २ ॥
इदं विष्कन्धं सहस्र इदं चाघते अस्त्रिणः । अनेन त्रिधा ससहे या ज्ञातानि पिशाच्याः ॥ ३ ॥
यदि नो गां हंसि यद्यश्नं यदि पूरुषम् । तं त्वा सीसेन विष्पामो यथा नोऽमो अवीरहा ॥ ४ ॥

अर्थ—(ये अग्निगः) जो बाहु चोर (अमाशस्यां रात्री) अमावस्य की रात्रिके समय हमारे (प्रातः) मनुष्य (उदस्थुः) हमला करते हैं, उस विषयमें (यातुहा सः तुरीयः अग्निः) चोरी का नाशक वह अनुर्थ अग्नि (अस्मभ्यं) हमें (अग्निव्रवत्) सूचना दे ॥ १ ॥ वरुणने सीतेके विषयमें (अश्याह्नं) कहा है । अग्नि सीनेको (उपावति) रक्षक कहता है । इन्द्रने तो (मे) मुझे सीता (प्रायच्छत्) दिया है । दे (अंग) । यव । (सत् यातुचातनम्) यह बाहु हटानेवाला है ॥ २ ॥ (इदं) यह शीसा (विष्कन्धं) उड़ाव करनेवालोंकी (सहस्र) इशारा है । यह सीसा (अग्निगः) बाहुओंकी (चाघते) पीटा देता है । (अनेन) इससे (पिशाच्या या त्रिधा ज्ञातानि) पिशाचों की जो जातिग है, उनसे (ससहे) मैं हटाऊ हू ॥ ३ ॥ (यदि नः गां हंसि) यदि हमारी गायको लूटारता है, (यदि यश्नं) यदि घोड़ेकी और (यदि पूरुषं) यदि मनुष्यको मारता है (तं त्वा) तो उस वृत्तको (सीसेन विष्पामः) सीसे से हम बंधते हैं, (यथा) जिससे तू (नः) अ-वीर-हा नशः) हमारे वीरोंका नाश करनेवाला न होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—अमावास्या की अंधेरी रात्रिके समय जो बाहु हमारे सघर हमला करते हैं, उस विषयमें हमें ज्ञानसे उपदेश मिला है ॥ १ ॥ जलके शक तथा उपदेशक सीनेकी गोली का प्रयोग करनेको प्रेरणा देते हैं । शर धारण तो सीतेकी गोली हमें दे रही है । हे बंधुओं । यह बाहुओंको हटानेवाली है ॥ २ ॥ यह सीतेकी गोली बाहुओंको हटाती है और प्रतिबंध करनेवालोंको दूर करती है । इससे तू वनेवाली अब जानियीं कि दूर भगवा जाता है ॥ ३ ॥ हे चोर । यदि तू हमारी गाय, हमारा घोड़ा अथवा मनुष्यका वध करेगा, तो तुझपर हम गोली बलावेगे, जिससे तू हमारा नाश करनेके लिये फिर जीवित न रह सकेगा ॥ ४ ॥

सीसेकी गोली ।

इस सूक्तमें सीतेकी गोली का प्रयोग बाहुओंपर करनेको कहा है । सूक्तमें केवल “सीव” शब्द है, गो की च बाधक शब्द नहीं है । तथापि “सीसेन विष्पामः” (सीतेके द्वारा बंध करेगे) इस प्रयोगसे सीव शब्दसे सीतेकी गोली का भाव समझना उचित है । केवल सीसेका उपयोग बाहुओंके नाशमें किंवा अन्य प्रकार संभवनीय नहीं दीखता है । (विष्पामः) बंध करनेका भाव इसमें बांधनासीके समान निशाना मारना है । आश्चर्य सीतेकी गोली बंदूकी जलमें रखकर दूरसे चनुको सेधते हैं । जान भी धनुष्यारणे दूरसे ही निशाने पर चला जाता है । तापर्यं ज्ञान मंत्रीके शब्द बना रहे हैं कि सीतेकी

गोलीसे दूरसे ही बाहुओंका बंध करना चाहिये । माली छोटके समान यह वाक्य नहीं प्रयोग होता है इतना ही यहां बताया है ।

शत्रु ।

“अग्निः, यातु” आदि शब्दोंके अर्थ सवय-शत्रुके विरुद्धमें किये हैं, पाठक यहां हो देखें । वे सब शब्द बाहु चोर छेदे अर्थात् अशत्रुके शत्रुओंके नाशक हैं । इनमें मित्र मित्र शत्रुओंके लिये पूर्व विचार नहीं हुआ उक्त विचार यहां करते हैं—

१ विष्कन्ध- अग्निबंध करनेवाला, उपावति रक्षक करनेवाला, सहस्रक शत्रुमें मित्र करनेवाला ।

२ पिशाच, पिशाची-रक्त पीनेवाले और कच्चा मांस खानेवाले मूर लोग, जो मनुष्यका मांस भी खाते हैं ।

ये सब तथा (अग्नि) भूके दाकू, (यातु) चोर ये सब समाजके शत्रु हैं । इनको उपदेशद्वारा सुधारनेका विषय पूर्व भाष्ये हुए (कां० १, सू० ७, ८) धर्मप्रचारके सूक्तोंमें आशुका है । जो नहीं सुधरते उनको दंडके लिये क्षत्रियोंके आधीन करनेकी आज्ञा भी सप्तम सूक्तके अंतमें दी है । उपदेश और दण्ड इन दो उपायोंसे जो नहीं सुधरते उनपर सत्सिद्धी गोलीका प्रयोग करनेका विधान इस सूक्तमें आया है । अपने संगठन करनेका उपदेश पूर्व सूक्तमें करनेके पश्चात् इस सूक्तमें शत्रुपर गोली चलानेकी आज्ञा है यह विशेष ध्यानसे देखना चाहिये । जिनका आपसमें उन्मत्त संगठन नहीं है यदि ऐसे लोग शत्रुपर हमला करेंगे, तो संभव है कि वे स्वयं नष्टभट हो जायेंगे । इसलिये " प्रथम अपना संगठन और पश्चात् शत्रुपर बढाई " यह निश्चय ध्यानमें रखना चाहिये ।

आर्य वीर ।

अग्नि इन्द्र आदिके विषयमें सूक्त सातके प्रसंगमें वर्णन आया है । (अग्नि) जानो उपदेशक, (इन्द्र) शरवीर ये आर्यवीर हैं यह पहिले बताया है । इन दो शब्दोंसे ब्राह्मण और क्षत्रियोंका बोध होता है यह बात पहिले बताया जा चुकी है ।

(यदा तृतीय अनुवाक और पहिला प्रपाठक भी समाप्त हुआ ।)

इस सूक्तमें " वरुण " शब्द आया है । वरुण समुद्र अथवा जलका अधिपति वेदमें तथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है । जलस्थान, नदी आदि तथा समुद्र परसे जो शत्रुओंके हमले होते हैं उनसे रक्षा करनेका यह ओहदेदार है । जिस प्रकार " अग्नि " शब्द ब्राह्मणत्ववाचक, " इन्द्र " शब्द क्षत्रधर्मका बोधक है उसी प्रकार " वरुण " शब्द जलमार्गसे आनेवाले और देशांतरोंमें व्यापार करनेवाले वैद्योंका अपना वैश्यत्वा सूचक वहा प्रतीत होता है । इसलिये गोली चलानेके विषयमें (अग्नि) ब्राह्मण, (इन्द्र) क्षत्रिय और (वरुण) वैश्यने भी संमति दी है और (इन्द्र) क्षत्रिय ने तो सत्सिद्धी गोलीयां हमारेपास दे रखी हैं, इत्यादि द्वितीय मंत्रका भाव इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है । सप्तम सूक्तमें दिये उपदेशानुसार ब्राह्मण प्रचारकोंने प्रयत्न किया और उन्होंने कहा कि ये दाकू छुपते नहीं हैं, क्षत्रियोंने भी कहा कि अनेक बार देहदंड देनेपर भी इन दुष्टोंका सुधार नहीं हुआ, वैश्य तो दंडे जानेके कारण कहते हो रहे, इस प्रकार तीनों वर्गोंकी परिपक्वता जब गोली चलानेकी आज्ञा दी, तब इस सूक्तके आधारपर गोली चलायी जा सकती है । पाठक यह पूर्वोपर संबंध अवश्य ध्यानमें रखें ।

सूक्तकी दोष बातें स्पष्ट हैं । इसलिये आधिक विवरणकी आवश्यकता नहीं है ।

रक्तसाव वंद करना ।

[ऋषिः भद्रा । देवता-योषित्]

(१७)

अमूर्पा यन्ति योषितो हिरा लोहितगाससः । अघ्रातरं हव जामयस्वितेन्तु हुतार्चयमः ॥१॥
विष्टान्ते विष्टं पर उत त्वं विष्टं मध्यमे । कनिष्ठिका च विष्टंति तिष्ठदित् मनिम्वही ॥२॥
शतस्य घ्रमर्नानां सहस्रस्य हिराणां । अस्थुर्निर्मध्यमा कुपाः साकमन्ता अरंसव ॥३॥
परं वुः सिकतावती घ्नन्वैहर्त्यकमीत् । विष्टविलयता सु कम् ॥४॥

अर्थ - (अमूर्पा या) यद जो (लोहित-गाससः) रक्त साव करने पढ़नी हुई (योषितः) स्त्रियां हैं अर्थात् मातृ शब्द स्वयं कनिष्ठिका (हिरा) चमयिनी इत्यादि हैं (विष्टम्) उद्धर भाव अर्थात् अपना चलना बंद करे, (हव) भिग

प्रकार (अ-भातरः) विना भाईके (इत धर्चसः) निखेब बनी (जामयः) बहिर्न ठहर जाती हैं ॥ १४ (कचरे विष्ट) हे नीचेकी नाडी ! तू ठहर ! (परे विष्ट) हे ऊपरवाली नाडी ! तू ठहर ! (उत मध्यमे) और बीच वाली (र्च विष्ट) तू भी ठहर ! (कनिष्ठिका च विष्टति) छोटी नाडी भी ठहरती है तथा (धमनिः इत् विष्टात्) बड़ी नाडी भी ठहर जावे ॥ २ ॥ (धमनीनां चतस्रः) सैकड़ों धमनियोंके और (द्विराणां सहस्रस्य) हजारों नाडियोंके बीचमें । हृत्माः मध्यमाः क्षत्र्युः) ये मध्यम नाडियां ठहर गई हैं । (साकं) साथ साथ (अंताः) अंत मांग भी (धरंसत) ठीक हुए हैं ॥ ३ ॥ (शुद्धी घनः) बड़े घनघने (यः परि अक्रमीत्) तुमपर हमला किया है, अतः (सिक्तापत्नीः खिन्ना) रेतवाली अथवा घट्टीवाली बनकर ठहर आये, जिससे (कं) कुछ (सु हृत्पत्) प्राप्त करोगे ॥ ४ ॥

भावार्थ—शरीरमें राल रेंगड़ा रक्त शरीरपर पहुंचानेवाली धमनियां हैं । जब घाव लग जावे तब उनही गति रोकनी चाहिये, जिस प्रकार बुर्गीमकी प्राप्त हुई भाई रहित बहिनोंकी गति रुक जाती है ॥ १ ॥ नीचेवाली, ऊपरवाली, तथा बीचवाली छोटी और बड़ी सब नाडियोंको बंद करना चाहिये ॥ २ ॥ सैकड़ों और हजारों नाडियोंमें भाईरक्त नाडियों ही बंद की जावे अर्थात् उनके फटे हुए अंतिम भाग टोक दिये जायें ॥ ३ ॥ बड़े मनुष्यके बड़े बगैरोंसे धमनियोंपर हमला होकर नाडियां कट गई हैं, उनके धर्कटाके साथ संबंध कलेशे पूर्ण आरोग्य प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

घाव और रक्तसाध ।

शरीरमें शस्त्रादिसे घाव होनेपर घावके ऊपरकी और नीचेकी नाडियोंको बंद करने चाहिये रक्तका साव बंद हो जाता है । घाव देखकर ही निश्चय जाना चाहिये, कि कौनसे भागपर बंद लगाना चाहिये । यदि रक्तसाध इस प्रकार बंद किया जाय तो ही रोगीको शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो सकता है, अन्यथा रक्तके बहुत साव होनेके कारण ही मृत्यु भ्रम सकता है । इसलिये इस विषयमें सावधानता रखनी चाहिये ।

इसमें पूर्ण सुखमें शत्रुको गोलीसे मारनेकी सूचना दी दे । इस लड़ाईमें शरीरपर घाव होना समझ दे, इसलिये इस रक्तसाधके बंद करनेके विषयमें इस एकमें उपदेश दिया है “ सिक्तापत्नी ” अर्थात् रेतवाली अथवा घट्टीवाली धमनी कारणसे रक्तस्राव बंद होता है । शरीरक मिथीका शरीरक पूर्ण अगनेसे शर बंद होता है, यह कथन विचार करनेयोग्य है ।

पति जीवित रहनेपर जियां बड़े बड़े समारंभोंमें और उत्सवोंमें जा सकती है, उस प्रकार पति मर जानेके पश्चात् वे जा नहीं सकती अर्थात् उनकी गति रुक जाती है । पहले उनकी गति सर्वत्र होती थी, परंतु दुर्भाग्य-वश होनेके पश्चात् उनका ज्ञान नहीं हो सकता ।

यहां खंखिपयक एक वैदिक मर्यादाका पता लगता है, कि पति मरनेके पश्चात् स्त्री उस प्रकार नहीं घूम सकती कि जैसी पतिके होनेके समय घूम सकती है । परमेश्वर रहना, शरणियोंके आनंद प्रसन्नोमें न जाना, मंगलपथोंमें मांस न लेना इत्यादि श्रुतपति स्त्रीके व्यवहार की रीति यहां प्रतीत होगी ।

श्रुतपतिश्री स्त्री भाई होनेपर भाईके घर जा सकती है, भाई न रहनेपर जिंदा पिता माता न रहनेपर उनकी दुःखमें ही रहना होता है । इस समय वह दुर्भाग्यवती स्त्री परमेश्वर आश्रित अथवा समय शुभारे और पणपचार का शय करे ॥

अन्यान्य रंग मिले जुने हों तो वैसे सब रंगों के कपड़े पहनती पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें, क्योंकि इस हैं। केवल श्वेत वस्त्र भी विधवा स्त्रियां पहनती हैं, यह श्वेत विषयका निश्चय होनेके लिये कई अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता भज्जना रिवाज सपूर्ण भारतवर्षमें एक जैसा ही है। है।

सौभाग्य-वर्धन-सूक्त ।

(१८)

(ऋषिः—द्रविणोदाः । देवता—वैनायकं सौभागम्)

निरिहम्यं ललाम्यं१ निररातिं सुवामसि ।

अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥ १ ॥

निररणिं सविता साविषक् पदोर्निहस्तयोर्यरुणो मित्रो अर्यमा ।

निरस्मभ्यमनुमती रराणां प्रेमां देवा असाविषुः सौभागाय ॥ २ ॥

यत्तं आत्मनि तुर्वा घोरमस्ति यद्वा केनेषु प्रतिचक्षणे वा ।

सर्वं तद्वाचापं हन्मो वयं देवस्त्वां सविता संरयतु ॥ ३ ॥

रिश्यपदीं वृषदतीं गोपेधां विधमामुत ।

विलीढ्यं ललाम्यं१ ता अस्मिन्नाशयामसि ॥ ४ ॥

अर्थ—(ललाम्यं) निरपर होनेवाले (लहम्यं) गुरे चिन्हकी (निः) निःशेषतासे दूर करते हैं; तथा (अ-रातिं) कंजुषी आदि (नि सुवामसि) निःशेष दूर करते हैं। (अथ या भद्रा) और जो कस्याग का/क बिन्दु हैं (तानि नः प्रजायै) मे सब हमारी सतानके लिये हन प्राप्त करते हैं और (अरातिं) कंजुषी आदिमें (नयामसि) दूर भगते हैं ॥ १ ॥ सविता, वरुण, मित्र और अर्यमा (पदो- हस्तयोः) पाशों आर हातोंकी। (अरणिं) पीडाको (निः नि साविषक्) दूर करें। (रराणां अनुमति) दानशील अनुमोने (अस्मभ्यं निः) हमारे लिये निःशेष प्रेरणा की है। तथा (देवाः) देवीन (हर्मां) इस श्रोत्रो (सौभागाय) सौभाग्यके लिये (प्र असाविषुः) प्रेरित किया है ॥ २ ॥ (यत्तं आत्मनि) जो-तेरी आत्मामें तथा (त्वम्वां) पाशमें (वा यत् केनेषु) अथग जो केशोंमें (वा प्रतिचक्षणे) अथवा जो हाथमें (घोरं अस्ति) गयानक बिन्दु है (तत् सर्वं) वह सब (वयं वाचा हन्मः) हम वागोंसे हटा देते हैं। (सविता देवः) सविता देव (त्वा सूदयतु) तुझे भिन्न करे अर्थात् पारपक बनावे ॥ ३ ॥ (रिश्यपदीं) हरणके समान पाववाली, (वृषदतीं) बेलके समान दातवाली, (गोपेधां) गावके समान चलनेवाली, (विधमां) विरुद्ध शब्द बोलनेवाली, त्रिसक शब्द कठोर है ऐसी ली (उत ललाम्यं विलीढीं) और निरपरका कुलक्षण यह सब हम (अस्मत् नाशयामसि) अपनेसे नाश करते हैं ॥ ४ ॥

मार्गार्थ—निरपर तथा शरीरपर जो वृक्षलक्षण होंगे उनको दूर करना चाहिये तथा अंतःकरणमें कंजुषी आदि जो दुर्गुण हैं उनको भी दूर करना चाहिये, और जो कुलक्षण हैं उनको अपने तथा अपने संतानोंके पापस्थिर करना अथवा बडाना चाहिये। तथा कंजुषी आदि मनके गुरे मांसकी हडाना चाहिये ॥ १ ॥ सविता, वरुण, मित्र, अर्यमा, अनुमति आदि सब देव और देवता हाथों और पाशोंकी पीडाको दूर करें, इस विषयमें वे हमें उपदेश दें। क्योंकि देशोंने ली और वृक्षको उतम आर्यके लिये ही बनाया है ॥ २ ॥ दुष्टारी आमा अथवा मनमें, शरीरमें, देशोंमें तथा हाथमें जो कुछ कुलक्षण हों, जो कुछ भी दुर्गुण हों उनको हम

वचनसे दृढते हैं । परमेश्वर तुम्हें उत्तम लक्षणोंसे युक्त बनावे ॥ ३ ॥ हरिणके समान पाँव, बैलके समान दाँत, गायके समान चलनकी आदत, कठोर सुरा अवाज हीना तथा सिरपरके अल्प कुलक्षुण यह सब हमसे दूर हों ॥ ४ ॥

कुलक्षुण और सुलक्षुण ।

इस सूक्तमें गरीरके तथा मन, बुद्धि, आत्मा आदिके भी जो कुलक्षुण हों उनको दूर करने तथा अपने आपको पूर्ण सुलक्षुण-युक्त बनानेका उपदेश किया है । इस सूक्तमें वर्णित कुलक्षुण ये हैं—

(१) ललाम्ब लक्ष्म्यं—सिरपरका लक्षण, कपाल छोटा होना, माकुर बाहू होने, सुद्धिहीन दर्शन आदि कुलक्षुण । (मंत्र १)

(२) ललाम्बं विलीक्ष्यं—सिरपर कानोंके गुहे रहने और उससे सिरकी सीमाका विगाह आदि कुलक्षुण । (मंत्र ४)

(३) रिद्धयपदी—हरिणके समान कुरा पाँव । (मंत्र ४)

(४) सुपदसी—बैलके समान बड़े दाँत । (मंत्र ४)

(५) गौपिधा—गायके समान चलना । (मंत्र ४)

(६) नि-धमा-कानोंकी सुरा लगनेवाला आवाज, जिसका मीठा मनुज आवाज नहीं । (मंत्र ४)

ये अंतिम (३-६) चार कुलक्षुण क्षीणिग निर्दोषमें प्रियोंके लिये बहुत घरे हैं अर्थात् श्रियोमें ये न हों । अधु पद क नेके समय इन लक्षणोंका विचार करना योग्य है ।

(७) केवोपु घोरं—बाणोंमें कुरता अथवा भयानकता दिखाई देना अर्थात् बाणोंके कारण सुख बुराई होना । (मंत्र १)

(८) प्राविचक्षणे कूर्-नेत्रोंमें कुरता, अमानक नेत्र, अमानक दृष्टि । (मंत्र १)

(९) सन्वा कूर्-शरीरमें अमानकता, अर्थात् शरीरके अवयवके टेढ़ामेढ़ा होनेके कारण अमानक दृष्टि । (मं. १)

(१०) आत्मनि कूर्-मन, बुद्धि, चित्त, आत्मामें कुरताके भाव होना । (मंत्र १)

(११) अ राति—कैतूकी, उदाराभावका अभाव । (मं १)

(१२) परो हन्तयो अ-रमिः—पौर और हानों की

इसविध पाठक इन दोनों सूक्तोंका साथ साथ विचार करें । इन सुलक्षणोंमेंसे कई लक्षण केवल श्रियोमें और कई पुष्टों तथा कई दानोंमें होंगे । अथवा सब लक्षण मनुनाधिक भेदसे श्रौष्ठियोंमें दिखाई देना भी संभव है ।

ये कुलक्षुण दूर करना और इनके विरोधी सुलक्षण अपनेमें बढाना हरएकका कर्तव्य है । इन कुलक्षुणोंका विचार करनेसे सुलक्षणोंका भी ज्ञान हो सरता है । जिससे घरीर सुदोष दिखाई देता है वे शरीरके सुलक्षण समझने चाहिये । इसी प्रकार इन्द्रियो, मन, बुद्धि आदि के भी सुलक्षण हैं । इन सबका निश्चित ज्ञान प्राप्त करके अपनेमेंसे कुलक्षुण दूर करना और सुलक्षण अपनेमें बढाना हरएकका आवश्यक कर्तव्य है ।

वाणीसे कुलक्षुणोंको हटाना ।

मंत्र १ में “ सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं । ” अर्थात् हम अथ सब कुलक्षुण वाणीसे दूर करने हैं, अथवा वाणीसे इन कुलक्षुणोंका नाश करते हैं, कहा है, तथा साथ साथ “ देवताया भविता सुदयतु ” अर्थात् सविता देव तुम्हें पूरा सुलक्षणयुक्त बन प, कहा है । परमेश्वर कृपासे मनुष्य सुलक्षणोंमें युक्त हो सारा है, इसमें किसीकी भेदह नही हो गद्यता, पात्र वाणीमें कुलक्षुणोंको दूर करनेके विषयमें बहुत सौं हों देह होना संभव है, अतः हम विषयमें कुछ राहोकराकी आशयकता है । देशमें यह विषय कई स्थानों आयुक्त है । हमलिये पाठक इतना सब विचार करें ।

करने योग्य है । “मैं हीन हूँ, दीन हूँ” आदि विचार जो लोग आज कल बोलते हैं, वे तबकार मनमें प्रतिबिम्बित होनेसे मनपर कुसंस्कार होनेके कारण हमारी गिरावटके कारण हो रहे हैं । इसलिये शुद्ध वाणीका उच्चारण हीमेधा करना चाहिये, कभी भी अशुद्ध गिरि हुए भावोंसे कुछ शब्दोंका उच्चारण नहीं करना चाहिये । वाणीसे शुद्ध प्रेरणके विषयमें साक्षात् उपदेश देनेवाले कई दूख आगे आनेवाले हैं, इसलिये इस विषयमें यहाँ इतना ही लेख पर्याप्त है । अस्तु इस प्रकार शुद्ध वाणीद्वारा और परमेश्वर भक्तिद्वारा अपने सुलक्षणोंको दूर करना और अपने अंदर सुलक्षणोंको बढ़ाना हरएक मनुष्यको योग्य है ।

हाथों और पाँवोंका दर्द ।

द्वितीय मंत्रमें कहा है किसविता (सूँ), वरुण (जल), मित्र (प्राणवायु), अर्यमा (आगका पौधा) ये हाथों और पाँवोंके दर्दको तथा शरीरके दर्दको दूर करें । सूर्यप्रकाश, समुद्र आदिवा जल, शुद्ध वायु, आकके पत्तोंका डेक आदिले बहुतसे रोग दूर हो जाते हैं । इस विषयमें इससे पूर्व बहुत कुछ कहा गया है और आगे भी यह विषय बारंबार आनेवाला है । आरोग्य तो इनसे ही प्राप्त होता है ।

सौभाग्यके लिये ।

“हमा देवा असाविषुः सौभाग्यम् ।” इसकी देवोंने सौभाग्यके लिये बताया है । विशेष करके धीके धरिन्दसे यह

मंत्रमात्र है, परंतु सबके लिये भी यह माना जा सकता है । अर्थात् मनुष्य मात्र जो हो या पुरुष हो वह अपना कर्ण स्वयं करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है और वह यदि परमेश्वर भक्ति करेगा तथा शुद्ध वाणीकी सूचनासे अपने मनको प्रभावित करेगा तो अवश्यमेव सौभाग्यका भागी बनगा । हरएक मनुष्य इस वैदिक पर्वके सिद्धांतको मनमें स्थिर करे । अपनी उन्नतिको सिद्ध करना हरएकके पुरुषार्थपर अवलंबित है । यदि अपनी अवनति हुई है तो मिथ्य जानना चाहिये कि पुरुषार्थमें त्रुटि हुई है ।

सन्तानका कल्याण

यदि अपनेमें कुछ कुलक्षय रहे भी, तथापि अपनी संतानोंमें सब सुलक्षण आजाय (या भद्रा तानि न प्रजायै) यह प्रथम मंत्रका उपदेश हरएक शुद्धधीको ध्यानमें धरना चाहिए । अपनी संतान निर्दोष और सुलक्षणोंसे तथा सद्गुणोंसे कुछ बने यह भाव यदि हरएक शुद्धधीमें रहेगा, तो प्रति पुरुषमें मनुष्योंका सुधार होता जायगा और राष्ट्र प्रतिदिन उन्नति की सीढ़ीपर चढ़ेगा । यह उपदेश हरएक प्रकारसे कल्याण करनेवाला है इसलिये इसको कोई शुद्धधी न भूले ।

इस प्रकार पाठक इस सूक्तका विचार करें और अपने सुलक्षणोंको दूर करके अपने अंदर सुलक्षण बढ़ानेका प्रयत्न करें ।



शत्रु-नाशन-सूक्त ।

(१९)

(प्राणि-प्रदाता । देवता-ईश्वरः, भद्र)

बले बाण समूहोंको (अस्मत् आरात् पातय) हमसे दूर गिरा ॥ १ ॥ (ये अस्त्राः) जो फेंके हुए और (ये च मस्याः) जो फेंके जायेंगे, वे सब (विष्वजः शरवाः) चारों ओर फैले हुए बाण आदि शस्त्र (अस्मत् पतन्तु) हमसे दूर जाकर गिरें (वैवीः मनुष्येयवः) हे मनुष्योंके दिव्य बाणों ! (मम अमित्रान्) मेरे शत्रुओंको (विविष्यत) वेष कर डालो ॥ २ ॥ (यः यः स्वः) जो हमारा अपना अथवा (यः शरणाः) जो दूसरा पराधीन हो, किंवा जो (स-जातः) समान उष जातिघा कुलीन (उत) अथवा जो (निष्ठयः) भिन्न जातिवाला या संश्र जातिका हीन (अस्मान् अमित्रास्तु) हमपर चढ़ाई करके हमें दास बनानेकी चेष्टा करे, [एतान् मम अमित्रान्] इन मेरे शत्रुओंको [रुदः] हलानेवाला वीर [शरम्वया विविष्यतु] बाणोंसे वेष करे ॥ ३ ॥ [यः] जो [सपत्नः] विरोधी और [यः अ-सपत्नः] जो प्रकट विरोधी नहीं है । [च यः द्विषन्] और जो द्वेष करता हुआ [नः शपत्ति] हमको शपता है [उं] उसका [सर्वे देवाः] सब देव [पूर्वन्तु] नाश करें । [मम अन्तर वर्म] मेरा आंतरिक कवच [ब्रह्म] ब्रह्मज्ञान ही है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हमारे वीरोंका शौर्य ऐसा हो कि हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले सब शत्रु हमसे दूर रहें और हमतक वे कभी न पहुंच सकें । उनके शस्त्र भी हमसे दूर रहें ॥ १ ॥ सब शस्त्र हमसे दूर गिरें । और हमारे शत्रुओंपर ही सब शस्त्र गिरते रहें ॥ २ ॥ कोई हमारा मित्र या शत्रु, हमारी जातिवाला या परजातीका, कुलीन या हीन, कोई भी क्यों न हो, यदि वह हमें दास बनाने या हमारा नाश करनेकी चेष्टा करता है तो उसका नाश शस्त्रोंसे करना योग्य है ॥ ३ ॥ जो प्रकट या छिपा हुआ शत्रु हमारा नाश करना चाहता है या हमें घुरे शब्द बोलता है सब सज्जन सबकी दूर करें । मेरा आंतरिक कवच सत्य ज्ञान ही है ॥ ४ ॥

यह “नामामिक गण” का सूक्त है, इस कारण “अपराजित गण” के सूक्तोंके साथ भी इसका संबंध है, अतः पाठक इस गणके सूक्तोंके साथ इसका भी विचार करें ।

आन्तरिक कवच ।

॥ सूक्तमें जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात कही है वह आंतरिक कवचकी है । इसके कवच पर्वत, दुर्ग और समुद्र होते हैं, इनके होनेके कारण बाहरके शत्रु देशमें घुस नहीं सकते । प्रायः कवच किते होते हैं इनके कारण शत्रु प्रायमें घुस नहीं सकते । शरीरके कवच सोइके अथवा तारके बनाने जाते हैं जिनके कारण शत्रुके दास शरीरपर लगते नहीं और शरीर सुरक्षित रहता है । शरीरके अंदर आत्मा और अंतःकरण है, मन, बुद्धि, चित और अहंकार मिलकर अंतःकरण होता है, इसकी साथ आत्माके लिये रहती है । ॥ अन्तःकरण ” के लिये “ अंतः कवच ” अवश्य चाहिये, जो इस शत्रुनाशन सूक्तमें “ ब्रह्म वर्म अमान्ताम् ” शब्दोंद्वारा बताया है । “ ज्ञानरूप कवच ही मेरा आंतरिक कवच ” है । जिसके आत्मा

विषयक आतिशय सुदियुक्त ज्ञान ” इतना अर्थ इस शब्दसे समझना योग्य है ।

इस सूक्तके दो विभाग ।

इस सूक्तके दो विभाग होते हैं, प्रथम विभागमें प्रारंभमें अगुरुपं मंत्रके तृतीय चरणतकके सब मंत्र आते हैं और द्वितीय विभागमें अगुरुपं मंत्रके अगुरुपं चरणका ही समावेश होता है । इन विभागोंको देखकर इस सूक्तका विचार करनेसे बड़ा बोध मिलता है ।

वैदिकधर्मका साध्य । ब्रह्म कवच ।

शक्तिका ही आश्रय करते हैं । अतः हम कहते हैं प्रथम विभागके मंत्र पाशवी शक्तिका विचार करते हुए साधारण जनोका मार्ग बता रहे हैं और द्वितीय विभागका मंत्रमाग आत्मिक दिव्य शक्तिका मानवी अंतिम स्थिति बता रहा है ।

“ आत्मिक शक्ति या आत्मिक ज्ञान ही मेरा सबसे बड़ा कवच है, जिससे मैं सब प्रकारके शत्रुओंसे सुरक्षित रह सकता हूँ, मेरे अंदर आहुतिका भाव पूर्ण रूपसे स्थिर रहा, तो जो जो मेरे पास आयेगे उनके अंदरसे भी शत्रुताका भाव दूर हो जायगा ”

इत्यादि वैदिक धर्मकी शिक्षा अन्तिम साध्य है, मनुष्यको यही बात अंतमें स्वीकारनी है, परंतु यह स्वीकार बाह्य दबावसे नहीं होना चाहिये, परंतु अंतःस्फूर्तिमें ही होना चाहिये, अपना समाधि ही ऐसा बनाना चाहिये । इसी भावसे मनुष्यका सबसे अधिक कल्याण है ।

अन्य कवच । क्षात्र कवच ।

शारीक, नगरीके तथा देशोंके अन्वयान्वय कवच उक्त विद्यासके आभावमें आवश्यक ही हैं । स्वतंत्रताके कल्लाज आदि सब इस अवस्थामें ही सहायक हैं । अर्थात् जबतक जनता पूर्णतः अधिकारके लिये योग्य नहीं होती, तबतक शरीरवीर अभियोग्य पट्टका संरक्षण इन शस्त्रास्त्रोंसे करें । वे क्षात्र साधन हैं । ज्ञान कवचसे सुरक्षित होना ब्राह्म साधन है और लोकेके कवचों तथा शस्त्रास्त्रोंसे सुक्षित होना क्षात्र-साधन है । ब्राह्मसाधन स्वीकारने योग्य जनताकी दक्षिण धर्मसाधनसे कानी चाहिये और जबतक वृत्ति दक्षिण नहीं होती, तबतक क्षात्रसाधनसे शत्रुओंका

प्रतिकार करना योग्य है । क्षात्रसाधनसे युद्धोंके बहुत होनेसे ही मनुष्य इन साधनोंकी कृताका अनुभव करता है और ब्राह्मसाधनको स्वीकारनेका यत्न करता है ।

इस प्रकार युद्ध भी मनुष्यको ब्राह्मसाधनतक पहुँचानेवाले मार्गदर्शक बनते हैं ।

दासभावका नाश ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि “जो अपना या परया हमें दास बनाने की चेष्टा करता है उसका नाश करना चाहिये ।” राष्ट्रीय पारतंत्र्य शारीरिक दास भावका द्योतक है, इसके आंतरिक मानसिक, बौद्धिक तथा भाविक, पारतंत्र्य मा है और ये सबसे अधिक घातक हैं । किसी प्रकारका भी पारतंत्र्य जो अपने भावका कारण हो वह स्वीकारना नहीं चाहिये, परंतु उसके कारणोंसे दूर करना चाहिये । आर्थिकी दास कमी नहीं बनना चाहिये । स्वाधीनता ही मनुष्यका साध्य है । ज्ञान और पुरुषार्थसे स्वाधीनता-बंधनसे मुक्ति-प्राप्त होती है, इसका भी आशय यही है । मनुष्यके सब दुःख दासत्वके कारण हैं । इसलिये कोई मनुष्य या कोई राष्ट्र दूसरे मनुष्यको या राष्ट्रको दासत्वमें दबानेका यत्न न करे और यदि किसीसे ऐसा प्रयत्न हुआ तो सब मनुष्य उसका विरोध करें ।

दासभावसे हटानेका उपदेश पाठक इस सूक्तमें विशेष प्रकारसे देखें और उसको अपने जीवनमें पढ़ावें । पाठक इस सूक्तके इस प्रकार विचार करनेसे बहुत ही भोग प्राप्त कर सकते हैं ।

महान् शासक ।

(२०)

(ऋषिः—अथर्व । देवता—सोमः)

अदोरमुद् मवत् देव सोमास्मिन्युद्धे मरुतो मुहता नः ।

मा नो विददग्निमा सो अश्वेतिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥ १ ॥

यो अय सेन्यो वृषोऽज्यायूनमुदीरति । युवं तं मित्रावरुणास्मघोवयत् परि ॥ २ ॥

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यावय । वि मुह्यन्मं यच्छ वरियो यावया वृधम् ॥ ३ ॥

शास इत्या मुहो अस्वमित्रासो अस्तुतः । न यस्प इत्युते सग्रा न ज्ञीयते कदा चन ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (देव भोम) सोम देव ! (अ-दार-सत्त्व भवतु) आपसकी फूट उत्पन्न करनेका कार्य न हो । हे (महत्तः) भवतो ! (अस्मिन् यत्ने) इस यत्नमें (नः श्रुतव) हमें सुखों करो । (बन्धि-भाः नः मा विद्द्) परामर्श हमारे पास न आवे, (अशस्तिः भो) अकीर्ति हमें प्राप्त न हो, (या द्वेष्या वृजिवा) जो द्वेष बढानेवाले कुटिल वृत्त्य हैं वे भी (नः मा विद्द्) हमारे पास न हों ॥ १ ॥ (अघातपूर्णां) पापमय जीवनवालोंका (यः सैन्यः वधः) जो सेनाके शूर वीरोसे वध (अथ उदीरते) आज़ हो रहा है । हे भानु और वरुण ! (युर्व) तुम (तं अस्मत् परि यावयत) उसमें हमसे सर्वथा हटा दो ॥ २ ॥ हे (वरुण) सर्व श्रेष्ठ देव ! (यत् इतः न यत् अमुतः) जो यशसे और जो बहासे वध होगा उस (वधं यावय) उसको भी दूर कर दे । (महत्तः शर्म वियच्छ) बड़ा सुख अथवा आश्रय हमें दे और (वधं वरीयः यावय) वधको अतिदूर कर दे ॥ ३ ॥ (इत्या महान् शास) इस प्रकार सत्य और महान् शासक ईश्वर (अ-मित्र-साह अस्मृतः) शत्रुका पराजय करनेवाला और कभी न हारनेवाला (अग्नि) तु है । (यस्य सखा) जिसका मित्र (कदाचन न हन्यते) कभी भी नहीं मारा जाता और (न जीयते) न पराजित होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! आपसकी फूट बढानेवाला कोई कार्य हमसे न हो । इस सारकर्मसे हमें सुख प्राप्त हो । पराजय, अपकीर्ति, अवश, द्वेष आर कुटिलता हमारे पास न आवें ॥ १ ॥ हे देव ! शत्रुओंके द्वारों जो पापियोंके वध हो रहे हैं, वेसे वधोंके प्रसंग भी हमारे अंदर न उत्पन्न हों ॥ २ ॥ हे प्रभु ! हमारे अंदर अथवा दूसरोंके अंदर वध करनेका भाव न रहे । वधका भाव ही हम सबसे दूर कर और तेरा बड़ा आश्रय—सुखपूर्व आश्रय—हमें दो ॥ ३ ॥ इस रीतिसे तेराही महान् सत्य शासन सबके ऊपर है, तुही सखा शत्रुओंका दूर करनेवाला और सर्वथा अपमानित है, तेरा मित्र बनकर जो रहता है न उसका वध कभी होगा और नहीं उसका कभी पराजय होगा ॥ ४ ॥

पूर्व सूक्तसे संघर्ष ।

पूर्व सूक्तके अंतमें " ईश्वरमाकेयुक्त सायज्ञान हा मेरा, सखा वध है " यह विशेष बात कही है, उसीका विशेष वर्णन इस सूक्तमें हो रहा है । सबसे पहिले आपसकी फूटको दूर करनेकी सूचना दी है ।

आपसकी फूट हटा दो ।

" अ-दार-सत्त्व भवतु " हमारा आचरण फूट हटाने-वाला हो, यह इस उपदेशका तात्पर्य है । देखिये—

दार=फूट (दुः=रटना पातु)

दार+सत्त्व=फूटका प्रयत्न, फूटका कार्य ।

अ-दार+सत्त्व=फूट हटानेवाला कार्य ।

" अ-दार+सत्त्व भवतु " अर्थात् " आपसकी फूट हटानेवाला कार्य हम सबसे होता रहे । " आरंभ की फूटके कारण शत्रु हमला करते हैं और शत्रुओंके हमसे हो जानेपर हमें शत्रुओंके भगनेका यत्न करना पड़ता है । इसलिये सुद्धा कारण आपस की फूट है । यदि आपसकी फूट न होगी और सब लोग एक मगने रहेंगे तो हमारे भोग हमला करनेके लिये भी होंगे । जहाँ आरम्भमें फूट होती है वही शत्रुओंका हमला होगा है । इसलिये सुद्धा कारण आपसकी फूटमें देखना और आपस की फूटको दूर करना

चाहिये । राष्ट्रीय सुखकी यही सुनिश्चय है ।

आपसकी फूट हट जानेके पश्चात् ही (श्रुतव) सुख होनेकी सम्भावना है । अन्यथा सुखकी आशा नहीं है । आपसकी फूट हटानेसे जो लाभ होगा वह निम्नलिखित प्रकारसे प्रथम मंत्रके उतरार्धमें वर्णन किया है ।

१ अभिमानः मा विद्द्=पराजय हमारे पास न आवे,

२ अशस्तिः भो=अकीर्ति हमारे पास न आवे,

३ युजिना नः मा=कुटिल कृत्य हमसे न हों,

४ द्वेष्या नः मा विद्द्=द्वेष भाव हमारे पास न आवे ।

त्रिषु समय हम आपसकी फूट हटावेंगे, उस समय हमें किसीके द्वेष करनेका कोई कारण नहीं रहेगा, किसीके कुटिल कृत्यका कारण नहीं रहेगा, किसीके अपकीर्ति का कारण नहीं रहेगा, किसीके परामर्श का कारण नहीं रहेगा, किसीके अपकीर्ति भी नहीं होगी, अर्थात् जब हम आपसकी फूट हटाकर अपना उभय संगठन करेंगे और एकल के बनेसे आगे बढ़ेंगे, उस समय सब लोग हमारे मित्र बनकर हमारे साथ मित्रताका व्यवहार करेंगे, हम भी सबसे व्यापक व्यवहार करते आयेगे, एकताके कारण हमारा बल बढेगा और उस हेतुसे कभी पराजय नहीं होगा तथा हमारा वध कदाचन न होगा । (मंत्र १)

त्रितीय और चतुर्थ संवर्षों को संनिह चोरति होनेवाले छुट्टिके संहारका वर्णन है, वह वर्णन भी हमारा भाष्यकी फूट के कारण ही कुछ लोग हमें सताते हैं और उनका बच करनेका प्रयोजन उत्पन्न होता है, अर्थात् यदि हमारा समाज सुसंगठित होगा तो उस वर्षही अजही नष्ट होनेसे वह वर्ष भी नहीं होगा और हमें (मनु उर्न) बड़ा सुख प्राप्त होगा। "धर्म" शब्दका अर्थ "इस और आश्रय" है। पूर्वोक्त संवर्षसे यहां परमेश्वरका आश्रय समीप है। क्योंकि सच्चा सुख भी परमात्माके आश्रय ही होता है। (मंत्र. २, २)

बड़ा शासक।

एक ईश्वर ही सबसे बड़ा शासनकर्ता है, सबके ऊपर

विश्वी अन्धका अधिकार नहीं है, सब उसीके शासनमें कार्य करते हैं, बड़ी सर्वोपरि है। वह शत्रुताका सदा नाशक और कभी पराजित न होनेवाला है। यदि ऐसे समय प्रमुखा मित्र बनकर कोई रहे तो उसका कभी नाश न होगा, और कभी पराजय भी न होगा। अर्थात् प्रमुखा मित्र बनकर व्यवहार करनेवालेका यह सर्वत्र फैलेगा और उसका ही मान सर्वत्र होगा। (मंत्र. ४)

पूर्व सूक्तमें जिस "ज्ञान-स्वच, ब्रह्म-वर्न" का वर्णन किया है वह ब्रह्म-स्वच यही है कि "परमेश्वरका शासन सर्वोपरि मानना और उसका सदा बनकर व्यवहार करना।"

आशा है कि पाठक इस प्रकार प्रमुके मित्र बननेका बल

प्रजा-पालक-सूक्त ।

(२१)

(भाषी:—अथर्व। देवता—इन्द्रः)

स्वस्तिदा विद्यां पर्विर्विमुहा विमुधो वृषी । वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अमपंकुरः ॥ १ ॥
वि न इन्द्र मृषो वहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । अधमं गमया तपो यो अस्मै अभिदासति ॥ २ ॥
वि रक्षो वि मृषो जाहि वि वृत्रस्य हनू रुच । वि मनुर्मिन्द्र वृत्रहन्मित्रस्वामिदासतः ॥ ३ ॥
अपेन्द्र द्विपतो मनोऽयु जिग्यासतो वृधम् । वि मुहूर्द्धर्मं यच्छ वरीयो वावया वृधम् ॥ ४ ॥

भाष्य—(स्वस्ति-दा) मेरु देवता, (विद्यां पतिः) प्रजाओंका पालक, (वृष इव) पेलेशके शत्रुका नाश करनेवाला, (वि-मुधः वृषी) विषय दिक्के की वधमें करनेवाला, (वृषा) बलवान् (सोमपाः) सोमका पान करनेवाला, (अमपंकुरः) अमय देवता (इन्द्रः) प्रभु राजा (नः) हमारे (पुरः पटु) आगे चले, हमारा नेता बने ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! (ना मृषः) हमारे शत्रुओंको (विमहि) भार डाल । (पृतन्यतः) सेनाके द्वारा हमारा हमला करनेवालेको (नीचा पच्छ) नीचे की प्रतिबंध कर । (यः अस्मात् अभिदासति) जो हमें दास बनाना चाहता है, या हमारा पात्र करना चाहता है, उसको (अधमं समः गमय) हीन संवर्षमें पहुँचा दे ॥ २ ॥ (इन्द्रः मृषः वि विमहि) राक्षसों और हिंस्रोंको मार डाल, [वृत्रस्य हनू विरुज] येरका हतना करनेवाले शत्रुके दोनो जखोंको तोड़ दे । हे (वृत्रहन् इन्द्र) शत्रुनाशक तने ! (अभिदासतः अभिदास्य) हमारा नाश करनेवाले शत्रुके (मनुर्मिन्द्र) जखानकी तोड़ दे ॥ ३ ॥ हे (इन्द्र) प्रभो ! राजन् ! (द्विपतः मनः कय) दोषीका मन बदल दे । [जिग्यासतः वर्यं जय] हमारी आहुता नाश करनेवालेको रुच कर (मनुर्मिन्द्र विमच्छ) बड़ा सुख हमें दे और (वर्यं वरीयो वावया) वरको दूर कर ॥ ४ ॥

भाष्य—प्रजाओंका रक्षक और अंगत करनेवाला, प्रजाओंका दहन पालन करनेवाला, येरका नाश करनेवाले शत्रुको दूर करने, मार, मर्दि, अष्टपत्तन करनेवाला, प्रजाको अमय देवताका पात्र हो हमारा आश्रय बने ॥ १ ॥ हे राजन् ! प्रजाके शत्रुका नाश

कर, सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुको दबा दे, जो पातपात और नाश करना चाहता है उसको भगा दे ॥ २ ॥ हितक दूर शत्रुओंको मारहाल, बेर कर सतानेवाले दुष्टोंको काट दो, सब प्रकारके शत्रुओंका उन्माद नाश कर दे ॥ ३ ॥ शत्रुओंके मन ही बदल दे अर्थात् वे हमला करनेका विचार छोड़ दें, नाश करनेवालोंको दूर कर दे, पातपात आदिको दूर कर और सब प्रजाको सुखी कर ॥ ४ ॥

शाश्वधर्म ।

यह "अमरवर्ण" का सूक्त है । इस सूक्तमें शाश्वधर्मका सपदेश और राजाके कर्तव्योंका वर्णन है उसका मनन पाठक करें । उत्तम राजाके गुण प्रथम मंत्रमें वर्णन किये हैं । इस मंत्रकी कवौदीसे राजा उत्तम है या नहीं इसका परीक्षा हो

सकती है । अन्य तीन मंत्रोंमें विविध प्रकारके शत्रुओंका वर्णन है और उनका प्रतिकार करनेका उपदेश है । सब प्रकारके शत्रुओंका प्रतिहार करके प्रजाको अधिकसे अधिक सुखी करना राजाका मुख्य कर्तव्य है । यह सूक्त अति सरल है इसलिये इसका अधिक स्मृतिकरण आवश्यक नहीं है ।

[चतुर्थ अनुवाक समाप्त]

हृदयरोग तथा कामिलारोग

की चिकित्सा

(२२)

(ऋषिः—प्रह्ला । देवता—सूर्यः, हरिमा, हृद्रोगः)

अनु सूर्यमुदयतां हृदयोतो हरिमा च ते । गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥ १ ॥
परि त्वा रोहिषेर्वर्णेर्दायापुत्वाय दध्मसि । यथाऽयमेव्या असुदथो अहरितो भुवत् ॥ २ ॥
येन रोहिणीर्देवपुत्राः गात्रो या उत रोहिणीः । रूपं रूपं यवो-वयस्ताभिर्दृश परि दध्मसि ॥ ३ ॥
शुकपु ते हरिमाणं रोपुणाकामु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥ ४ ॥

अर्थ—(ते हृदयोतः च हरिमा) तेरे हृदयकी जलन (और पीनान्न सूर्य अनु उदयताम्) सूर्यके पंखे चला करे । गोके अपश सूर्यके (रोहितस्य तेन वर्णेन) उस लाल रंगमें (त्वा परि दध्मसि) तुमने सब प्रकारके हृत् पुत्र करते हैं ॥ १ ॥ (रोहिषेः वर्णेः) लाल रंगमें (त्वा) तुमने (दायापुत्वाय परि दध्मसि) दायाँ आगुदे लिपे चरने हैं । (यथा) त्रिविधे (अयं) यह (अरया असत्) नीरोग हो जाय और (अ-हरितः भुवत्) पीनक रोगमें मुक्त हो जाय ॥ २ ॥ (याः देवता रोहिणीः गात्राः) जो दिव्य लाल रंगकी गीबें हैं (उत या रोहिणीः) और जो लाल रंगकी धारियाँ हैं (ताभिः) उनसे (रूपं रूपं) सुंदरता और (यवः यवः) अन्नके अनुमार (त्वा परि दध्मसि) तुमने चरने हैं ॥ ३ ॥ (ते हरिमाणं) पीनक रोगकी (सुकेतु रोगमाकामु च) तोते और पीनके रंगमें (दध्मसि) चरण करने हैं (यवो) और (ते (हरिमाणं) तेरा पीनान्न हय (हारिद्रवेषु) इसी बनहरानेवाले (नि दध्मसि) रख देने हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(१) हृदयरोग और पीनक रोग सुखीकरणके लिये सर्वप्रथम सूर्य और रोहित रंगों की चिकित्सा करनी होती है, इनके द्वारा पीनान्न हो जाती है ॥ १ ॥ पीन रंगके प्रयोगसे दायाँ आगुच मान होय है, पीनक रोग

दूर होता है और नीरोगता प्राप्त होती है ॥ २ ॥ लाल रंगकी चोंचें और लाल रंगकी सूर्यकिरणें दिश्य गुणोंसे युक्त होती हैं । रूप और बलके अनुसार उनके ज्ञा । रोगी घेरा जाये ॥ ३ ॥ इसलाल रंगकी चिन्मयमे रोगीका पलायन तथा क्रीडापन दूर होगा और वह दूरे पक्षा और दूरी वनस्पतियोंमें जाकर निवास करेगा, अर्थात् रोगीने पाप फिर नहीं आवेगा ॥ ४ ॥

वर्णचिकित्सा ।

यह सूक्त " वर्णचिकित्सा " के महत्वपूर्ण विषयका उपदेश दे रहा है । मनुष्यको हृदयका रोग और कामिला नामक पीला रोग कष्ट देते हैं । अगचन, पेटके विकार, तमाखू, मद्यप्राशन आदि अनेक कारण हैं, जिनके कारण हृदयके दोष उत्पन्न होते हैं । तद्वग अवस्थामें वायुदोष हानिके कारण भी हृदयके विकार उत्पन्न होते हैं । कामिला रोग रक्तके दुषित होनेके कारण उत्पन्न रोग है । इन रोगोंके कारण मनुष्य कृश, नित्य, शीत, दुबल और दीन होता है । इसलिये इन रोगोंका हटानेका उपाय इस सूक्तमें वेद बताया है । सूक्तके रणों द्वारा चिकित्सा तथा लाल रंगवाली गोभीके द्वारा चिकित्सा करनेसे उक्त दोष दूर होते हैं और उत्तम स्वास्थ्य मिलता है ।

सूर्यकिरणें कमरेमें लेकर उनमें नंगे शरीर रहना और शरीरसे उलट पुलट करके सब शरीरके भाग लाल रंगके सूर्यकिरणोंका संबंध करना परिधारण विधि का तात्पर्य है ।

१ रोहितै वर्णैः परिदध्मसि । (मंत्र १)

२ दीर्घायुस्त्वाय परिदध्मसि । (")

३ गो रोहितरूप वर्णेन स्वा परिदध्मसि । (मंत्र १)

४ साभिष्टुवा परिदध्मसि । (मंत्र. ३)

ये सब मंत्रभाग एक वर्णके सूर्यकिरणोंका स्नान अर्थात् " परिधारण " करनेका विधान कर रहे हैं । रोगीका नंगे शरीर पुरोंक रक्त वर्णके शोधमाने कमरेमें रखने और उनके शरीरका संवत्सर रक्त वर्णकी सूर्यकिरणोंके साथ करनेसे वह पारवारण हो सकता है और इससे नीरोगता, दायं आयुष्म-प्राप्ति तथा बलप्राप्ति भी हो सकती है । अन्योन्य रोगोंके निवारणके लिये अन्योन्य वर्णोंके रोगोंकी स्नानोंकी योजना करना बहुत वैदिक सुद्धिमतान्तर निर्भर है ।

स्वानर भगारोग्य होगा । अथवा कठोर प्रकृतिवालेको अल्प प्रमाणमें देनेसे उसपर कुष्ठ भी परिणाम न होगा । इस दृष्टिसे तृतीय मंत्र का उत्तरार्थ बहुत मन्त्र करने योग्य है ।

रंगीन गौंके दूधसे चिकित्सा ।

इसी प्रकार रंगीन गौके दूधसे रोगीकी चिकित्सा करनेकी विधि भी बना दी है । गौके घनेद, कान्ठे, खान्ठे, भूरे, नयवारी, बादामी तथा विविध रंगके घन्चोवाला होनी है । सूर्यकिरणों कीकी पीठपर गिरता है और उस कारण रंगके भेदके अनुसार दूधपर भिन्न परिणाम होता है । श्वेत गौके दूधका गुणधर्म भिन्न होगा, काले रंगकी गौका दूध भिन्न गुणधर्मवाला होगा, लाल गौका दूध भिन्न गुणधर्मवाला होगा, उसा प्रकार अन्योन्य रंगवाली गौओंके दूधके गुणधर्म भिन्न होंगे । एक बार वर्ण चिकित्सा का तत्त्व समझने पर यह धारणा मानना ही पड़ता है । इसीलिये इस सूक्तके मंत्र ३ में 'राहिणीः गावः' अर्थात्

लाल गौओंके दूधका तथा अन्योन्य गौओंका उपयोग हृदय विकार और कामेका रोगकी निराकरणके लिये करनेका विधान है । यह विधान मनन करनेसे बड़ा बोधप्रद प्रतीत होता है । और इसके मनन करनेसे अन्योन्य रोगोंके लिये अन्योन्य गौओंके गौरवोंका उपयोग करनेका उद्देश भी प्राप्त होगा । वर्ण-चिकित्सा का ही तत्त्व गोशुद्ध चिकित्साके लिये बर्त आयागा । दोनोंके बीचमें तत्त्व एक ही है ।

पथ्य ।

वर्ण चिकित्साके साथ साथ गौरस सेवन का पथ्य रखनेसे अत्यधिक लाभ होना संभवनीय है । अतएव लालरंगके किरणोंके परिणाम करनेके दिन लाल गौके दूध का सेवन करना, इत्यादि प्रकार यह पथ्य समझना उचित है ।

इस प्रकार इस सूक्त का विचार करके पाठक बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं ।

श्वेतकुष्ठ-नाशन-सूक्त ।

(२३)

(आपिः-प्रथर्ता । देवता-ओषधिः)

नृक्तं ज्ञातास्पर्षोपधे रामे कृष्णे आभिक्वि च । इदं रजनि रजय क्लिप्तं पलितं च यत् ॥ १ ॥
 क्लिप्तं च पलितं च निश्रितो नाशया पूषत । आ त्वा स्वी विंशतां वर्णः परां शुक्लानि पादय ॥ २ ॥
 आर्षितं ते प्रलपनमास्थानमभिर्भुतं तव । अस्ति कस्यस्योपधे निश्रितो नाशया पूषत ॥ ३ ॥
 अस्थिजस्य क्लिप्तस्य तनुजस्य च यद्विचि । दूषां कुतस्य ब्रह्मणा लक्ष्मं श्वेतमनीनशम् ॥ ४ ॥

अर्थ-हे रामा कृष्णा और अभिक्वि और विचि । रात्रिके समय उठाने हुई है । हे (रजनि) रंग देनेवाली । (यत् क्लिप्तं पलितं च) ओ कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ है (इदं रजय) उसमें रंग दे ॥ १ ॥ (इतः) इनके शरीरों (क्लिप्तं पलितं) कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ तथा (पूषत) धन्य आदि मन्त्र (निः नाशय) नष्ट कर दे । (नृक्तं ज्ञाता परा पादय) श्वेत धन्य दूर कर दे (स्वः वर्णः) अपने रंग (स्वा) तुम (आविशतां) प्राप्त हो ॥ २ ॥ (ते प्रलपनं) तेरा स्वरपात्र (अस्थि) कृष्ण वर्ण है तथा (तव अवस्थानं) तेरा स्थान भी (अस्थि) काला है, हे ओषधि! तुम (अभिक्वि विचि) काले रंगवाली है इसलिये (इत्) यहाँ (यद्विचि) यहाँ (निः नाशय) नष्ट कर दे ॥ ३ ॥ (दूषां कुतस्य) शरीरके कारण उत्पन्न हुए (अस्थिजस्य तनुजस्य च) दृष्टि तथा शरीरसे उत्पन्न हुए (क्लिप्तस्य यत् विचि) श्वेत कुष्ठ (इदं रजय) रंग देनेवाली है उधर (ब्रह्मणा अनीनशम्) इस कुष्ठसे मैंने नाश किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ-—रामा कृष्णा अभिक्वि ये औषधियाँ हैं, इनका पावन रात्रिके समय होता है, इनमें रंग बनायेका पावन्य है ।

इसलिये इनके लेपनसे श्वेतवृष्ट दूर होता है ॥ १ ॥ शरीरपर जो श्वेत कुष्ठके धब्बे होते हैं, उन श्वेत धब्बोंको इस औषधिसे लेपनसे दूर कर दे और अपनी चमड़ीका अच्छी रंग शरीरपर आने दें ॥ २ ॥ यह वनस्पति नष्ट होनेपर भी काला रंग बनता है, उसका स्थान काले रंगका होता है और वनस्पति भी स्वयं काले रंगवाली है, इसी कारण यह वनस्पति श्वेत धब्बोंको दूर कर देती है ॥ ३ ॥ दुराचारके दोषोंसे उत्पन्न, हृष्टसे उत्पन्न, मांससे उत्पन्न हुए सब प्रकारके श्वेत कुष्ठके धब्बोंको इस ज्ञानसे दूर किया जाता है ॥ ४ ॥

श्वेतकुष्ठ ।

शरीरका रंग गहरी सा होता है। गोरे कालेका भेद होनेपर भी चमड़ी का एक विलक्षण रंग होता है। जो रंग नष्ट होनेसे चमड़ीपर श्वेत-स धब्बे दिखाई देने हैं। उनका नाम ही श्वेत कुष्ठ होता है। यह श्वेत कुष्ठ शरीरपर होनेसे शरीरका रंग नष्ट होता है और सुखील सुंदर मनुष्य भी कुरूपसा दिखाई देता है, इसलिये इस (श्वेत लक्ष्म) श्वेत चिन्ह-श्वेत कुष्ठ-दूर करनेका उपाय वेदने यहां बताया है।

निदान ।

वेद इस श्वेत कुष्ठके निदान इस सूक्तमें निम्न प्रकार देता है—

(१) दूष्या कृतस्य-दोषयुक्त कुल अर्थात् दोषपूर्ण आचरण। सदाचार न होनेसे अथवा आचारविषयक कोई दोष कुलमें रहनेसे या कुष्ठ होता है। जिस प्रकारसे शक्तिदीपसे तथा कुलके दोषसे भी यह कुष्ठ होता है।

(२) अस्थिजल्प—अस्थिगत दोषसे यह होता है।

(३) तनूजल्प—शारीरिक अर्थात् मांसके दोषसे होता है।

(४) त्वचि-चमड़ीके अंदर कुछ दोष होनेसे भी यह होता है।

ये दोष सबके सब हैं या इनमेंसे कोई हैं यह कुष्ठ ही जाता है।

दो भेद और उनका उपाय ।

इस कुष्ठमें दो भेद होते हैं, एक क्लिप्त और दूसरा पलित। पण्डित शब्दोंसे केवल चेतनका ही बोध होता है इस कारण यह श्वेत धब्बोंका वाचक शब्द है। इसको छोड़कर दूसरे कुष्ठका नाम क्लिप्तप्रतीत होता है, जिसमें चमड़ी विलुप्त होती है। सुयोग्य वैद्य इन शब्दोंका अर्थ निश्चय करें।

“ रामा, हृष्या, अमिकनी ” इन औषधियोंका इस कुष्ठपर उपरोग होता है। ये नाम नियमसे किन औषधियोंके बोध हैं और किन औषधियोंका उपयोग इस कुष्ठके निवारण

करनेके लिये हो सकता है, यह निश्चय केवल शब्द शास्त्र नहीं कर सकता; न यह विषय केवल कौशिकी सहायतासे हल हो सकता है। इस विषयमें केवल सुयोग्य वैद्य ही निश्चित मत दे सकते हैं, तथा वे ही योग्य मार्गसे खोज कर सकते हैं। इसलिये इस लेखद्वारा वैद्योंकी प्रेरणा देना ही यहां हमारा कार्य है। वेदमें बहुत विचार होनेसे अनेक विद्याओंके पंडित विद्वान मिलनेपर ही वेदकी खोज हो सकती है। अतः सुयोग्य वैद्योंकी आयुर्वेदविषयक वेदभाषाकी खोज लगानी चाहिये और यह प्रत्यक्ष विषय होनेसे इन औषधादेका प्रयोग करके ही इसका सप्रयोग प्रतिपादन करना चाहिये। आशा है कि वैद्य और काक्टर इस विषयमें योग्य सहायता देंगे।

रंगका घुसना ।

कई लोग समझते हैं कि ऊपर ही ऊपर वनस्पतिका रस आदि लगानेसे चमड़ीका ऊपरका रंग बदल जाता है, परंतु यह सत्य नहीं है। इस सूक्तके द्वितीय मंत्रमें—

आ त्वा स्वो विशतां वर्णः ।

“ अपना रंग अंदर घुस जाय ” यह मंत्रभाग बता रहा है कि इन औषधियोंका परिणाम चमड़ीके अंदर ही होगा अर्थात् वे, न कि केवल ऊपर ही ऊपर। ऊपर परिणाम हो परंतु “ विशतां ” किया “ अंदर घुसने ” का भाव बता रही है। इसलिये चमड़ीके अंदर रंग घुस जाता है और वहां वह स्थिर हो जाता है। यह मंत्रका कथन स्पष्ट है।

औषधियोंका पोषण ।

औषधियोंका पोषण दिनके समय होता है या रात्रिके समय, यह प्रश्न बड़े शास्त्रीय महत्त्वका है। औषधियोंका रात्रा सोम-चंद्र-दे, इसलिये औषधियोंका पोषण और वर्धन रात्रिके समय होता है। यही बात “ नक्तं जाता ” शब्दोंसे इस सूक्तमें बतायी है। रात्रिके समय बनी यही या पुष्ट हुई औषधि होती है। अतः सभी औषधियोंके संबंधमें यह बात सत्य है ऐसा हमारा ख्याल है। वनस्पति विद्या जाननेवाले लोग इस कथनक अधिक विचार करें।

“ सौमार्ग-वर्धन ” के (१८ वें) सूक्तों सौर्ध्ववर्धनका पाठक इस सूक्तको पूर्वोक्त १८ वें सूक्तके साथ पढ़े । आता है उपदेश दिया है, इसलिये उस कार्यके लिये खेत वृष्ट यदि कि पाठक इस प्रकार पूर्वोक्त सूक्तों से संबंध देखकर सूक्तार्थके किर्तिका हो, तो उसको दूर करना आवश्यक ही है । अतः अधिकसे अधिक लाभ उठावें ।

कुष्ठ-नाशन सूक्त ।

(२४)

(ऋषिः-ब्रह्मा । देवता-आसुरी वनस्पतिः ।)

सुपुणो जातः प्रथमस्तस्य त्वं वित्तमांसिय । तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतिम् ॥ १ ॥
आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलामनाशनम् । अनीनशक्तिकलामं सरूपामरुच्यचम् ॥ २ ॥
सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता । सरूपकृत्तमौषधे सा सरूपामिदं कृधि ॥ ३ ॥
इयामा सरूपकरणी पृथिव्या अङ्गुद्धृता । इदम् पु म साधय पुनां रूपार्थि कल्पय ॥ ४ ॥

अर्थ-सुरर्ग (प्रथमः जातः) सबसे पहिले हुआ (तस्य वित्तं) उसका पित (त्वं मांसिय) ऐसे प्राप्त किया है । (युधा जिता) युद्धसे जीता हुई वह आसुरी (वनस्पतीम्) वनस्पति गेको (तस्य रूपं चक्रे) वह रूप करती रही ॥ १ ॥ (प्रथमा आसुरी) पहिली आसुरीने (इदं किलास-भेषजं) यह कुष्ठका औषध (चक्रे) बनाया । (इदं) यह (किलास-नाशनं) कुष्ठ रोगका नाश करनेवाला है । इसने (किलासं) कुष्ठका (अनीनशक्तं) नाश किया और (तस्यं) (चक्रे) (स-रूपो) समान रंगवाली (अरुचम्) बना दिया ॥ २ ॥ हे औषधी तू माया (सरूपा) समान रंगवाली है तथा तेषां पिता भी समान रंगवाला है । इसलिये (त्वं स-रूप-कृत्) तू मा समान रूप करनेवाली है (सा) वह तू (इदं सरूपं) इसको समान रंगरूपवाला (कृधि) कर ॥ ३ ॥ इयामा नामक वनस्पति (सरूप-करणी) समान रूपरग बननेवाली है । यह (पृथिव्या अङ्गुद्धृता) पृथ्वीमें उछाड़ी गई है । (इदं तं मु प्रसाधय) यह कर्म ठीक प्रकार निद कर और (पुनां रूपार्थि कल्पय) फिर पूर्वोक्त रंगरूप बना द ॥ ४ ॥

भावार्थ—सुरर्ग नाम सूर्य है उसकी किरणोंमें पित बननेकी शक्ति है । सूर्यकिरणों द्वारा वह पित बनस्पतिभूमिमें धनित होता है । योग्य उपवासि स्थापित बनी हुई बनस्पतिभी रूप रंगका सुधार करनेमें सक्षम होनी है ॥ १ ॥ आसुरी वनस्पतिसे कुष्ठ रोगके लिये उत्तम औषध बनती है । यह निषधसे कुष्ठ रोग दूर करती है और इसने छीर की लम्बा समान रंग रूपरगली बनती है ॥ २ ॥ दिन पीछेके संयोगसे यह वनस्पति बनती है, ये पंथे (अर्थात् इसके माता पिताम्ही पंथे की) शक्ति रंग गुणानेवाली है । इसलिये यह वनस्पति भी रंगरग सुधार करनेमें समर्थ है ॥ ३ ॥ यह इयामा वनस्पति छीर की चमकीला रंग ठीक करनेवाली है । यह भूमिमें उछाड़ी हुई यह कार्य करती है । अतः इससे उपयोग्य छीरका रंग गुणा जाय ॥ ४ ॥

वनस्पतिके माता पिता ।

इस सूक्तके मूल में भेदसे बनस्पतिसे मायाविगाभीता बननी है अर्थात् जो इस वनस्पतिसे संयोगसे बननेवाली वह पितृ वनस्पति है । जो पंथोंके कल्प कोशमें दीर्घी वनस्पति विशेष

गुणधर्मोंसे युक्त बनती है, यह उदात्तता मानेवर्धन मानती है । कुष्ठनाशन इयामा आसुरी वनस्पति इस प्रकार बनाती जानी है । छीरसे रंगरग सुधार करनेवाली जो अर्धकिरणोंसे संयोगसे यह रंग मा बनती है । जो आकारार्थ पीया है प्रदे वरुषा

नाम माता और जिसकी शाखा उसपर विपत्तयी या जोड़ी जाती है वह उसका पिता तथा उस संयोगसे जो नयी वनस्पति बनती है वह उस दोनोंका पुत्र है । पाठ १६ उद्यान-विद्याको ६५ मंत्रमें देखें । (मंत्र २)

सरूप-करण ।

शरीरके वास्तविक रंगके समान कुष्ठरोगके स्थानके चमड़ेका रंग बनाना "सरूपकरण" का तात्पर्य है । आगुरी श्यामा वनस्पति यह करती है इसीलिये कुष्ठरोगपर इसका उपयोग होता है । (मं. २-३)

वनस्पतिपर चिञ्चय ।

"युद्धसे जीती हुई आगुरी वनस्पति औषध बनती है ।" यह प्रथम मंत्रका कथन विशेष समनीय है । वैद्यको प्रत्येक दवापर इस प्रकार प्रभुत्व संपादन करना पड़ता है । औषधि उसके हाथमें आनेकी आवश्यकता है । वनस्पतिक गुणधर्मोंमें पूर्ण परिचय और उसका उपयोग करनेका उत्तम ज्ञान वैद्यकी होना आवश्यक है । नहीं तो औषध सिद्ध नहीं कहा जा सकता । (मं. १)

सूर्यका प्रभाव ।

सूर्यमें नाना प्रकारके बीज हैं । वे बीज किण्वों द्वारा वनस्पतियोंमें जाते हैं । वनस्पतिद्वारा वे ही बीज प्राप्त होते हैं और रोगनाश अथवा हलार्थक करते हैं । इस प्रकार यह सब

सूर्यका ही प्रभाव है । (मं. १)

सूर्यसे बीज-प्राप्ति ।

सूर्यसे नाना प्रकारके बीज प्राप्त करनेकी यह सूचना बहुत ही मनन करने योग्य है ।

सूर्य आत्मा जगत्स्वस्त्युपग्रह । (ऋग्वेद १ । ११५ । १)

"सूर्य हा स्थार जंगम का आत्मा है " यह वेद का उपदेश भी यहाँ मनन करना चाहिये । जब सूर्यसे नाना प्रकारके बीज प्राप्त करके हम अधिन बीजवान हो जायेंगे तभी यह मंत्रभाग हमारे अनुभवमें आ सकता है ।

जैसे शरीर सूर्यकिरणोंमें विचलित और सूर्यकिरणोंद्वारा अपनी चमड़ी अच्छी प्रकार तननेसे शरीरके अंदर सूर्यका ज्ञान अंचरित होता है इसी प्रकार सूर्यसे तथा हुआ वायु प्राणायामसे अंदर लेनेके अभ्यासमें क्षयरोगमें भी बड़ा लाभ पहुँचता है । इस प्रकार कई रीतियोंसे हम सूर्यमें बीज प्राप्त कर सकते हैं । पाठक स्वयं इसका अधिक विचार करेंगे तो उनसे बहुत लाभ प्राप्त हो सकता है ।

वेदोंमें उचित है, कि वे खोजसे दायमा वनस्पतिही प्राप्त करें और उसके बीजसे कुछ गेय दूर करें । तथा सूर्यमें अनेक बीज प्राप्त करनेके उपाय दृढ़क निकाल दें और उनका उपयोग आरोग्य वृद्धानमें करते रहें ।

शीत-ज्वर-दूरीकरण सूक्त ।

(२९)

(ऋषिः भृगुर्गङ्गाः । देवतः—अग्निः, तक्मा ।)

यदुमिरापो अदंष्ट्रविश्य यत्राकृण्यन् धर्मधृतो नमोसि ।

॥ १ ॥

तत्रै त आहुः परमं जुनित्रं स नः संविद्वान् परि वृंषि तक्मन्

यद्विर्षिट्ति शामि शोचिः श्लोकशेषि यदि वा ते जुनिप्रम् ।

॥ २ ॥

चूडनामामि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृंषि तक्मन्

यदि शोका यदि वाऽभिप्रोक्तो यदि वा रात्रौ श्लोकस्यासि पुत्रः ।

॥ ३ ॥

चूडनामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृंषि तक्मन्

नमः शीतार्थं त्वमने नमो ह्यर्थं शोचिषे कृणोमि ।

यो अयेद्युर्हमयुर्भ्योति तृतीयकाय नमो अस्तु त्वमने

॥ ४ ॥

अर्थ—(यत्र) जहाँ (धर्म-धृति) धर्मका गहन करनेवाले सदावागी लोग (नमोति कृण्वन्) नमस्कार करते हैं, वहाँ (प्रविश्य) प्रवेश करके (यत् अग्नि) जो अग्नि (आपः अद्भुत) प्राग्धारक जलतत्त्व में अग्नता है (यत्र) वहाँ । (ते परमं जानित्री) तेरा परम जन्म स्थान है, ऐसा (आहुः) कहते हैं । (ते त्वमन्) कष्ट देनेवाले उवर ! (सः संविद्वान्) जानता हुआ तू (नः परि वृन्धि) हमको छोड़ दे ॥ १ ॥ (यदि अर्चिः) यदि तू उवात्तत्त्व, (यदि वा शोचिः आसि) अथवा यदि तापहृत् हो, (यदि ते जानित्री) यदि तेरा जन्म स्थान (शक्य इति) अंगप्रत्यंग में परिणाम करता है, तो तू (ऋद्धः नाम आसि) ऋद्ध [अर्थात् गति करनेवाला] इस नामका है । अतः हे ! हरितस्य देव त्वमन् । पालक रोगको उत्पन्न करनेवाले उवर देव ! (सः संविद्वान्) वह तू यह जानता हुआ (नः परि वृन्धि) हमें छोड़ दे ॥ २ ॥ (यदि शोकः) यदि तू पीडा देनेवाला अथवा (यदि अभि शोक) यदि सर्वत्र पीडा उत्पन्न करनेवाला हो, (यदि वरुणस्य दास पुत्रः आसि) किंवा वरुण राजाका तू पुत्र ही क्यों न हो, पुत्रपारा नाम ऋद्ध है । हे पालक रोगको उत्पन्न करनेवाले उवर देव ! तू हम सबको यह जानकर छोड़ दे ॥ ३ ॥ (शीतार्थं त्वमने नमः) शीत-उवरके लिये नमस्कार, (ह्यर्थं शोचिषे नमः कृणोमि) ऋद्धे तापको भी नमस्कार करता हूँ । (य. अयेद्यु) जो एक दिन छोड़कर आनेवाला उवर है, (उमयद्यु) जो दो दिन आनेवाला (अभ्येति) होता है, (तृतीयकाय) निहारी है, उस (त्वमने नमः अस्तु) उवरके लिये नमस्कार होवे ॥ ४ ॥

आचार्य-धार्मिक लोग जहाँ प्राग्व्यामहाग पहुँचते और प्राग्व्यामहाग महेश्वर जानकर उसको प्रणाम भी करते हैं उस प्राग्वेक मूलस्थानमें पहुँचकर यह उवरका अग्नि प्राग्धारक आपः तत्त्वाको जला देता है । यही इस उवरका परम स्थान है । यह जानकर इससे मनुष्य बचे ॥ १ ॥ यह उवर बहुत जोरों तपिश करनेवाला हो किंवा अंदर ही अंदर तपनेवाला हो, किंवा हरएक अंग-प्रत्यंग में कमजोर करनेवाला हो, वह हरएक जीवनोंके अणुको हिला देता है इसलिये इसको “ ऋद्ध ” कहते हैं, यह पांडुरोग अथवा शमिता रोगको उत्पन्न करता है, यह जानकर इ एक मनुष्य इससे अपना बचाव करे ॥ २ ॥ कई उवर एकत्र अंगमें दई उ पक्ष करते हैं और बई संपूर्ण अंगप्रत्यंगमें पीडा उत्पन्न करते हैं, जन्मार्थ वहलसे इससे उत्पत्ति होती है, वह हरएक अंगप्रत्यंगको हिला देता है और पालक रोग वागीमें उत्पन्न कर देता है । इसलिये हरएक मनुष्य इनसे बचता रहे ॥ ३ ॥ शीत उवर, बह्म उवर, प्रातिदिन आनेवाला, एकदिन छोड़कर आनेवाला, दो दिन छोड़कर आनेवाला, तीसरे दिन आनेवाला ऐसे अनेक प्रकारके जो उवर हैं उनको नमस्कार हो अर्थात् ये हम सबसे दूर रहें ॥ ४ ॥

अग्निः आपः अद्दह ॥ (मंत्र १)

"यद् ऊवर जावनरसभे हो जला देता है।" इसी कारण पचासे शर्करा शक्ति कम होती है। आपत्त्व प्राणशक्ति का धारण करनेवाला है। (आधामयः) आपत्त्वमय प्राण है यह उपनिषदोंका कथन है। प्राणका आश्रयका शरीरस्थ आपत्त्व इस पचाके द्वारा जल जाता है, इसी कारण ऊवर आगेपर जीवन शक्ति कम हो जाती है। इसी कारण इस ऊवरको पीलक रोगका उत्पत्तिक बड़ा है। देखिये—

हरितस्व देव ! (मंत्र २, ३)

"पीलापन उत्पन्न करनेवाला" पीला विस्तीर्ण बननेवाला, पीलकरीग, बामिला, पांडुरोग, जीवनशक्ति कम करनेवाला रोग इन सबका उत्पत्तिक ऊवर है। यह ऊवर इतने भयानक रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है, इसीलिये इससे मनुष्यको अपने आश्रय बचाव करना चाहिये। यह ऊवर प्राणको मूल स्थान पर हमला करके उसकी कमजोर करता है। इस विषयमें यह मंत्र देखिये—

यदमिरायो अद्दहत् अविद्युय यनाकृष्वन्न
धर्मधुर्यो नमालि ॥ (मंत्र १)

"जहां धार्मिक लोग जाकर मनन करते हैं वहां प्रविष्ट गैरकार यह अग्नि-ऊवर-प्राण धारक जीवन्मरवको जलाता है।" योभादि साधनद्वारा धार्मिक लोग समाधि अवस्थामें हृदय कमलमें प्रविष्ट होत हैं, उसी हृदयमें जावचना तब है, वही रस-ऊवरस जलता है। अर्थात् ऊवरका हृदयपर बहुत बुरा परिणाम होता है, जिससे बहुत कमजारी भी उत्पन्न होती है। इसी कारण यह ऊवर पीलक रोग अथवा पांडुरोग उत्पन्न करता है ऐसा मूषके द्वितीय मंत्रमें कहा है। यह हिमज्वर बिबभो आज्ञा १८ "मरीया" कहा जाता है बहुत बहुत ही हानिकारक है। इसलिये उसका हृद्गृह प्रत्यक्ष दूर रखना चाहिये, यही निम्नलिखित मंत्रमार्गमें सूचित किया है—

स नः संनिद्रान् परिमुंषिषि सज्जन ॥ (मंत्र १, २, ३)

"यह बात जानता हुआ ऊवर दूर रखा जाय" अर्थात् ऊवरके कारण दूर करके उसका हमला मनुष्यपर न हो इस विषयमें योग्य प्रमत्त किये जाय। ऊवर आनेके बाद उसके प्रतिधरका यत्न करना चाहिये इसमें किंसाधा विवाद नहीं हो सकता, परंतु इस सत्यद्वारा चेद बड़ी उपदेश देना चाहना है, कि अपने पानी और आग्नेयी व्यवस्था मनुष्य इस प्रकार रखे कि यह मरीया ऊवर आवेगी न और उसके निवारणके लिये उपर्यापी पीनी न पड़े। क्योंकि यह विष इतना घातक है कि

एक घात आया हुआ हिमज्वर अपना परिणाम स्थिर रूपसे शरीरमें रख जाता है और उसके निवारणके लिये वर्षोंतक और बड़े व्ययसे यत्न करने आवश्यक होते हैं।

हिमज्वरके नाम ।

इस सूक्ष्म हिमज्वरके निम्नलिखित नाम दिये हैं—

१-हृड्ड-गति उत्पन्न करनेवाला, शरीरमें कंप उत्पन्न करनेवाला, ऊवरका शक्ति त्रिस समय प्रारंभ होता है। उस समय मनुष्य कांपने लगता है। मराठी भाषामें इस हिमज्वरका नाम "हुडहुडा ताप" है, यह शब्द भी वैदिक "हृड्ड" शब्दके साथ मिलता जुलता है। यही शब्द निम्नलिखित पुस्तकमें निम्नलिखित प्रकार लिखा हुआ मिलता है—हृड्ड, हृड्ड, हृड्ड, हृड्ड, हृड्ड, हृड्ड, हृड्ड, हृड्ड। अथर्ववेदकी पिण्डाद शाखा की संहितामें "हृड्ड" पाठ है। यह "हृड्ड" शब्द मराठी "हुडहुडा" शब्दकेही सहाय शब्द है। (मंत्र २, ३)

२-शक्ति-ऊवर शक्ति लग कर प्रारंभ होता है ॥ यह प्रतिदिन आनेवाला समझना उचित है। (मंत्र ४)

३-सम्बेद्यु-एक दिन छोड़कर आनेवाला। (मंत्र ४)

४-सम्बेद्यु-द्वारे दिन आनेवाला अथवा दार दिन छोड़कर आनेवाला। (मंत्र ४)

५-स्तीयक-तीसरे दिन आनेवाला किवा सोन दिन छोड़कर आनेवाला अथवा निवत दिन बीचमें छोड़कर आनेवाला। (मंत्र ४)

६-सकाम-जीवन दुःखमय बनानेवाला ऊवर।

७-अग्नि-अग्निकी ज्वालाएं भट्ठकेके समान बिखरी लपटा बाहर बहुत होती हैं। (मंत्र २)

८-चोकि, चोका-अग्निमें शरीरमें पीडा होती है। (मंत्र २)

९-सकल्य-हृदि-अंग-प्रत्यंग अलग अलग होनेके समान बिखिलता आती है। (मंत्र २)

१०-अभिज्ञोक्त-अग्निमें सब शरीर घटा दह करेता है। (मंत्र ३)

इन नामोंका विचार करनेसे इस ऊवरके स्वरूपका पता लग सकता है और नियम होता है कि यह वर्णन शीतऊवर अग्नि मरीया आज्ञाक कहते हैं इसका ही है।

परेके पाप जल छड़ता न रहे, परेके पापकी भूमि अच्छी रहे और किसी भी स्थानमें इस रोगकी उत्पत्ति होने योग्य परिस्थिति न हो, इसी प्रकार आयुमें और आयुके आश्रय में

स्थान योग्य और आरोग्य कारक हों, जिससे यह रोग उत्पन्न ही न होगा । क्योंकि यह ज्वर जलके दलदलसे उत्पन्न होता है । इसीलिये " जल देवताका पुत्र " इसका एक नाम इसी सूक्तमें दिया है । यदि पाठक इसका योग्य विचार करेंगे तो उनको हमसे बचनेका उपाय ज्ञात हो सकता है । आशा है कि वे इसका विचार करेंगे और अपने आपको इससे बचावेंगे ॥

नमः शब्द ।

इस सूक्तके अंतिम मंत्रमें " नमः " शब्द तीनवार आया

है । यहाँका यह नमनवाचक शब्द श्रातक मनुष्यको दूर रखनेके लिये किये जानेवाले नमस्कारके समान उस ज्वरसे बचनेका भाव सूचित करता है ऐसा हमारा ख्याल है । कोशोंमें " नमस्कर, नमस्कारी " शब्द औपधियोंके भी वाचक हैं । यदि " नमः " शब्दसे किसी औपधीका बोध होता हो तो वह खोज करवा चाहिये । " नमः " शब्दके अर्थ " नमस्कार, अर्च, श्रद्धा, दण्ड " इतने प्रसिद्ध हैं, " नमस्कर, नमस्कार, नमस्कारी " ये शब्द औपधियोंके भी वाचक हैं । अतः इस विषयका अव्ययण वैध लोग करें ।

सुख प्राप्ति सूक्त ।

(२६)

(ऋषिः—ब्रह्मा । देवताः— इंद्रादयः)

आरे ३ सावस्मदस्तु हेतिर्देवांसो अस्त । आरे अश्मा यमस्यय ॥ १ ॥
सखासावस्मम्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः सविता चित्रराचाः ॥ २ ॥
यूयं नः प्रवतो नपान्मर्हतः सूर्यस्त्वचसः । शुर्म यच्छाय सुप्रथाः ॥ ३ ॥
सुपुदतं मृदतं मृदयां नस्तनूम्यो मयस्तोकेर्म्यस्कृधि ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (देवांसः) देवो ! (अस्मै हेतिः) यह छत्र (अस्मत् आरे अस्तु) हमसे दूर रहे । और (यं अत्यय) जिते तुम कंकते हो वह (अश्मा आरे अस्तु) पत्थर भी हमसे दूर रहे ॥ १ ॥ (अस्मै रातिः) यह दानशील, (भगः) धनयुक्त सविता, (चित्ररायः इन्द्रः) विशेष ऐश्वर्यसे युक्त इन्द्र हमारा (सखा अस्तु) मित्र होवे ॥ २ ॥ हे (प्रवतः नपाय) अपने आपका रक्षण करनेवालेको न गिरानेवाले हे (सूर्यस्त्वचसः मरुतः) सूर्यके समान तेजस्वी मरुत देवो ! (यूयं ' तुम (नः) हमारे लिये (सप्रथाः दार्म्यं) विस्तृत सुख (यच्छाय ' दो ॥ ३ ॥ (सुपुदतं) तुम हमें आधाय दो, (मृदतं) हमें मुणों करो, (नः) तनूम्यः मृदय) हमारे शरीरोंको आरोग्य दो तथा (तोकेर्म्यः मयः कृधि) बालबच्चोंके लिये आनन्द करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे देवो ! आपका दंडरूप छत्र आदि हमारे ऊपर प्रयुक्त होनेका अन्तर न आवे, अर्थात् हममें ऐसा कीर्त कार्य न हो कि जिसके लिये हम दण्डके भागी बनें ॥ १ ॥ इन्द्र सविता भग आदि देवगण हमारे सहायक हों ॥ २ ॥ मरुत देव हमारा मुखा बनावें ॥ ३ ॥ सब देव हमें उत्तम आधार दें, हमारे शरीरका आरोग्य बनावें, हमारे मनकी शक्ति सुदृढत करें, हमारे बाल बच्चोंको कुशल रखें और सब प्रकारसे हमारा आनंद बनावें ॥ ४ ॥

देवोंसे मित्रता ।

इन्द्र, सविता, भग, मरुत आदि देवोंसे मित्रता करनेसे सुख मिलता है और उनके प्रतिद्वंद्व आचरण करनेसे दुःख प्राप्त होता है । इसलिये प्रथम मंत्रमें प्रार्थना है कि उन देवोंका दंड

हमपर न पड़े, और दूसरे मंत्रमें प्रार्थना है कि वे हमें देव हमारे मित्रः हमारे सहायक बनकर हमारा सुख बनावें, अपना हमारा ऐसा आचरण बने कि वे हमारे सहायक बनें और शिरोधी न हों । देखिये इसका आशय क्या है—

१ सविता-सूर्यदेव है, यह स्वयं मित्रता करनेके लिये हमारे पास नहीं आता है, परन्तु सवरे उदय होनेके समयसे अपना हाथ हमारे पास भेजता है और हमसे मिलना चाहना है, परन्तु पाठक ही ख्याल करें कि हम अपन आपको तग मकानोंमें बंद रखते हैं, और सविता देवके पवित्र हाथक पास जाते ही नहीं। सूर्य ही आरोग्य की देवता है, उसके साथ इस प्रकार विरोध करनेसे उसका वज्राघात हमपर गिरता है जिससे नाना रोगके दुःखोंमें गिरना आवश्यक होता है।

२ मरुद नाम वायु देवता का है। यह वायुदेव भी हमारी सहायता करनेके लिये हरएक स्थानमें हमारे पाहलेसे ही उपस्थित है, परन्तु हम सुधी हवा सेवन नहीं करते हैं, परिशुद्ध वायु हमारे घरों और कमरोंमें आवे ऐसी व्यवस्था नहीं करते, इतना ही नहीं परन्तु वायुको बिगाड़नेके अनत साधन निर्माण करते हैं। इत्यादि कारणोंसे वायु देवताका क्रोध हमपर होता है और उनका वज्राघात हमें सहन करना पड़ता है। जिससे विविध बीमारियां वायुके क्रोधसे हमें सता रही हैं।

इसी प्रकार अग्न्यान्त्य देवोंका संबंध जानना उचित है। इस विषयमें अथर्ववेद स्वाध्याय कां० १ सूक्त १, ९ देखिये, इन सूक्तोंके स्पष्टीकरणके प्रथममें देवताओंसे हमारे सम्बन्ध का वर्णन किया है। इसलिये इन सूक्तोंके साथ उन सूक्तोंका सत्य अवश्य देखना चाहिये।

जिस प्रकार ये षट् देवताएँ हमारे मित्र बनकर रहनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और सुख बढ़ सकता है, उसी प्रकार उनके प्रतिनिधि-जो हमारे घरारमें स्थान स्थानमें रहे हैं उनकी मित्र बनाकर रखनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और आरोग्य रह सकता है, इस विषयमें अब योगसा विवरण देखिये—

१ सविता सूर्य देव आकाशमें है, उसीका प्रतिनिधि-अग्रह रूप हमारी आँखमें तथा नाभिरूपान्ते सूर्यचक्रमें रहा है। प्रमथ, इनके काम दर्शनशक्ति और पाचनशक्तिके साथ सम्बन्धित हैं। पाठक यहाँ अनुभव करें कि ये देव यदि हमारे प्रमथ बनकर रहें तो ही स्वास्थ्य और आरोग्य प्राप्त सकता है। यदि आज किसी समय भोजन देने, अथवा रूपके विषयमें नाशित हाकर हान मार्गमें इस साराको ले चले, तो उससे प्राप्त लाभकारी शरीर का कष्टमय दशा की कल्पना पाठक ही कर सकते हैं। इसी प्रकार पेटकी पाचन शक्ति ठीक न रहनेसे

कितने रोग उत्पन्न हो सकते हैं, इसका ज्ञान पाठकोंसे छिपा नहीं है। अर्थात् शरीरस्वस्थानीय सूर्य सविताके अग्र रूप देव के सखा बनकर न रहनेसे मनुष्यकी आपत्तियोंकी संख्या कितनी बढ़ सकती है इसका पाठक ही विचार करें।

२ इसी प्रकार मरुत वायु देव फेफड़ोंमें तथा शरीरके नाना स्थानोंमें रहते हैं। यदि उनका कभी प्रकोप हो जाय तो नाना बिद्यारोंकी उत्पत्ति हो सकती है।

इसी प्रकार इन्द्रदेव अंतःकरणके स्थानमें तथा अग्न्यान्त्य देव शरीरके अग्न्यान्त्य स्थानोंमें रहते हैं। पाठक विचार करके जान सकते हैं कि उनके “सखा” बनकर रहनेसे ही मनुष्य मानकी स्वास्थ्य और आनंद प्राप्त हो सकता है। इनके विरोधी बननेसे “दुःखका पापाचार नहीं होगा।

पहले मन्त्रमें “देवोंके दृग्गते दूर रहने की” और दूसरे मन्त्रमें “देवोंसे मित्रता रखने की” सूचनाका इस प्रकार विचार पाठक करें और यह परम उपयोगी उपदेश अपने आचरणमें डालनेका प्रयत्न करें और परम आनंद प्राप्त करें। तीसरे मन्त्रका “इसी आचरणसे विस्तृत सुख मिलता है,” “यह कथन अब स्पष्ट ही हुआ है।

चतुर्थ मन्त्रमें जो कहा है कि “ये ही देव हमें सहाय देते हैं, हमें सुखी रखते हैं, हमारे शरीरका आरोग्य बढ़ाते हैं और बालबच्चोंकी भी आनंदित रखते हैं,” “यह कथन अब पाठकोंकी भी दिनेके प्रकाशके समान प्रज्वाल हुआ होगा। इसलिये स्वास्थ्य और सुखकी प्राप्तिसे इस सबे मार्गका अवलंबन पाठक करें।

विशेष सूचना।

विशेषकर पाठक इस बातका अधिक ख्याल रखें, कि वेदसुख स्वास्थ्य और आनंदके प्राप्त करनेके लिये घनादि साधन नहीं बताता है, प्रत्युत “जल, वायु, सूर्य आदि के साथ सख्य करो” यही साधन बता रहा है। यह हरएक कर सकता है। यदि घन किसीको मिले या न मा मिले, परन्तु “जल वायु और सूर्य प्रकाश” तो हरएक को मिल सकता है। इस स्वास्थ्यके अति युक्त साधनका पाठक अधिक विचार करें, विश्वकी इस ऐश्वर्यका अवलंबन मनन करें और उपदेशके अनुसार आचरण करके लाभ उठावें।

विजयी स्त्री का पराक्रम ।

(२७)

(-ऋषिः-अथर्वा । देवता-इन्द्राणी)-

अमूः पारे पृदाकंस्त्रिपत्ता निर्जरायवः ।

तासौ जरापुंभिर्व्यमस्याः कुं चपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः ॥ १ ॥

विपूज्येत् कृन्तुतां पिनाकमिव चिभ्रती । विष्वक्पुनर्भुवा मनोजसमृद्धा अघायवः ॥ २ ॥

न बहवः समशकृन्नाभिका अभिदाघुषुः । वेणोरद्गा इवाऽभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥ ३ ॥

प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गुहान् । इन्द्राण्येति प्रथमाजीतामुपिता पुरः ॥ ४ ॥

अर्थ—(अमूः पारे) वह पारमें (निर्जरायवः) शिरीसे निकली हुई (त्रि-पत्ता) तीन गुणा सात (पृदाकः) सर्पिणियोंके समान सेनाएं हैं । (तासौ) उनकी (जरापुंभिः) केंचुलियोंसे (व्ययं) हम (अघ—आयोः परिपन्थिनः) पाप, दुष्टघनुकी (अक्षयौ) दोनों आखें (अपि व्ययामसि) ठके देते हैं ॥ १ ॥ (पिनाकं इव चिभ्रती) घनुष्य धारण करनेवाली, और घनुको (कृन्तुतां) काटने वाली क्षीरसेना (विषुनी पट्ट) चारों ओर आगे बढ़े । जिससे (पुनर्भुवा) फिर इक्षुणी से हुई घनुसेनाका (मनः विष्वक्) मन इधर उधर हो जावे । और सबसे (अघायवः) पापी घनु (असमृद्धा) निर्धन हो जावे ॥ २ ॥ (बहवः न समशकृन्) बहुत घनु, भी उनके सामने ठहर नहीं सकते । फिर (अर्भकाः) जो बालक हैं वे (न अभि दाघुः) धैर्यही नहीं कर सकते । (वेणोः अद्गाः इव) बांसके अंडरोंके समान (अभितः) सब ओरसे (अघायवः) पापीलेख (असमृद्धाः) निर्धन होंगे ॥ ३ ॥ हे (पादौ) दोनों पांवों ! (प्रेतं) आगे बढ़ो, (प्र स्फुरतं) फुरती करो, (पृणतः पृहात् वहतं) संतोष देनेवाले चरंकि प्रति हमें पहुंचवाओ । (अजीता) बिना जीती, (अनुपिता) बिना छड़ी हुई और (प्रथमा, मुख्या बनी हुई (इन्द्राणी) महारानी (पुरः पट्ट) सबके आगे बढ़े ॥ ४ ॥

भावार्थ—केंचुलीसे बाहर आयी हुई सर्पिणियोंके समान चपल सेनाएं तीन गुने सात विभागोंमें विभक्त होकर युद्धके लिये छिद्र हैं, उनकी हलचलोंसे हम सब पापी दुष्टोंकी आखें बंद कर देते हैं ॥ १ ॥ शत्रु धारण करनेवाली और घनुको शत्रुसेनाओं कीतरी सेना चारों दिशाओंमें आगे बढ़े, जिससे घनुसेनाका मन तितर बितर हो जावे और सब पापी घनु निर्धन हो जावें ॥ २ ॥ ऐसी छत्र बीतोंकी सेनाके सम्मुख बहुत घनु भी ठहर नहीं सकते फिर कमबोर बालक कैसे ठहर सकेंगे ? बांसके बीमल और अगल अंडरोंके समान चारों ओरसे पापी घनु घनहीन होकर नाशको प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥ विजयी अपराजित और न छड़ी गई बाँर श्री महारानी मुख्या बनकर आगे बढ़े, इतर लोग उसके पीछे चले, हरएक वीरके पांव आगे बढ़ें, चारोंमें फुरी चडे और घट शोग संतोष करनेवालोंके धौतक पहुंच जाय ॥ ४ ॥

इन्द्राणी ।

“ इन्द्र ” शत्रु राजा का नावक है जैसा-जन्द्र (मनुष्यों-का राजा) शूरेन्द्र (मुणोंका राजा), खगेन्द्र (पाशियोंका-राजा) इत्यादि । केवल इन्द्र शब्द भी राजाका ही नावक है, और “ इन्द्राणी ” शब्द इन्द्रकी रानी, राजाकी रानी, महारानी, पत्नी ” का नावक है । यह इन्द्राणी सेनाधी प्रेरक देवी है यह

सात वैशिष्ट्य संज्ञितार्थ कही है देखिये—

इन्द्राणी के सेनाधि देवता । मे- सं० ११/१/११
“ इन्द्राणी सेनाधि देवता है । ” क्योंकि इसकी देवताके वैदिक अथवा पुराणिक विधानों और विश्व प्राप्त करते हैं ।

वीर स्त्री ।

“ इन्द्राणी अर्थात् पत्नी सेनाधी मुख्या बनकर सेनाधि

प्रोत्साहन देती हुई आगे चले, हरएकके पाँव आगे बढ़े, हाँ एकदम मन उत्साहसे युक्त रहे, संगीत बढाने वाले सज्जनोंके घरोंमें ही लोग जाय । ” परन्तु जो लोग सयोगको कम करने वाले, उत्साहका नाश करने वाले, और मनकी आशाका घात करनेवाले हों उनका पाम कोई न जावे, क्योंकि ऐसे लोग अपने हीन भावसे मनुष्योंको निरुत्साहित ही करते हैं । यह मंत्र ४ का भाव विचार करने योग्य है ।

जिस राष्ट्रमें क्रियाशील ऐसी शूर और दक्ष हाँगी वह राष्ट्र सदा विजयी ही होगा इसमें क्या संदेह है ? जिस देश में क्रिया सेनाकी चला सकेंगी उस देशके पुत्र कितने शूर और दैवी भी होंगे । क्या ऐसा वीर क्रिओंको कोई हीन मनवाला आदमी धमका सकता है और ऐसी शूर क्रिओंकी किसी स्थानपर कोई बेइज्जती कर सकता है । इसलिये आत्मसमान रखनेका इच्छा करने वालोंको उचित है, कि वे स्वयं मर्द बनें और अपनी क्रिओंसे भी ऐसी शिक्षा दें कि वे भी शूरवीर बनकर अपने समान बनें रहना कर सकें ।

“ हाथमें चाक्रे धारण करती हुई, शत्रुको काटती हुई आगे बढ़े, जिसका वेग देखकर शत्रुका मन उत्साहहित होवे और शत्रु निर्भय अर्थात् परास्त हो जायें । ” यह त्रितीय मन्त्रका भाव भी वस्तु मन्त्रके साथ देखने योग्य है । क्योंकि यह मन्त्र भी वीर आका पराक्रम ही बता रहा है । यह सेना का वर्णन करता हुआ भी वीर कीर्त्तिका वर्णन करता है । (मन्त्र)

वीरक्रिओंको अपना केंदुलासे निरन्तर हुई सर्पिणीकी इस सूक्ष्म नदी है । स्वभावतः सर्पिणी बड़ी तेज रहती है और अति कुतूहलसे शत्रुपर हमला करती है । परन्तु जिस समय वह केंदुलासे बाहर आती है उस समय अतिवेगशील और अतिचपल रहती है क्योंकि इस समय यह नवमीजनसंयुक्त होती है । वीर जो ऐसी ही होती है । जो स्वभावतः चपल होती है, परन्तु जिस समय कार्यवश राष्ट्रीय आवश्यकते प्रेरित होकर, आत्मसमानकी रक्षाके लिये कोई भीरा भी अपने अतृप्य रूपसे केंदुलासे बाहर आती है, उस समय उसकी तेजस्विताका वर्णन करना देती है । वह उस समय संयुक्त सर्पिणीकी आवृत्ति समझती हुई, शत्रुकी समान तेजस्विनी बनकर वीरसेनामण्डल में प्रविष्ट करती है । उस समयका उत्साह वीर पुरुष ही सम्प्राप्तसे जान सकते हैं । “ उसके तेजसे शत्रुकी आँखें ही भी धन जाती है ” और उसके साथ शत्रु नि सत्त्व हो जाते हैं । (मंत्र १)

जहाँ ऐसी वीरगणनाई समर्थ है उन लोगोंके सामने बड़े बड़े शत्रु भी डर नहीं सकते, फिर अल्प शक्तिवाले कमजोर मनुष्योंकी बात ही क्या है ? पासके शत्रुओंके समान उनके शत्रु नष्टभ्रष्ट ही हो जाते हैं । ” (मन्त्र २)

शत्रुवाचक शब्द ।

इस सूक्ष्म शत्रुवाचक वृक्ष शब्द है सनद्या विचार यहाँ करना आवश्यक है—

१ अथायु = आयु भर पाप कर्म करनेवाला ।

२ परिपन्थिन् = बटमार, घुरे मार्गसे चलनेवाला ।

पापीलोग ये हैं और इनके घुरे आचरणके कारण ही वे शत्रुत्व करने योग्य हैं । “ असमृद्धा अथायव ” यह शब्द प्रयोग इस सूक्ष्मसे दीवार आया है । “ पापी समृद्धिसे रहित होते हैं । ” यह इच्छा भाव है । पापसे कभी वृद्धि नहीं होगी । पापसे मनुष्य गिरता ही जाता है । यह भाव इसमें देखने योग्य है । जो मनुष्य पाप कर्म द्वारा धनाश्रय बनना चाहते हैं उनको यह मन्त्र भाग देखना योग्य है । यह मन्त्र उपदेश दे रहा है कि “ पापी कभी उन्नत नहीं होगा, ” यदि किसी अवस्थासे वह धनवान् हुआ, तो भी वह चरका धन उसके नाशका ही होय नि संदेह बनेगा । तात्पर्य परिणामकी दृष्टिसे वह स्पष्ट ही समझना चाहिये कि पापी लोग अवश्य ही नाशको प्राप्त होंगे ।

तीन गुणा सात ।

देनाके तीन गुणा सात विभाग हैं । रथयोधी, गजयोधी, अश्वयोधी, पदाती, दूर्गयोधी, जलयोधी तथा कूटयोधी ये सात प्रकारके सैनिक होते हैं । प्रत्येकमें अधिकारी, प्रत्यक्ष युद्धकारी, और सहायक इन तीन भेदोंसे तान गुणा सात सैनिक होते हैं ।

निर्जैरायु ।

“ अथायु शब्द शिरी, जैराका वाचक है पशु या श्रेयामें प्रयुक्त है । यहाँ इसका अर्थ (अरा+आयु) इन्द्रावस्था अथवा आर्णवा किंवा यक्षराट्, तथा आयुष्य । (नि+अरा-आयु) जो जीर्णता, यक्षराट्, इन्द्रावस्था अथवा आयुकी पूर्वा न करने वाले होते हैं, अर्थात् जो अपने जीने मरनेकी पूर्वाह न करने लड़ते हैं, जो अपनी अवस्थाकी तथा सुखदुःख की पूर्वाह न करते हुए अपनेयुवाके लिये ही लड़ते रहते हैं उनको “ निर्जैरायु ” अर्थात् “ अरा और आयुके विचारसे मुक्त ” कहते हैं । जीवित की आशा छोड़कर लड़नेवाले धैरिक ।

इस सूक्ष्म मन्त्र वीर लो विषयक तथा सेना विषयक अर्थ बताते हैं, इसलिये ये मन्त्र विशेष मननके साथ पढ़ने योग्य हैं ।

तथा इसमें कई शब्द द्वेय अर्थ बताते वाले भी हैं जैसा कि ऊपर बताया है । इन सब बातोंका विचार करके यदि पाठक इस सूक्तका अभ्यास करेंगे तो उनको बहुत बोध मिल सकता है ।

यह सूक्त “स्वस्त्ययन गण” का है इसलिये इस गणके आधा है कि इस प्रकार पाठक अपने रास्तेमें वीरा स्त्री और अन्य सुखोंके साथ पाठक इसका विचार करें ।

दुष्ट नाशन सूक्त ।

(२८)

(ऋषिः-चातनः । देवता-स्वस्त्ययनम् ।)

उप प्रागादिवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः । दहन्प ह्याविनो यातुधानान्किमीदिनः ॥ १ ॥

प्रति दह यातुधानान्प्रति देव किमीदिनः । प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥ २ ॥

या शशाप शपनेन याधं मूर्मादधे । या रसस्य हरणाय जातसारिमे तोकमत्त सा ॥ ३ ॥

पुत्रमेषु यातुधानीः स्वसारमुत् नप्त्यम् ।

अथा मिथो विक्रेष्यो ऋ वि प्रता यातुधान्यो ऋ वि तृक्षन्तामराय्यः ॥ ४ ॥

अर्थ- (अमीन चातनः) लोगोंको दूर करनेवाला और (रक्षोहा) राक्षसोंका नाश करनेवाला अग्निदेव (किमीदिनः) सदा भूखोंको (यातुधानान्) लुटेरों को तथा (ह्याविनः) दुमुखे कार्टियोंको (अप दहन्) जलाता हुआ (उप प्रगात्) पास पहुंचा है ॥ १ ॥ हे अग्निदेवो (यातुधानान् प्रति दह) लुटेरों को जलादे तथा (किमीदिन प्रति) सदा भूखोंको भी जलादे । हे (कृष्णवर्तने) कृष्ण मार्गवाले अग्निदेवो (प्रतीचीः यातुधान्यः) संमुख आनेवाली लुटेरी श्रियोंको भी (संदह) ठीक जला दो ॥ २ ॥ यह दुष्ट लुटेरी श्रियां (शपनेन शशाप) शापसे शाप देती हैं, (या अधं मूर् मादधे) जो पाप ही प्रारंभसे स्वीकारती हैं, (या रसस्य हरणाय) जो रस पानेके लिये (जातं खोर्कं आरमे) जन्मे हुए बालकको खाया आरंभ करती हैं और (सा अन्तु) वह पुत्र खाती है ॥ ३ ॥ (यातुधानीः) शरीरी स्त्री (पुत्रं नप्तु) पुत्र खाती है । (स्वसारं उत् नप्त्यम्) बहिन को तथा शरीरी को खाती है । (अय) और (विक्रेष्यः) केश वस्त्र वस्त्र कर (मिय. श्वर), आपसमें संग्रहता है । (अराय्यः यातुधानीः) दानभाव-रहित पातकों स्त्री (विवृक्षन्तां), आपसमें मार गंड करती हैं ॥ ४ ॥

मातापत्य-रोग दूर करनेमें समर्थ अर्थात् उत्तम श्रेष्ठ, आश्रय भावके दाने वाला, अग्निदेव समान तेजस्वी, उपदेशक शक्ति लुटेरे तथा कपटियोंके दूर करता हुआ आगे चले ॥ १ ॥ हे उपदेशक ! तू लुटेरे स्थायी दुष्टोंको नाश कर, तथा जानने आने वाली दुष्ट श्रियोंको भी दुष्टता दूर कर दे ॥ २ ॥ इन दुष्टोंका नष्टन यह है कि वे आनसमें गालियां देते रहते हैं, शत्रु काम पाप देते हैं, यहातक वे क्रूर होने हैं कि रक्त पीनेकी इच्छाने नये उत्पन्न बालकको ही भूषणा आरंभ कर देते हैं ॥ ३ ॥ इनकी स्त्री अपने पुत्रको खाती है, बहिन तथा नर्सको भी खाती है, तथा एक दूसरेके साथ वस्त्रवस्त्र आपसमें ही सज्जती रहती है ॥ ४ ॥

पूर्वापर संबंध ।

इसी प्रथम श्लोकके ७ तथा ८ में उपरती व्याख्याके उपदेशक ही है तथा वह किंच प्रचार जाता है अर्थात्

प्रथममें सर्वप्रचार प्रकरणमें अग्निदेव शिव प्रचार अर्थात्

दुष्टोंको सुधारता है; इत्यादि सब विषय अतिस्पष्ट कर दिया है। इसलिये इन ७ और ४ वें सूक्तके स्पर्शकरण पाठक यहाँ पढ़िके पढ़ें और पश्चात् यह सूक्त पढ़ें

संस्कृतमें "वि द्रघ" (विशेष प्रकारसे जलाहुआ) यह शब्द "अति विद्वान्" के लिये प्रयुक्त होता है। यहाँ अज्ञानका दहन जलन आदि अर्थ समझना उचित है। जिस प्रकार अग्नि लोहे आदिको तपाकर शुद्ध करता है उसी प्रकार उपदेशक द्वारा प्रेरित ज्ञानार्थि अज्ञानी मनुष्योंके अज्ञानको जलाकर शुद्ध करता है। इस कारण "ब्राह्मण" के लिये वेदमें "अग्नि" शब्द आता है। ब्राह्मण और क्षत्रियके वाचक वेदमें "अग्नि और इन्द्र" शब्द प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मणधर्म अग्नि देवताके और क्षात्रधर्म इन्द्र देवताके सूक्तोंसे प्रकट होता है। इत्यादि बातें विस्तारसे ७ और ८ वें सूक्तकी व्याख्याके प्रसंगमें स्पष्ट कर दी हैं। वहाँ धर्म प्रचार की बात इस सूक्तमें है, इसलिये पाठक उक्त पूर्व सूक्तोंके साथ इस सूक्तका संबंध देखें।

इस सूक्तमें "अमीव-जातनः" (रोगोंका दूर करनेवाला) यह शब्द विशेषण रूपमें आया है। यह यहाँ चिकित्सा द्वारा रोग दूर कर सकने वाले उत्तम वैद्यका बोध करता है। उपदेशक जैसा शास्त्रमें प्रवीण आदिये वैसा ही वह उत्तम वैद्य भी आदिये। वैद्य होनेसे वह रोगोंका चिकित्सा करता हुआ धर्मका प्रचार कर सकता है। धर्म प्रचारकके अन्य गुण सूक्त ७, ८ में देखिये।

दुर्जनोंके लक्षण।

इस सूक्तमें दुर्जनोंके पूर्वकी अपेक्षा कुछ अधिक लक्षण कहे हैं जो सूक्त ७, ८ में कहे लक्षणोंकी पूर्ति कर रहे हैं; इस लिये उनका विचार यहाँ करते हैं—

१ इयतिवन्-मनमें एक भाव और बाहर एक भाव ऐसा फट करेवाले। (मं-१) "किमिदं, यागुपायु" इन चन्दोंका भाव सूक्त ७, ८ की व्याख्याके प्रसंगमें बताया ही है। इस गून्ममें दुर्जनोंके कई व्यवहार बताये हैं, वे भी वहाँ देखिये—

२ आपनेन क्षापाय-आपसे क्षाप देना, घुरे शब्द बोलना, गान्धिया देना इ०। मं ३

३ अयं मूर्त आदये-प्रार्थनमें पापका भाव रखता है। हर एक धर्ममें पाप रखिये ही उगका प्रार्थन करना।

४ रसय हरणय जायं तोके आरिमे-रक्त पीनेके क्रिये प्रयत्न करनेकी क्षात्री है।

५ यातुधानी पुत्रं स्वसारं नप्यं-अति-यह दुष्ट आसुते। छो बच्चा, बहिन अथवा गता की खाती है।

६ विकेदयः मिथः विघ्नतां, वितृहन्तां-आपसमें केश पकड़ कर परस्पर मार घोट करती हैं।

ये सब दुर्जन छोपुच्छोंके लक्षण हैं। बालबच्चोंको खानेवाले लोग इस समय अफिममें कई स्थानोंपर हैं, परंतु अन्य देशोंमें अब ये नहीं हैं। जहाँ कहीं ये हों, वहाँ धर्मोपदेशक चला जावे और उनको उपदेश देकर उत्तम मनुष्य बना देवे, ज्ञानी बनावे, उनही दुष्टता दूर करके उनको सज्जन बना देवे।

ऐसे मनुष्य-मशक दुष्ट, क्रूर, हिंसक, मनुष्योंमें भी आकर धर्मोपदेश देकर उनको सुधारनेका यत्न करतका उपदेश होनेसे इससे कुछ सुधरे हुए किंचित् ऊपरी श्रेणीके मनुष्योंमें धर्म जागृति करनेका आशय स्वयंही स्पष्ट हो जाता है।

दुष्टोंका सुधार।

दुष्ट लोगोंमें दुष्टता होनेके कारण होवे असभ्य; समझे जाते हैं। उनकी दुष्टता उपदेश आदि द्वारा हटाकर उनको सभ्य बनाना ब्राह्मणों हैं और उनसे दूँ देकर बराबरे उनका सुधार करनेका बल करना क्षात्र मार्ग है। वेदमें अग्निदेवता से ब्राह्मणों और इन्द्र देवतासे क्षात्र मार्ग बताया है। जलावे या तपाते तो दोनों ही हैं, परंतु एक उपदेशद्वारा उनके अज्ञानको जलाता है और दूसरा शस्त्र दण्ड और इसी प्रकार के कठोर उपायोंसे पीका देकर उनको सुधारता है।

सुधार तो दोनोंमें होता है, परंतु क्षत्रियोंके दंडद्वारा तपाने के उपायसे ब्राह्मणोंके ज्ञानाग्निद्वारा तपानेका उपाय अधिक उत्तम है और इसमें बड़ भी कम हैं।

पाठक अग्नि शब्दसे आगका ग्रहण करके उससे दुर्जनों के जलनेका भाव इस सूक्तसे न निशंकें, क्योंकि इस सूक्तका संबंध आगेपाठके अनेक सूक्तोंसे है और अग्निके गुणोंके प्रमाण देकर ज्ञानी उपदेशक ही अग्निशब्दसे ऐसे सूक्तोंमें अग्निदंड है यह सूक्त ७, ८ के प्रसंगमें स्पष्ट बताया ही है। इसके अतिरिक्त "रोग दूर करनेवाला अग्नि" इस सूक्तमें कहा है। यदि यह उन लोगोंको जलाही देवे तो उल्टे रोगमुक्त, करनेके गुणोंसे क्या लाभ हो सकता है। इसलिये यह अग्निध जलान "ज्ञानाग्निसे अज्ञाननाश करना" ही है। दुष्ट गुणधर्मोंकी हराना और वहाँ अशुभ गुण धर्म स्थापित करना ही यही अग्निदंड है और इसीलिये रोगमुक्त करनेवाला सभ्य

वैद्यही-अभ्योपदेशकका कार्य करे, यह सूचना इस सन्तर्भे हमें मिलती है । क्योंकि-रोगीके मनपर वैद्यके उपदेशका जैसा असर होता है वैसा वक्तोके व्याख्यानसे श्रोताओंपर नहीं होता । रोगीका मन आतुर होता है इसलिये श्रवण भी हुई उत्तम बात उसके मनमें जम जाती है और इस कारण वह शीघ्र-शीघ्र सुधर जाता है ॥

‘खावे’ ऐसा होता है-परंतु “शराप-आदधे” इन क्रियाओंके अनुसंधानसे “अनु” के स्थानपर “अति” मानना युक्त है । क्योंकि-यहाँ अनुधानोंकी रीति बताई है जैसे (शराप) शार देते रहते हैं, (अर्थ आदधे) पाप स्वीकारते रहते हैं, (तोंक अति) बचेको खाते रहते हैं अर्थात् यह उनकी रीति है । पूर्वोक्त संबंधसे यह अर्थ यहां अभीष्ट है ऐसा हमें प्रतीत होगा । तथापि पाठक अधिक योग्य और कोई अन्य बात इस सूक्तमें देखेंगे, तो अर्थकी खोज होनेमें अवश्य सहायता होगी

१ [यह तृतीय और चतुर्थ संश्लेष “अनु” शब्द है जिसका अर्थ

इति पंचम अनुवाक-समाप्त ।

राष्ट्र-संवर्धन-सूक्त ।

(२९)

(ऋषिः-वसिष्ठः । देवता-अभीवर्तो मणिः)

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावुधे । तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धये ॥ १ ॥
अभिवृत्त्यं सपत्नानभि या नो अरांतयः । अभि पृतन्यन्तं तिष्ठामि यो नो दुरस्पति ॥ २ ॥
अभि त्वा देवः संविताभि सोमो अवीनृध्व । अभि त्वा विश्वा मृतान्यभीवर्तो यथासंति ॥ ६ ॥
अभीवर्तो अभिप्रवः सपत्नस्यर्षणो मणिः । राष्ट्राय मह्यं वष्यतां सपत्नेभ्यः पराश्रवे ॥ ४ ॥
उदसौ सूर्यो अगादुदितं मांभुक् घर्चः । यथाहं शत्रूहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥ ५ ॥
सपत्नस्यर्षणो वृषामिराष्ट्रो विपासहिः । यथाहमेपां धीराणां विराजानि जनेस्य च ॥ ६ ॥

अर्थ-हे (ब्रह्मणस्पते) शान्ति पुत्र ! (येन इन्द्रः अभिवावुधे) जिससे इन्द्रका मित्रयजुश्चा मा, (तेन अभीवर्तेन मणिना) उस विषय करनेके मणिसे (अस्मान्) हमको (राष्ट्राय अभिवर्धये) राष्ट्रके निम्न बड़ा से १-१ (याः) आभारापण) को हमारे अनु है उनकी तथा अन्य (सपत्नान्) वैरियोंकी (अभिवृत्त्यं) पराभूत करके, (याः नः) दुरस्पति) को हमसे दुष्टताका आचरण करता है तथा जो (पृतन्यन्तं) समावे हमपर बड़ाई करता है उससे (अभि अभि विह) मुझ करनेके निम्ने स्थिर हो आओ ॥ २ ॥ (सविता देवः) सूर्य देवसे तथा (सोमः) चंद्रमा देवसे जो (त्वा) तुम (अभि अभि-अवीनृध्व) सब प्रशंसित बड़ा है । (विश्वा मृतानि) सब मृत (त्वा अभि) तुमसे बड़ा रहे हैं, जिससे-तु (अभिप्रवः) आ-सि) अनुभवे दशनिबला हुआ है ॥ ३ ॥ (अभिप्रवः)-अनुभवे चलेवाला, (अभिप्रवः) अनुभवा परामर करनेवाला, (सपत्नस्यर्षणः) प्रतिशत्रुकी आश करनेवाला यह (मणिः) मणि है । यह (सपत्नेभ्यः पराश्रवे) प्रतिशत्रुकी पराभूत करनेके निम्ने तथा (राष्ट्राय) राष्ट्रके अनुदयके निम्ने (मांभुक् घर्चः) मुझपर बाधा करो ॥ ४ ॥ (अवीनृध्वः) बड़ा अनु-दरदरसे प्राप्त हुआ है, (उदसौ मांभुक् घर्चः) यह मेरा बचन भी प्रष्ट हुआ है, (त्वा) जिससे (अहं सपत्नः) अनुभवा परा करनेवाला, (सपत्नहा) प्रतिशत्रुका घात करनेवाला होकर मैं (सपत्नः) आभारि) अनुपरीत शत्रु ॥ ५ ॥

(यथा) जिससे (अहं) मैं (सफल-क्षणः) प्रतिपक्षियोंका नाश करनेवाला, (वृषा) बलवान और (विपासहिः) विजयी होकर (अमिराष्ट्रः) राष्ट्रके अनुकूल बनकर तथा राष्ट्रकी सहायता प्राप्त करके (एषां वीरानां) इन वीरोंका (जनस्य च) और सब लोगोंका (वि राजानि) विशेष प्रकारसे रंजन करने वाला राजा होके ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे राष्ट्रके ज्ञानी पुरुषो ! जिस राजचिह्न रूपी मणिसे धारण करके इन्द्र विजयी हुआ था, उसी विजयी मणिसे मैं राष्ट्रके हितके लिये बढा दिये ॥ १ ॥ जो अनुदार शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी हैं उनके परास्त करनेके लिये; तथा जो हमसे दुरा व्यवहार करते हैं और जो हमपर सेना भेजकर चढाई करते हैं उनको ठाक करनेके लिये अपनी तैयारी करके आगे बढो ॥ २ ॥ सूर्य चन्द्र आदि देव तथा सब भूमान् तुमसे सहायता देकर बढा रहे हैं, जिससे तू सब शत्रुओंको दबानेवाला बन गया है। ॥ ३ ॥ शत्रुको घेरनेवाला, बैरागा परामर्ष करनेवाला, प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला यह राजचिह्न रूपी मणि है। इसलिये प्रतिपक्षियोंका परामर्ष करनेके लिये और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके लिये मुत्तपर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा यह सूर्य उदय हुआ है, वैसा यह मेरा सचन भी प्रकट हुआ है, अब तुम ऐसा करो कि जिससे मैं शत्रुका नाश करनेवाला, प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला होकर शत्रु रहित हो जाऊँ ॥ ५ ॥ मैं प्रतिपक्षियोंका नाश करके बलवान बनकर, विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और अपने राष्ट्रके सब लोगोंका हित साधन कहूँगा ॥ ६ ॥

अनुसन्धान

यह सूक्त राज प्रकरणका है इसलिये इसी काँके अपराजित गणके सब सूक्तोंके साथ इसका विचार करना योग्य है। तथा आगे आनेवाले राज प्रकरणके सूक्तोंके साथ भी इसका संबंध देखने योग्य है। इससे पूर्व अपराजित गणके सूक्त २. १९, २०, २१ ये आये हैं, इसका आतिरिक्त अमर गण, सामागिक गणके सूक्तोंके साथ भी इन सूक्तोंका विचार करना चाहिये।

अभीवर्त मणि ।

जिस प्रकार राजके चिन्ह राजचक्र, छत्र, चामर आदि होते हैं उसी प्रकारका 'अभीवर्त मणि' भी एक राजचिन्ह है। इसके धारण करनेके समय यह सूक्त बोला जाता है।

देवीका राजा इन्द्र है, उसका पुरोहित बृहस्पति ब्रह्मरूपति है। यह पुरोहित इन्द्रके चर्यावर यह अभीवर्त मणि बांधता है। अर्थात् राज पुरोहित ही राजाके चर्यावर यह राजचिन्ह रूपी मणि बांध देवे। यही संबंध देवनेत्रे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह सूक्त संवाद रूप है। यह संवाद इस प्रकार है।

इस सूक्तका संवाद ।

राजा—हे पुरोहित जी ! जो अभीवर्त मणि इन्द्रके चर्यावर देव बृह बृहस्पति बांध दिया था और जिससे इन्द्र दिग्विजयी हुआ था, मैं राजचिन्हरूपी मणि मेरे चर्यावर आर धारण कर दिये, जिससे मैं राष्ट्रका वर्धन करनेके समर्थ हो जाऊँ ॥ १ ॥

पुरोहित—हे राजा ! जो अनुदार शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी

हैं तथा जो हमारे राष्ट्रके साथ दुरा व्यवहार करते हैं और हमपर सम्पत्ति चढाई करते हैं उन्हींको परास्त करनेकी तैयारी करो ॥ २ ॥ सूर्य, चंद्र तथा सब भूत तुम्हारी सहायता कर रहें ॥ जिससे तू शत्रुको दबा सकता है ॥ ३ ॥

राजा—पुरोहित जी ! यह राजचिन्ह रूपी मणि शत्रुको घेरने, बैरीका परामर्ष करने और प्रतिपक्षियोंको हटानेका सामर्थ्यदेनेवाला है। इसलिये विरोधियोंका परामर्ष और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके कार्यमें मुझे समर्थ बनानेके लिये मुत्तपर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा सूर्य उदयको प्राप्त होता है वैसाही मेरेसे शत्रुओंका प्रकाश होता है, इसलिये आप ऐसा करो कि जिससे मैं शत्रुका नाश कर सकूँ ॥ ५ ॥ मैं बलवान बनकर प्रतिपक्षियोंको दूर करूँगा और विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और राष्ट्रका हित कहूँगा ॥ ६ ॥

पाठक यह संवाद विचारसे पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें इस सूक्तका आशय सीप्रधाने आसरेगा। राजा राजचिन्ह धारण करता है, उस समय पुरोहित राजसे प्रशंसितकी कुछ बातें करनेके लिये कहते हैं और राजा भी राष्ट्रहित करनेकी प्रशंसा उस समय करता है। पुरोहित ब्राह्मणशक्ति और राज्य सार्व शक्ति प्रतिनिधि है। राष्ट्रकी ब्राह्मणशक्ति पुरोहित मुखमें राजचक्रैश्वर्यका उपदेश राजाको करती है, राजचक्रैश्वर्य राजाका रखना वह न रखना राष्ट्रकी ब्राह्मणशक्ति अर्थात् राजा चाहिये। अर्थात् ब्राह्मणशक्ति आधीन शासकशक्ति राजनी चाहिये। यह बात यहाँ प्रकटित होती है। ज्ञानी लोगपर

शरीर ही दुर्लभ न रहे, परंतु यह ज्ञानलिंगोंके आधीन कार्य करें । राष्ट्रकी (Civilian military) भाषा तथा क्षात्र शक्ति एक दूसरेके साथ कैसा बर्ताव करे, यह इस सूक्तमें स्पष्ट हुआ है । शासकशक्ति द्वारा संमत हुआ राजा ही राजगद्दीपर आधिक्यता है अन्य नहीं ।

राजाके गुण ।

इस सूक्तमें राजाके गुण बताये हैं, वे निम्न शब्दोंद्वारा पाठक देख सकते हैं—

१ अस्मान् राष्ट्राय अभिवर्धय=इसारी शक्ति राष्ट्रकी उन्नति के लिये बड़े अर्थात् राजाके अंदर जो शक्ति बसती है वह राष्ट्रकी उन्नतिके लिये ही कार्यमें लगे, यही भाव राजाके अंदर रहे । अपनी बड़ी हुई तन मन धन आदि सब शक्ति अपने भोगके लिये नहीं है प्रत्युत राष्ट्रकी कल्याणके लिये ही है यह जिस राजाका निश्चय होगा वही सच्चा राजा कहा जासकता है ॥ (मंत्र १॥)

२ राष्ट्राय महान् वप्पतां सप्तनेभ्यः पशुभुवे=राष्ट्रकी उन्नति और वैरियोंका पराभव करनेके लिये राजचिह्नरूप मणि मेरे (राजाके) शरीरपर बांधा जावे । मणि आदि रत्न तथा अन्य राजचिह्न जो राजा धारण करता है ॥ अपनी सोमा बढाने के लिये नहीं है, प्रत्युत वे केवल दो ही उद्देश्य के लिये हैं, (१) राष्ट्रकी उन्नति हो, और (२) जनताके घनु दूर धिये जाय । राजाके अंदर यह शक्ति उत्पन्न करनेके लिये ही उसपर राजचिह्न चढाये जाते हैं । (मंत्र ४)

३ अभिराष्ट्रः—(अभितः राष्ट्रं यस्य) जिसके चारों ओर राष्ट्र है, ऐसा राजा हो । अर्थात् राजा अपने राष्ट्रमें रहे, राष्ट्रके साथ रहे, राष्ट्रका वक्ता रहे । राजासहित राष्ट्रहित ही हो, और राष्ट्रका हित राजहित हो, अर्थात् दोनोंके हित संबंधमें परक न रहे । राजाके लिये राष्ट्र अनुरक्त रहे और राष्ट्रके लिये राजा अनुरक्त हो । राष्ट्रहितका उभयपक्ष अपने सामने रखनेवाले राजास्य बोध इस शब्दसे होता है । जिस राजाके लिये अपनी जान देनेके लिये राष्ट्र तैयार होता है उस राजाका यह नाम है । यह शब्द आदर्श राजाका वाचक है । (मंत्र ६)

४ घनुह—घनुका नाश करने वाला । (मं० ५)

५ असत्पान—अंधरेके प्रतिगंभीर विरोधी जिसको न हो । (मं० ५)

६ सत्पनना—प्रतिगंभीर नाश करनेवाला, अर्थात् प्रतिगंभीरता पराभव करने वाला । (मंत्र ५) "सत्पन-सत्पनः" ११ (अ. छ. भा. बं० १)

यह शब्दभी इसी अर्थमें (मं० ६ में) आया है ।

७ वृषा—चलवान् । सप्त प्रकारके बलोंसे युक्त राजा होना चाहिये, अन्यथा वह परास्त होगा । (मं० ६)

८ विषासहिः—घनुके हमले होनेपर उनको सहन करके अपने स्थानसे पीछे न हटने वाला । (मं० ६)

९ वीराणां जनस्य च विराजानि—राष्ट्रके शरीर तथा राष्ट्रकी संपूर्ण जनता इन सबको संतुष्ट करनेवाला । (मं० ६)

१० प्रतिपक्षियोंको दबाना, वैरियोंका नाश करना, सेनाके साथ चढाई करनेवालेका प्रतिस्तर करना और जो दुष्ट व्यवहार करता है उसको ठीक करना आदि राजाके कर्तव्य(मंत्र० २) में कहे हैं ।

ये दस कर्तव्य राजाके इस सूक्तमें कहे हैं वे सब मनन करने योग्य हैं । ये सब कर्तव्य बड़ी मात्रातया रहे हैं कि राजा अपने भोगके लिये राजगद्दीपर नहीं आता है, प्रत्युत राष्ट्रका हित करनेके लिये ही आता है । यदि राजालोग इस सूक्त का अधिक मनन करके अपने लिये योग्य बोध लेंगे तो बहुत ही उत्तम होगा ।

राजचिह्न ।

छत्र, चामर, राजदण्ड, मणि, रत्न, रत्नमाला, मुकुट, विशेष कपडेलते, राजसभाका छाठ, हाथी, घोड़े आदि सब जो राजचिह्न रूपमें समझे जाते हैं, इन चिह्नोंके धारण करनेसे जनतापर कुछ विशेष प्रभाव पड़ता है और उस प्रभावके कारण राजाके इंद गिंद शक्ति केन्द्रीभूत हो जाती है । यद्यपि ह्वा प्रत्येक चिह्नमें कोई विशेष शक्ति नहीं होती, तथापि राजचिह्न धारण करनेवाले का धारण विचारमें भी अन्य सामान्य लोगोंकी अपेक्षा कुछ विशेष शक्ति होनेका अनुभव हरएक करता है; इसी प्रकार एक चिह्नके कारण अमूर्त राजा कायनता एक विशेष प्रभाव जनतापर पड़ता है जिस कारण राजा राजितोका केन्द्र बनता है । जिस समय अपने चिह्नोंके और शक्तियों केद्वारा राजा जाता है उस समय उसका बदमासी प्रभाव सामान्यजनता पर पड़ता है, इसी कारण राजामें शक्ति इकट्ठी होती है । इस सूक्तके श्रुत्य मंत्रमें ' यह मणि ही घनुनाश करने वाला, प्रभाव बढानेवाला, राष्ट्रहित साधन करनेवाला है ' इत्यादि कहा है, इसका अर्थ उसका प्रभाव ही जनतास्य बोध है । विषासहिः शक्ति उत्पन्न करनेके लिये ही जनता के लिये वह शक्ति कारगरिक नहीं प्रयुक्त एक विशेष सत्पनना ही उत्पन्न होती है । शत्रु राजचिह्नों को अपने हाथ में प्रभावनाशक है । अष्ट, अष्ट दण्डके अर्थसे केन्द्र—

शत्रुके लक्षण ।

इस सूक्तमें निम्नलिखित प्रकारमें शत्रुके लक्षणों का वर्णन किया है—

१ यः दुरत्ययि = जो दुष्ट व्यवहार करता है । (मं० २)

२ सपत्नः = मित्र पक्षमा मनुष्य । राष्ट्रमें जितने पक्ष होंगे, उतने पक्षवाले आपसमें सपन होंगे । सपत्न शब्द (Party Politics) पक्ष भेदका राजकारण बता रहा है ।

३ अरातिः = अनुदार, जो मनमें घेष्टभाव नहीं रखता ।

४ द्रुतमन्युः = तेजसे चढाई करनेवाला ।

इन शब्दोंके विचारसे शत्रुका पता लग सकता है । इनमें कई अन्तरके शत्रु हैं और कई बाहरके हैं ।

सबकी सहायता ।

सुतोय मंत्रमें कहा है कि " सूर्य चंद्र और सब भूतमान जिस राजाके सहायक होते हैं वह शत्रुको पराजित करता है ॥ " (मं० ३) इसमें सूर्य चंद्र आदि सप्त ऋषि सहायता बता रहे हैं, (Nature's help) निरर्गरी सहायता राजाको शक्ति एक महत्त्वपूर्ण भाग है । राष्ट्रों के ही ऐसी हो कि जहाँ शत्रुका प्रवेश सुगमतासे न हुआ करे । वह एक शक्ति ही है ।

दूसरी शक्ति (रिधा मूलानि) सब भूत मानसे प्राप्त होती है । पचमहाभूतोंसे शक्ति प्राप्त करनेकी भी बात इसमें सुगमतासे मत हो सकती है । " भूत " शब्दका दूसरा प्रभिन्न अर्थ " प्राणी, मनुष्य " ऐसा होता है । जिस राजाको राष्ट्रके सब प्राणी और सब मनुष्य सहायक हों, उसका शक्ति विशेष ही होगी, इतने क्या सदेह है ? यही सब जनताकी श्रम इच्छासे प्राप्त होनेवाली शक्ति है जो राजाको अपने पास रखनी चाहिये क्योंकि दुर्भार राजाका विरह्यायिष अवलम्बित है ।

वैदिक राजप्रकाशने विषयमें इस सूक्तमें बड़ा अच्छा उपदेश है । यदि पण्डित अधिक मनन करेग तो उनकी राजप्रकाशने बहुत उत्तम निर्देश इस सूक्तमें मिल सकते हैं ।

बने । हमारा शरीर सुदृढ हो, हमारी आयु दीर्घ हो, हमारे इन्द्रिय अधिक कार्य क्षम बनें, हमारा मन मननशक्तिसे युक्त हो, हमारी बुद्धी ज्ञानसे परिपूर्ण हो, हममें आभिक बल बढ़े, तथा हमारी नैतिक, सामाजिक तथा अर्थशास्त्र शक्तियां बढ़ें । ये सब शक्तियां इसलिये बढ़ें कि इनके योगसे हमारा राष्ट्र अभूत-दयसे युक्त हो । इन शक्तियोंकी वृद्धि इसलिये नहीं करनी है कि इनसे केवल व्यक्तिता ही सुख बढ़े, केवल एक जातिके हितमें अधिकार रहे, या किसी एक कुलके पास परम अधिकार हो जाय; परन्तु ये शक्तियां इसलिये बढ़ानी चाहिये कि इनके संयोगसे राष्ट्रकी प्रगति हो, राष्ट्रकी उन्नति हो ।

सामान्य अर्थ देखनेके समय इस प्रथम मंत्रका " अस्मान् " शब्द बड़ा महत्त्व रखता है । इसका अर्थ होता है " हम सबकी " । अर्थात् हम सबको मिलकर राष्ट्र हितके लिये कृतिगत करो । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि किसी एककी ही उन्नति या किसी एककी शक्तिका विकास ही यहाँ अपेक्षित नहीं है, परन्तु सबकी शक्तिको विकास यहाँ अपेक्षित है । राष्ट्रीय उन्नतिके लिये जो प्रजाजननोंकी शक्तिका विकास जाना है वह हर एक प्रजाजनका, किसी प्रकार भी पक्षपात न करते हुए, करना चाहिये । अर्थात् जातिविरुद्ध या संघविरुद्ध पक्षपातके लिये यहाँ कोई स्थान रहना नहीं चाहिये ।

जो मैं करता हूँ वह राष्ट्रके लिये समर्पित हो वही भाव हर एकके मनमें रहना चाहिये ।

राष्ट्राय सदां वर्ययता ।

सपत्नम्यः पराशुवे ॥ (मं० ४)

" मुझे राष्ट्रके लिये बांध दे ताकि मैं राष्ट्रके शत्रुकीका पराभव कर सकूँ । " यह भाव मनमें धारण करना चाहिये । मैं राष्ट्रके साथ बांधा जाऊँ, मेरा अपने राष्ट्रके साथ ऐसा संबंध जुड़ जाय कि वह कभी न टूटे, राष्ट्रहित और मेरा हित एक बने, मैं राष्ट्रके लिये ही जीवित रहूँ, इसलिये प्रभारों भाव सब भेज दूँ । जो जिसके साथ बांधा जाता है वह उतनी साथ रहता है । यदि स्वातंत्र्यप्रिय मनुष्य राष्ट्रके साथ एक बार अच्छी प्रकार कंधार बांधा जाय तो वह बहाये नहीं हटेगा । इसी प्रकार मनुष्य अपने राष्ट्रके साथ बांधे जाय जो । ऐसा परस्पर संबंध जुटनेके कारण राष्ट्रमें अपूर्व शक्ति उत्पन्न हो पाती है वही अमोघ है ।

आमत र है । इस प्रकार जिसके मनके सामने राष्ट्र का विचार सदा जाग्रत रहता है, उसीको वेद 'अभिराष्ट्र' कहता है (अमिताः राष्ट्रं) अपने शत्रुओं और अपना राष्ट्र है ऐसा माननेवाला हर एक अवस्थामें अपने संमुख अपने राष्ट्रको देखनेवाला जो होता है उसका यह नाम है ।

‘राष्ट्र’ का अर्थ

राष्ट्र शब्द केवल देश अथवा केवल जनता का वाचक वेदमें नहीं है । केवल भूमिके एक विभागपर रहनेवाले मनुष्य समाजका बोध ‘राष्ट्र’ शब्दसे वेदमें नहीं होता है । इस प्रकारके राष्ट्र भूमिपर बहुत होंगे, परंतु वेद जिसको राष्ट्र कहता है, वैसे राष्ट्र किनने होंगे इसका विचार पाठकोंको अवश्य करना चाहिये वेदमें ‘राष्ट्र’ शब्द (राजते सद् राष्ट्रं) जो चमकना है, वह राष्ट्र है । इस अर्थका बोधक है । जो मनुष्योंका समुदाय भूमिदल पर अपने कमाने यत्नसे चमकता है और सब अन्य लोगोंकी

बांछ अपनी ओर खींच सकता है वही वैदिक दृष्टिमें राष्ट्र है । अन्य मानवी समुदाय राष्ट्र नहीं हैं । इस प्रकारके राष्ट्र विस्तारमें छोटा हो या बड़ा हो, वह राष्ट्र ही कहलावेगा । परंतु जो निस्तारसे अति प्रचंड हो, परंतु यत्नही छोड़े जिसमें चमकाहट न हो तो वह राष्ट्र नहीं होगा । वैदिक धर्मियोंको अपने परिग्रहसे अपने राष्ट्रमें इस प्रकारका तेज उत्पन्न करना चाहिये और बढ़ाना चाहिये, तभी उनके देशका नाम वैदिक रीतिसे राष्ट्र होगा । वेदमें राष्ट्रवर्धन विषयक अनेक सूक्त हैं और उनका परस्पर निकट संबंध भी है । पाठक जिस समय इन सूक्तोंका विचार करने लगे उस समय आगे पीछेके राष्ट्रीय सूक्तोंका संबंध अवश्य देखें और सब उपदेशका इच्छा मनन करें ।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंके सामान्य उपदेशोंसे अधिक मनन करके बोध उठावें । वेदमें राष्ट्रवर्धक उपदेश किन प्रकार स्पष्ट रूपमें हैं यह इस रीतिसे पठक देख सकते हैं ।



आयुष्य-वर्धन-सूक्त ।

(३०)

(श्रुतिः— अथर्वा आयुष्यकामः । देवता विधे देवाः)

विधे देवा वसन्ता रक्षन्तेममृतादित्या जागृत युष्मस्मिन् ।

मेमं सनाभिभूत वान्यनाभिमेमं प्रापत् पौर्ण्यो वृषो यः

॥ १ ॥

ये वाँ देवाः पितरो ये च पुत्राः संचेतमे मे शृणुतेदद्रुक्नम् ।

सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येवं सृस्त्येनं जरेम वहाथ

॥ २ ॥

ये देवा द्विविष्ट ये पृथिव्यां ये अन्तर्धिषु पुनुष्यन्तिः ।

ते कृणुव जरसमापूरस्मै शतमुन्यान्परि वृणक्तु मायुन्

॥ ३ ॥

येपां प्रयाजा उत पांनुपाजा हुतमांसा अहुमादथ देवाः ।

येपां वः पथं प्रदिजो विमंकतास्त्रान्तां अमी संप्रमर्दः कुपांभि

॥ ४ ॥

अर्थ— दे (विधे देवा) गण देवो । दे (वषः) वृष्टिदेवो । (हमं रक्षन्) रक्षको । (जागृत) जागृतो । (युष्मस्मिन्) अस्मिन् । (सनाभिभूत) अस्मिन् । (प्रापत्) प्रापको । (पौर्ण्यो) पौर्णमासी । (वृषो) वृष । (वः) वः । (पितरो) पिता । (पुत्राः) पुत्र । (संचेतमे) संचेत । (मे) मे । (शृणुते) शृणुते । (दद्रुक्नम्) दद्रुक्नम् । (परि) परि । (ददाम्येवं) ददाम्येवं । (सृस्त्येनं) सृस्त्येनं । (जरेम) जरेम । (वहाथ) वहाथ । (द्विविष्ट) द्विविष्ट । (पृथिव्यां) पृथिव्यां । (अन्तर्धिषु) अन्तर्धिषु । (पुनुष्यन्तिः) पुनुष्यन्तिः । (कृणुव) कृणुव । (जरसमापूरस्मै) जरसमापूरस्मै । (शतमुन्यान्परि) शतमुन्यान्परि । (वृणक्तु) वृणक्तु । (मायुन्) मायुन् । (येपां) येपां । (प्रयाजा) प्रयाजा । (उत) उत । (पांनुपाजा) पांनुपाजा । (हुतमांसा) हुतमांसा । (अहुमादथ) अहुमादथ । (देवाः) देवाः । (येपां) येपां । (वः) वः । (पथं) पथं । (प्रदिजो) प्रदिजो । (विमंकतास्त्रान्तां) विमंकतास्त्रान्तां । (अमी) अमी । (संप्रमर्दः) संप्रमर्दः । (कुपांभि) कुपांभि ।

जो पुरुष प्रयत्नसे होनेवाला घातघात है वह भी (इमं मा प्रापत्) इसको प्राप्त न करे ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवो (ये वः पितर) जो आपके पिता हैं तथा (च ये पुत्राः) जो पुत्र हैं वे सब (स चेतसः) सावधान होकर (मे इदं वक्तुं शृणु) मेरा यह कथन श्रवण करें (सर्वेभ्यो यः पृतं परिददामि) सब आपकी निगरानमें इसको मैं देता हूं (पुनं जरते स्वस्ति वहाय) इसको बृद्ध आयु तक सुखपूर्वक पहुंचा दो ॥ २ ॥ (ये देवाः दिवि स्थ) जो देव युलोकमें हैं, (ये पृथिव्यां, ये अन्तरिक्षे) जो पृथ्वीमें और अंतरिक्षमें हैं और जो (ओषधीषु पशुषु जप्सु अन्तः) औषधों, पशु और जलोंके अंदर हैं (ते अस्मै जरसं बाधुः कृणुत) वे इसके लिये रक्षावस्थावाली दीर्घ आयु करें । यह पुरुष (शत अन्यान् मृत्यून् परिचरतु) सैकड़ों अथ अपमृत्युको हटा देवे ॥ ३ ॥ (येषां) जिन तुम्हारे अंदर (प्रयाजाः) विशेष यजन करनेवाले, (उत वा अनुयाजाः) अथवा अनुकूल यजन करनेवाले तथा (हुत-भागा बहुलादः च देवा) हवनमें भाग रखनेवाले और हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं, (येषां यः पय प्रदिक्ष विभक्ताः) जिन आपकी ही पांच दिशाएँ विभक्त की गई हैं, (तान् वः) उन तुमको (भक्षे) इस पुरुषकी दीर्घ आयुके लिये (सन्न-सदः कृणोमि) सदस्य करता हूं ॥ ४ ॥

भाष्य—हे सब देवां, हे बभ्रुदेवो ! मनुष्यको रक्षा करो । हे आदिश्व दंतो ! तुम मनुष्यमें आप्रत रहो । मनुष्यका सर्वांगें बंधुये अथवा कोई अन्य मनुष्यसे अथवा कोई पुरुषसे बंधन न हो ॥ १ ॥ हे देवो ! जो तुम्हारे पिता हैं और जो तुम्हारे पुत्र हैं वे सब मेरा कथन सुनें । मनुष्यको पूर्ण दीर्घ आयु तक ले जाना तुम्हारे आधीन है, अतः मनुष्यकी दीर्घ आयु करो ॥ २ ॥ जो देव दुर्नीक, अंतरिक्षांग, भूलोक, औषध, पशु, जल आदिमें हैं वे सब मिलकर मनुष्यकी दीर्घ आयु करें । तुम्हारी सहायतासे मनुष्य मेंढों अपमृत्युते बचे ॥ ३ ॥ विशेष यजन करनेवाले, अनुकूल यजन करनेवाले, हवनका भाग लेनेवाले तथा हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं और जिन्होंने पांच दिशाएँ विभक्त की हैं, वे सब आप देव मनुष्यकी आयुष्यवर्धक समाके सदस्य बनें और मनुष्यकी आयु दीर्घ पतनमें सहायता करें ॥ ४ ॥

तब तक मनुष्यकी आयु क्षीण ही होती जायगी। इसलिये वध करनेकी शक्ति अपने समाजमें से दूर करनेका यत्न मनुष्य प्रथम करे।

देवोंके आधीन आयुष्य।

मनुष्यका समाज जितना आदिशास्त्रवाला होगा उतनी उसकी आयुष्यमर्यादा दीर्घ होवकती है। यह बात जितनी सिद्ध होगी उतनी सिद्ध करके आगिका मार्ग आक्रमण करना चाहिये। आगेका मार्ग यह है कि—“अपना आयुष्य देवोंके आधीन है, देव हमारी रक्षा कर रहे हैं” यह मान मनमें धारण करना। इसकी सूचना प्रथम मंत्रके पूर्वांशने दी है, उसका आशय यह है—

“हे सब वसुदेवो! मनुष्यकी रक्षा करो। हे सब आदित्यो! मनुष्यमें जागते रहो।” (मंत्र १)

इस मंत्रमें भी दो भाग हैं। पहिले भागमें वसु देवोंकी रक्षक शक्तिके साथ संबंध बताया है और दूसरे भागमें आदित्य देवोंकी मनुष्यके अंदर, मनुष्यके देहमें, जाग्रत रहनेकी सूचना दी है। ये दोनों बातें हीं आयु करनेके लिये अत्यंत आवश्यक हैं। अब इनका संबंध देखिये—

सबसे पहिले मनुष्य यह विचार मनमें धारण करे कि संपूर्ण देव मेरी रक्षा कर रहे हैं, परन्तु परमात्मा सर्वेश्वर सर्व समर्थ प्रभु मेरी रक्षा कर रहा है और उसकी आज्ञानुसार मैं स्वर्गादि सब देव सदा मेरी रक्षा कर रहे हैं। मैं परमात्माका अमृत पुत्र हूँ इसलिये मेरा परमपिता परमात्मा मेरी रक्षा करता था, करता है और करताही रहेगा। परमात्माके आधीन अन्य सब देव होनेके कारण वे भी उस परमात्मके पुत्र ही रक्षा अवश्य करेंगे ही।

इस प्रकार संपूर्ण देव मेरा संरक्षण करते हैं इसलिये मैं विभ्रम हूँ यह विचार मनमें दृढ़ करके मनके अंदर जो जो विन्ताके विचार आयेगें उनको दृढ़ता चाहिये और विश्वाससे मनकी ऐसी दृढ़ अवस्था बनानी चाहिये कि जिसमें घिलाका विचार ही न उठे और चित्तवृत्ति निर्भय होनेके साथ आनंद शक्तिके साथ मनमें रहे। दीर्घायुष्यके लिये इस प्रकार परमात्मा पर तथा अन्यान्य देवोंकी संरक्षक शक्तितर अपना पूर्ण विश्वास रखना चाहिये, अन्यथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त होने अवश्य न है।

बड़े पाठक चौंका करेंगे कि अन्यान्य देव हमारी रक्षा किस प्रकार कर रहे हैं? इस विषयमें हमने पूर्वं कई स्थानोंपर उल्लेख आगया है। तथापि संक्षेपसे यहीही इसका विचार करते हैं। पाठक जानते ही हैं कि प्रथम अंशमें “वसु” देवोंका कर्तव्य

है, ये सब जगत्के निवासक देव होनेके कारण ही इनको “वसु” कहते हैं। सबके जो निवासक होते हैं वे सबकी रक्षा अवश्यही करेंगे।

सब वसुओंका भी परम वसु परमात्मा है क्योंकि वह जैसा सब जगत् को बसाता है इसी प्रकार जगत्के संरक्षक सब देवोंको भी बसाता है। उसके बाद पृथ्वी, आप, अग्नि, वायु आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ये अष्टवसु हैं ऐसा कहा जाता है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, आदि के साथ हमारे छनछनके आयुष्यका संबंध है, इनमें से एकका भी संबंध हमसे दृढ़ गया तो हमारा नाश होगा। इतना महत्त्व इनका है और इसी कारण इनके रक्षणमें सदा मनुष्य रहता है ऐसा ऊपरवाले मंत्रमें कहा है। इससे स्पष्ट हुआ कि मनुष्य की रक्षा इन देवोंके कारण हो रही है और अति निपक्षपातसे हो रही है। ये देव कभी किसीका पक्षपात नहीं करते हैं। सूर्य सबपर एकसा प्रकाशता है, वसु सबके लिये एकसा बह रहा है, जल सबके लिये बाकायसे गिरता है, पृथ्वी सबको समानतया आधार दे रही है, इस प्रकार ये सब देव न केवल सबकी रक्षा कर रहे हैं प्रत्युत सबके साथ निःपक्षपातया भी बर्ताव कर रहे हैं।

हमारे जीवनके साथ इनका संबंध इतना पवित्र है कि इनके बिना हमारा जीवन ही अशक्य है। वायुके बिना प्राण धारणा कही होगी। सूर्यके बिना जीवन ही अतमय होगा, इत्यादि प्रकार पाठक देखें और मनमें निश्चयपूर्वक यह बात धारण करें कि परमात्माके नियमके आधीन रहते हुए ये सब देव हमारी रक्षा कर रहे हैं।

हम क्या करते हैं?

सब देव तो हमारी रक्षा कर ही रहे हैं, परन्तु हम क्या कर रहे हैं, हम उनकी रक्षामें रहनेका यत्न कर रहे हैं या उनकी रक्षासे बाहर होनेके यत्नमें हैं? इसका विचार पाठकोंसे करना चाहिये। देखिये, परमात्माओ और देवोंकी रक्षाये हम कैसे बाहर जाते हैं—परमात्मापर जो विश्वास ही नहीं रखते वे परमात्माकी रक्षाये बाहर ही जाते हैं। इससे परमात्मा सब की उनकी रक्षा करना ही रहता है वह उनकी ही अपरा दण्ड दे, परन्तु वे अविश्वासी लोग उनकी अपरा दण्डसे भाग नहीं उठाते। अविश्वासीके कारण जिसकी क्षति है, किसी अन्य कारणसे नहीं हो सकती। दीर्घ आयुष्य प्राप्तिके लिये हमें अपना यत्न परमात्मविरुद्ध दृढ़ विचार चाहिये।

इसके बाद सूर्य अपने प्रकाशसे सबको जीवनायुत देकर सबकी रक्षा कर ही रहा है, परंतु मनुष्य सूर्य प्रकाशसे दूर रहते हैं, तंग गलियोंके तंग मकानोंमें रहते हैं, दिनभर कमरोंमें अपने आपको बंद रखते हैं और इस प्रकार सूर्यदेवकी सरक्षक शक्तिसे अपने आपको दूर रखते हैं। इनके लिये मगवान् सहस्रारमो सूर्यदेव क्या कर सकते हैं ? इसी प्रकार वायु और जल आदि देवोंके विषयमें समझना उचित है। ये देव तो सबकी रक्षा कर ही रहे हैं परंतु मनुष्योंको भी चाहिये कि ये इनकी उगम रक्षासे अपने आपको दूर न रखें और अज्ञातक होसके उतना प्रयत्न करके उनकी रक्षामें अपन आपको अधिक रखें।

पाठक यहां समझ ही गये होंगे कि संपूर्ण देव मनुष्यमात्रकी किस रीतिसे रक्षा कर रहे हैं और मनुष्य उनकी रक्षासे किस प्रकार दूर होते हैं और स्वयं अपना नुकसान किस प्रकार कर रहे हैं।

आदित्य देवोंकी जाग्रती ।

इस प्रथम मंत्रमें दीर्घ आयुष्य वर्षक एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह यह है—“ हे आदित्य देवो ! इस मनुष्यमें जाग्रत रहो । ” मनुष्यके अंदर आदित्यसे ही सब जीवन शक्ति जैसी मनुष्यमें कार्य करती है उसी प्रकार सब जगत्में कार्य कर रही है। इसी शक्तिसे सब जगत् चल रहा है। परंतु यहां मनुष्यका ही हमें विचार करना है। मनुष्यमें यह आदित्य शक्ति मालिष्कमें रहती है, नेत्रों रहती है और पेटमें रहती है। मालिष्कमें मज्जादेह चलाती है, पेटमें पाचक केंद्रको चेतना देती है और नेत्रमें देखनेका व्यापार कराती है। इनमेंसे कोई भी आदित्य शक्ति कम हुई तो भी मनुष्यका आयुष्य घटता जायगा। मालिष्कका मज्जादेह आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो संपूर्ण शरीर चेतना रहित हो जाता है उसका पाचक केंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो हाजमा बिगड़ जाता है, नेत्रकी आदित्यशक्ति हटगई तो मनुष्य अंधा बनता है और उसके सब व्यवहार ही बंद हो जाते हैं। इसका मंदरथ इस आदित्य शक्तिसे मनुष्यके अथवा प्राणीके शरीरमें है। इसलिये वेदमें कहा है कि—

सूर्य आत्मा जगत्प्रत्यक्षम् । ऋग्वेद. १ । ११५ । १

“ यह अद्वितीय सूर्य ही रक्षक अंगमज्जाका आत्मा है । ” पाठक इस मंत्रका भावय ध्यानेमें रखें और अपने अंदरकी आदित्य शक्ति गूढ़ा जाग्रत रखनेका अनुष्ठान करें। सूर्यभेदन भ्वादान और सूर्यभेदी प्राणायाम द्वारा पेटके स्थानमें रहनेवाली

आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है, ध्यान धारणा द्वारा मालिष्ककी आदित्य शक्ति जाग्रत होती है, तथा नाटक आदि अभ्यास द्वारा नेत्रकी आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है। इस प्रकार योगाभ्यास द्वारा अपने अंदरकी आदित्य शक्ति जाग्रत और बलवृद्ध करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है।

इस प्रथम मंत्रके ये उपदेश यदि पाठक ध्यानेमें धारण करेंगे और इन उपदेशोंका योग्य अनुष्ठान करेंगे तो उनकी आयु बढ जायगी इसमें कोई संदेह ही नहीं है। “ समाजमें निर्भयता, परमेश्वरपर दृढनिष्ठा, वायु जल सूर्य आदि देवताओंसे अधिक संबंध करना और अपने अंदर आदित्य शक्तियोंकी जाग्रती करना ” यह संक्षेपसे दीर्घायु प्राप्त करनेका मार्ग है।

इसी मार्गका खोजवा स्पष्टीकरण आगेके मंत्रोंमें है, वह अब देखिये—

देवोंके पिता और पुत्र ।

इन आयुष्यवर्धन सूक्तके द्वितीय मंत्रमें कहा है, कि “ हे देवो ! जो तुम्हारे पिता हैं और तुम्हारे पुत्र हैं वे मेरी बात सुनें । मैं तुम्हारे ही आधीन इस मनुष्यको करता हूं, पुत्र इसको दीर्घ आयुष्य तक सुखसे पहुंचाओ । ” (मंत्र १)

इस द्वितीय मंत्रमें “ देव, देवोंके सब पिता और देवोंके सब पुत्र ये सब मनुष्योंको सुखसे दीर्घ आयुष्य तक पहुंचानेवाले हैं ” ऐसा कहा है, यह सूचना मनन करने योग्य है। यह मंत्र ठीक समझमें आनेके लिये देव कौन हैं, उनके पिता कौन हैं और उनके पुत्र कौन हैं, इसका विचार करना यहां अत्यंत आवश्यक है। अथर्ववेदमें इन पिता पुत्रोंका वर्णन इस प्रकार आया है—

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।

यो वै तान्विचारत्यस्त स वा मया महद्भदेव ॥ १ ॥

प्राणापानी चक्षुःश्रोत्रमस्तिश्च भित्तिश्च वा ।

ध्यानीदानीं यादमवस्ते वा आकृतिमावहन् ॥ ४ ॥

कुत इन्द्र कुतः सोमः कुतो अमिरजायत ।

कुतःखट्वा सममवत्कुतो धाताऽजायत ॥ ८ ॥

इन्द्रादिन्द्रः सोमस्तत्सोमो अमिरमिरजायत ।

खट्वा ह जने खट्वाधुधाताऽजायत ॥ ९ ॥

ये स आसन्द्य जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।

पुत्रेभ्यो धोकं दत्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १० ॥

[अथर्व ११।८।१०]

(पुरा) सबसे प्रथम (देवेभ्यः दश देवा) देवोंके दश देव (धातं अजायन्) साथ साथ उत्पन्न हुए । जो इनको प्रत्यक्ष आनेगा, (या अथ महत्त वेदेव) वह बड़े मन्त्रके विषयमें

कोलेगा । वही ब्रह्मज्ञान रहेगा ॥ ३ ॥ प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, (अक्षितिः) अविनाशी बुद्धि, और (क्षितिः) नाशवान् चित्त, ग्यान, उदान, वाचा और मन ये दस देव तेरे (आकृति आवहृत्) संकल्पको उठाते हैं ॥ ४ ॥ कदांति इन्द्र, सोम, और अग्नि होगये ? कदांति त्वष्टा हुआ, और घाताभी कदांसे हो गया ? ॥ ८ ॥ इन्द्रसे इन्द्र, सोमसे सोम, अग्निसे अग्नि, त्वष्टासे त्वष्टा, और घातासे घाता हुआ है ॥ ९ ॥ (ये पुरा देवभ्यः दत्ता देवाः) जो पहिले देवोंसे दत्ता देव हुए हैं, (पुत्रेभ्यो लोके दत्त्वा) पुत्रोंको स्थान देकर वे स्वयं (कस्मिन् लोके आसते) किस लोकमें बैठे हैं ? ॥ १० ॥

इन मंत्रोंमें देव, देवोंके पिता और पुत्र जोनसे हैं इसका वर्णन है । प्राण अपानादि दश देव इन्द्रादि देवोंसे बने हैं और वे पुन रूप देव इस शरीरमें रहते हैं, इन पुत्रदेवोंके पिता देव इस जगत्में हैं और उनके भी पिता परमात्मामें रहते हैं, इसका स्पष्टीकरण यह है—प्राणरूप देव मनुष्य शरीरमें है, वह जगत्में संचार करनेवाले वायुका पुत्र है, और इस वायु-कामी पिता-वायुका भी वायु-परमपिता परमात्मा है । इसी प्रकार चक्षुरुभी पुत्रदेव शरीरमें रहता है, उसका पिता सूर्यदेव सृष्टिकर्त्ता है, और सूर्यका पिता-सूर्यका भी सूर्य-परमपिता परमात्मा है । इसी प्रकार अग्न्याग्नि देवोंके विषयमें जानना योग्य है । यह विषय इससे पूर्व आ चुका है, इसलिये यहाँ अधिक विवरण की आवश्यकता नहीं है ।

सबका सारांश यह है कि पुन रूपी देव प्राणियोंके इन्द्रियों और अवयवोंमें अर्थात् शरीरमें रहते हैं । इनके पितादेव भू-भुवः स्वः इस त्रिलोकीमें रहते हैं और इन सूर्यादि देवोंके भी पिता विशेष शक्तिके रूपसे परमात्मामें निवास करते हैं ।

हमारी ओख सूर्यके बिना कार्य करनेमें असमर्थ है और सूर्य परमात्मा ही शरीर महाशक्तिके बिना अपना कार्य करनेमें असमर्थ है । इसी प्रकार संपूर्ण देवों और उनके पिता पुत्रोंके विषयमें जानना योग्य है । इन सबके आधीन मनुष्यका दार्ष्टान्त्य बनना है ।

इसलिये जो दार्ष्टान्त्य आयुष्यके इच्छुक हैं, वे भक्तियुक्त अंतःकरणसे अपना संबंध परम पिता परमात्मासे ढूँढ करें । यह परम पिता परमात्मा सूर्य भी सूर्य, वायुका भी वायु, प्राण का भी प्राण, अपानात् देवोंका भा देव है और वहाँ हम सबका पिता है । इसी भक्ति यदि अंतःकरणमें दृढ़ हो गई तो मनकी समता शिथिल रह सकती है और उससे दार्ष्टान्त्य प्राप्त होती है । इस प्रकार देवोंके विना मनुष्यका संबंध होता है

और यह संबंध अत्यंत लाभकारी है ।

वायु सूर्य आदि देवोंसे हमारा संबंध किस प्रकार है और उसका हमारे आरोग्य और दीर्घ आयुसे कितना घनिष्ठ संबंध है, यह हमने प्रथम मंत्रके व्याख्यानके प्रसंगमें वर्णन किया ही है इसलिये उनको दुहरानेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है ।

प्राण, चक्षु, कर्ण आदि देवपुत्र हमारे शरीरमें ही रहते हैं । योगादि साधनोंसे इनका बल बढ़ सकता है । इसलिये इनके ध्यायामके अनुष्ठानसे पाठक इनकी शक्ति विकसित करें और अपना शरीर बीरोग और बलवान् बनाकर दीर्घायुके अधिकारी बनें ।

इस प्रकार मनुष्यका दीर्घ आयुष्यके साथ देवों, देवोंके पिता और देवोंके पुत्रोंका संबंध है । यह जानकर योग्य-अनुष्ठान द्वारा आयुष्यवर्धन का प्रयत्न करें ।

परमपिता परमत्मा यद्यपि एक ही है तथापि वह संपूर्ण सूर्य, चंद्र, वायु, दश आदि अनेक देवताओंकी विविध शक्तियोंसे युक्त है, इसलिये संपूर्ण देवताओंका सामुदायिक पितृत्व उसमें है, ऐसा काव्यमय वर्णन मंत्रमें किया है वह उचितही है । इस प्रकार इस मंत्रमें मनुष्यके दीर्घ आयुष्यके अनुष्ठान का मार्ग इस मंत्रमें उलभ और स्पष्ट चर्चोंद्वारा बताया है । पाठक इसका विशेष विचार करें ।

देवोंके स्थान ।

तृतीय मंत्रमें देवोंके स्थान बड़े हैं । यह तृतीय मंत्र यह आशय प्रकट करता है, कि “ सृष्टिकर्त्ता, अंतरिक्ष, पृथिवी, ओषधि, वन्य, जल, इन स्थानोंमें देव रहते हैं, वे मनुष्यके लिये दार्ष्टान्त्य करते हैं और भिनकी सहायतासे सचनों अपश्यल्य बुर हो जाते हैं । ” (मंत्र ३) यह मंत्र बड़ा विचार करने योग्य है ।

सृष्टिकर्त्ता सूर्यादि देव, अंतरिक्षमें वायु, दश, इन्द्र, चन्द्र आदि देव, पृथ्वीमें अग्नि आदि देव, ओषधियोंमें सहायक घोरदेव पशुओंमें दुग्धादिदृष्टसे अमृत देव, जलमें वरुण आदि देव निवास करते हैं । ये सब देव मनुष्यकी आयु बढ़ानेके कार्यमें सहायक होते हैं । सूर्य देव जीवन देता है, वायु प्राण देता है, इन्द्र और चन्द्र क्रमशः शुशुप्ति और जागृतिके व्यापक और व्यापक मनके संबालक देव हैं, दश रथमें प्राणोंका बालक है, अग्नि वाति संबंध रखता है, ओषधिवन्यपशुओंमें अमृत दत्ता दत्ता बनकर मनुष्यकी सहायता करती है, वन्यपशु दुग्ध रूपी अमृत मिलाता है, जल देवसे दीर्घ वन्य दे, दश प्रकार अग्न्याग्नि देव मनुष्यके बहानक है । परंतु प्रजन द्वारा

मनुष्यने उनसे लाभ उठानेका पुरुषार्थ करना आवश्यक है ।

इन सब देवोंसे अपना संबंध सुरक्षित करके, उनसे क्या-
योग्य लाभ लेनेका यत्न करनेसे आयुष्य बढ़ सकता है । इन
देवोंसे नाना प्रकारकी चिकित्साएं बनती हैं, गुणोक्त देवोंसे
सौरचिकित्सा, वर्षाचिकित्सा, प्रकाशचिकित्सा-चिकित्सा; अंतरिक्ष
स्थानीय देवोंसे वायुचिकित्सा, विद्युच्चिकित्सा, मानसचिकित्सा
अथवा चांद्रचिकित्सा, पृथ्वीस्थानीय देवोंसे अग्निचिकित्सा,
खनिजपदार्थोंसे रसायनचिकित्सा, रात्रिचिकित्सा, औषधिविषेस तथा
वनस्पतिविषेस भेषजचिकित्सा, पशुओंके दूधसे दुग्धचिकित्सा
अर्थात् पशुओंकी विविध औषधियां लिलाकर तथा विविध
रंगोंकी गोमूत्रके दूधका उपयोग करनेसे, तथा पशुके मूत्रादि-
के उपयोगसे विविध चिकित्साएं सिद्ध होती हैं, जलसे जल
चिकित्सा, इस प्रकार अनेकानेक चिकित्साएं होती हैं ।

इन सब चिकित्साओंका अर्थ ही यह है कि विभिन्न रीतियों
से इन सब देवोंकी दिव्य शक्तियोंसे लाभ उठाना । प्राचीन काल-
के ऋषिमुनियोंने इन सब देवोंसे लाभ उठानेके जो जो प्रयत्न
किये, उनका फल ही ये सब चिकित्साएं हैं । आजकल भी इस
दिशासे विविध प्रयत्न हो रहे हैं । इन देवताओंमें विविध और
अनंत शक्तियां हैं, उनकी सामाजिक नहीं होती, इसलिये मनुष्यों
की विविध रीतियोंसे लाभ करके इन देवताओंसे विशेष लाभ
उठानेके लिये यत्न करना चाहिये । इतने प्राचीन कालमें
आयुष्योक्त यह उद्योग करनेसे और लाभ उठाने से और दीर्घजीवी
भी बने थे । यह शिलसिला दृढ़ गया है, तथापि आजकल
प्रयत्न करनेपर उल्टी मार्गसे बहुत खोज होना संभव है । जो
पाठक इस क्षेत्रमें कार्य कर सकते हैं कार्य करें और विद्याकी उन्नति
करें तथा वृद्धके भागी बनें । अस्तु । इस प्रकार इन देवताओं की
शक्तियों अपने अंदर लेने और उस शक्तिको अपने अंदर स्थिर
करनेसे मनुष्य दीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सकता है ।

छापारणसे छापारण प्रयत्नसे भी बड़ा लाभ हो सकता है ।
पेक्षा पूर्ण स्थिति में अपना मंगल शरीर तृप्तनेसे, शत्रुमें नगें
शरीर तृप्तनेसे, अकस्मिक तृप्तनेसे उत्तम औषधिविशेष रस पीनेसे
और गोशुश्रूषा आदिसे पीनेसे मापारण परिरक्षितमें रहने बाने
मनुष्य भी बहुत लाभ उठा सकते हैं । फिर जो विभिन्न मंत्र
निर्माण द्वारा इन देवों की शक्तियोंसे अधिक लाभ उठानेका पुरुषार्थ
करने उनसे विरहमें बड़ा बढ़ता है । इस प्रकार ये देवताएं
ही समान हैं, इनमें अंतरा दृष्ट संशय आदि क्या उठना
दुष्ट रहने से । इनमें अंतरा अग्रयण रस आता है । जो अंतरा
पुराणों के, उनकी उन्नति अग्रयण विनियोग और वह उन्नति
अंतरा रोग ।

देवताओंके चार वर्ग ।

इस प्रकार तीन मंत्रोंमें देवताओंसे अमृतरस प्राप्त करके
अमरत्व प्राप्त करके अर्थात् दीर्घायु बननेके अनुष्ठानका स्वरूप
बतानेके पश्चात् चतुर्थ मंत्रमें देवताओंके चार वर्गीक वर्णन
किया है और इन देवताओंके अपने सहकारी सदस्य बननेका
उपदेश किया है । इस चतुर्थ मंत्रका आशय यह है—

“ देवोंमें प्रयाज, अनुयाज, हुतभाग और अधुताद ये चार
वर्गके देव हैं । इन देवोंसे ये पाचों दिशाएं निरूपण हुई हैं ।
ये सब देव मनुष्यके सहकारी सभ्य बनें । ” (मंत्र ४)
इन चार वर्गोंके देवोंके लक्षण इनके मातृक शब्दोंसे ही
स्पष्ट होते हैं । ये लक्षण देखिये—

१ प्रयाजाः— विशेष यजन करने वाले,

२ अनुयाजाः— अनुकूल यजन करने वाले,

३ हुतभागाः— हुतन का भाग लेने वाले,

४ अधुतादः— हुतनका मांस न खानेवाले ।

पाठक इन देवोंको अपने शरीरमें सबसे प्रथम देखें— (१)

जिनपर इच्छा चाकिका परिणाम नहीं होता, परंतु जो अवश्य
अपनी ही गतिसे कार्य करते हैं उन अवयवोंका नाम प्रयाज
है, जैसे हृदय आदि अवयव । (२) जो अवयव अपनी इच्छा
शक्तियोंसे अनुरक्त कार्यमें लगते जा सकते हैं उनको अनुयाज
कहते हैं, जैसे हाथ, पांव, आंख आदि । (३) हुतभाग वे
इन्द्रिया हैं जो भोग की इच्छा हैं और कार्य करनेसे मज्जा
है और विधामसे तथा अक्षरसे मिलनेसे पुष्ट होती हैं । (४)
शरीरमें अधुताद केवल ग्राहक प्राण ही हैं, क्योंकि ये प्राण
शरीरमें सदा कार्य करते हैं और स्वयं इच्छा भी भोग नहीं लेते,
जन्मसे लेकर मरनेतक बराबर कार्य करते हैं ।

इस प्राणव्यवस्था तथा अन्य इन्द्रियोंके वर्णन पूरी प्रकार
उपनिषदोंमें किया है । प्राणादिद्वारा उपनिषदोंमें शरीर बरके
प्रयाज और अनुयाज का वर्णन इस प्रकार है—

शरीरव्यवस्था— के प्रयाजाः के अनुयाजाः ॥

महाभूतानि प्रयाजाः ॥

मूलायुजप्रयाजाः ॥

प्राणादिद्वारा ॥ १—४

शरीरमें बसे हुए बरके प्रयाज और अनुयाज कीन हैं ।
महाभूत प्रयाज और मूल अनुयाज हैं । इसीप्रकार हुतभाग
और अधुताद विषयक वर्णन उपनिषदोंमें तथा मातृकामें किया
है जिसका तात्पर्य अक्षर दिया ही है ।

इही आन्तरिक दृष्टांत महाका आन्तरिक दृष्टांत दिया जाता है ।

संयत्ता वर्णन यहाँ करनेकी आवश्यकता नहीं है । अनुयायियों से प्रयात्र अधिक महत्त्व के हैं तथा हृत्पत्रागों से अहुताद विशेष महत्त्व रखते हैं । जो शरीरशास्त्र जानते हैं उनको इसका अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे जानते ही हैं कि इच्छा शक्तिकी नियंत्रणसे चलनेवाले हृत्पत्रादि अवयवोंकी अपेक्षा अनिच्छासे कार्य करनेवाले हृत्पत्रादि अंतरवयव अधिक महत्त्व के हैं । तथा अहुताद अर्थात् पुत्र भी योग न लेते हुए जन्मसे मरनेतक अधिष्ठान्त कार्य करनेवाले प्राणादिक अधिक धेड़ हैं और भेद्र, कर्ण आदि अवयव जो धमसे चरते हैं, विश्राम करते हैं और योग भी भोगते हैं ये उनके गौण हैं ।

यह मुख्य गौणका भेद देखकर दीर्घायु प्राप्ति का अनुष्ठान करनेवाले को उचित है, कि वह अपने अंदर के मुख्य देवों अर्थात् इंद्रियशक्तियोंको अधिक बलवान् करे और अग्न्यों को भी बलवान् करे, परंतु यह ख्याल रखे कि गौण अवयवों की शक्ति बढाने के कार्य करते हुए मुख्य अवयवों की क्षीयता न होने दे । उदाहरण के लिये पहलवानोंके व्यायाम ही लीजिये । पहलवान लोग अपने शरीरके हड्डीकी बलवान् बनानेके यत्न बहुत करते हैं, परंतु हृत्पत्र आदि अंतरवयवोंका ख्याल नहीं करते हैं, इससे ऐसा होता है कि उनका शरीर शरीर बड़ा बलशाली होता है, परंतु हृत्पत्रादि विरोग महत्त्वके अवयव कमजोर हो जाते हैं । इसका परिणाम अस्वास्थ्यमें उनकी मृत्यु हो जाती है ।

यदि ये लोग साथ हृत्पत्रों भी बलवान् बनानेका यत्न करेंगे तो ऐसा नहीं होगा । इसलिये यहां कहना चाह है कि अपने अंदर

जो देवताओंके अंश रहते हैं उनमें मुख्य अवयवोंका विशेष ख्याल करना, उनकी शक्ति बढानेका और उनकी कमजोरी न पड़े इसका विशेष विचार करना चाहिये । इसके पश्चात् गौण अवयवोंका विचार करना उचित है । आसनस्थान, मज्जा-संस्थान और हृत्पत्रसंस्थान आदि महत्त्वपूर्ण संस्थानोंका बल बढाना चाहिये और स्नायु आदि उनके अनुकूल रहनेयोग्य शक्तिशाली बनने चाहिये ।

यंत्रका प्रयात्र सन्द मुख्यका भाग और अनुष्ठान शब्द गौणका भाग बताता है । ये सब देव हमारे चारों ओर सब दिशाओंमें विभक्त हुए हैं और उन्होंने संपूर्ण स्थानको विभक्त किया है । ये सब देव हमारे शरीरमें चलनेवाले घातसांख्यिक सन्त के भागी बने, अर्थात् ये इस सौ वर्ष चलनेवाले जीवन रूपी महायज्ञके हिस्सेदार हैं ही, परंतु ये अपना कार्य करनेमें समर्थ बनकर अपना यज्ञका भाग उत्तम रीतिसे पूर्ण करनेमें समर्थ हों, अपना यज्ञका भाग उत्तम रीतिसे पूर्ण करें और निर्धिक्तासे यह घातसांख्यिक यज्ञ चलानेमें हमारे सहकारी बनें ।

इस प्रकार इन मंत्रोंका आशय है, ये मंत्र स्पष्ट हैं और बहुत बोधप्रद हैं । यदि पाठक इस ढंगसे अनुष्ठान करेंगे तो उनको निःसंदेह लाभ हो सकता है । यह "आयुष्य-गण" का सूक्त है और पाठक इस विषयके अन्य सूक्तोंके साथ इसका विचार करें ।

आशा-पालक-सूक्त ।

(३१)

(श्रुतिः— ब्रह्मा । देवता— आशापालाः; वास्तोष्पतिः)

आशानामाशापालेर्मध्यतुर्म्यो अमूर्तेभ्यः । हुदे भूतस्वापर्यधेभ्यो विधेम हविषा वृषम् ॥ १ ॥

य आशानामाशापालश्चत्वार स्थने देवाः । ते नो निष्क्रियाः पाशैर्म्यो मूधताहंमो-अहमः ॥ २ ॥

अस्मामस्त्वा हविषा यज्ञाम्पस्मिन्स्त्वा घृतेन जुहोमि ।

य आशानामाशापालस्तुगीर्वा देवः म नः समूतमेह यंयम् ॥ ३ ॥

स्वस्ति माय उग विधे नो अस्तु स्वस्ति गोम्यो जग्ने पुलेभ्यः ।

विश्वं सुभूतं सुविद्यं नो अस्तु ज्योगेव दक्षिणं यथम् ॥ ४ ॥

अर्घ्य- (भूतस्य अभ्यक्षेभ्यः) जगत्के अभ्यक्ष (अमृत्येभ्यः) अमर (आशानां चतुर्भ्यः आशापालेभ्यः) दिशाओंके चार दिशापालोंके लिये (वयं) हम सब (हविषा इदं विधेम) हविर्द्रव्यसे इस प्रकार अर्पण करते हैं ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवों ! (ये आशानां चत्वारः आशापालाः स्थन) जो तुम दिशाओंके चार दिशापालक हो (ते नः) वे तुम हम सबको (निर्ऋत्याः पादोभ्यः) अवनतिके पाशोंसे तथा (अंहसः अंहसः) हरएक पापसे (मुञ्चतां) छुड़ाओ ॥ २ ॥ (अ-स्त्रामः) न यका हुआ मैं (हविषा स्वायजामि) हविर्द्रव्यसे तेरा यजन करता हूँ । (अ-श्लोणः स्वाधृतेन जुहोमि) लंगड़ा न होता हुआ तुमसे पक्षि अर्पण करता हूँ । यह (आशानां आशापालः तुरयिः देवः) जो दिशाओंका दिशापाल चतुर्थ देव है (सः नः सुमृतं हव आवशतः) यह हम सबको उत्तम प्रकारसे यहां पहुंचावे ॥ ३ ॥ (नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु) हम सबकी माताके लिये तथा हमारे पिताके लिये आनंद होवे । तथा (गोभ्यः जगत्वे पुरुषेभ्यः स्वस्ति) गंधोंके लिये, चलने फिरनेवालोंके लिये और पुरुषोंके लिये सुख होवे । (नः मिदं सुमृतं सुविदर्श अस्तु) हम सबके लिये सब प्रकारका ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान हो और हम (सूर्यं ज्यौक् पून हशेम) सूर्यको बहुत कालतक देखते रहें अर्थात् हम दीर्घायुवी हों ॥ ४ ॥

भावार्थ— चार दिशाओंके चार अमर दिक्पाल हैं, वे इस अने हुए जगत्के अभ्यक्ष हैं । उनकी पूजा हम करते हैं ॥ १ ॥ चार दिशाओंके चार दिक्पाल हैं, वे हमें हरएक पापसे बचावें और दुर्गतिसे भी हमारा छुटकारा करें ॥ २ ॥ मैं न यकता हुआ उनका सत्कार करता हूँ, लंगड़ा छल्ल न बनकर मैं उनको धी देता हूँ, जो इन चार दिक्पालोंके चतुर्थ देव है यह हमें सुखपूर्वक उत्तम अवस्थातक पहुंचावे ॥ ३ ॥ हमारे माता पिता, हमारे अग्य इष्टामित्र, हमारे पाय चोटे आदि पशु तथा जो भी हमारे प्राणी हों वे सब इस इस प्रकार सुखी हों । हमारा सब प्रकारसे अभ्युदय होवे और हमारा ज्ञान उत्तम प्रकारसे बढ़े तथा हम दीर्घायु हों ॥ ४ ॥

इस द्वार से जानेसे उच्चतर अवस्था प्राप्त होती है ।

यह द्वार मन्वा केन्द्रके साथ संबंधित है । इसी मन्वा केन्द्रके साथ संबंध रखनेवाला निचला द्वार शिख है जिससे बाँयाका पात होता है । इसके योग्य नियम पालनसे सुशोभ्य संतति उत्पन्न होती है, परंतु इसके अनियम में चलानेसे मनुष्यकी अवो-गति होती है । ये दो द्वार मनुष्यको उच्च और नीच बनानेमें समर्थ हैं । मन्वाचर्य पालनद्वारा उत्तर मार्गसे जानेका उपनि-बद्धोका वर्णन इसी उत्तर मार्गसे सूचित करता है, इसीका नाम "उत्तरायण (उत्तर+अयन)" अर्थात् उत्तर मार्गसे जाना है । इसके विरुद्ध "दक्षिणायन" अर्थात् दक्षिण मार्गसे जाना है, जिसके संयमसे उत्तम गृहस्थधर्मपालनपूर्वक उन्नति होना संभव है, परंतु असंयमसे मनुष्य इतना गिरता है कि उसका कोई ठिकाना ही नहीं होता । ये दो मार्ग मन्वातंतुओंके साथ संबंध रखनेवाले हैं ।

इस प्रकार पूर्वद्वार और पश्चिमद्वार से शरीरमें अवनलिका के साथ संबंध बताते हैं तथा उत्तर द्वार और दक्षिण द्वार से दो मार्ग मन्वातंतुओंके साथ संबंध रखते हैं । ये चार द्वारोंके चार संरक्षक देव हैं परंतु ये देव राक्षसोंके हमलेके अंदर दबने नहीं पादिये ।

आशा और दिशा ।

इस सूक्तमें दिशावाचक "आशा" शब्द है और, उनके पालकका नाम "आशापाल" मंत्रोंमें आया है । "आशा" शब्दके दो अर्थ हैं । एक "दिशा" और दूसरा "आशा, महत्वा-कांक्षा, उन्मीद" । मनुष्यकी जैसी आशा, इच्छा, महत्वाकांक्षा और उन्मीद होती है उसी प्रकारकी उसकी कार्य करनेकी दिशा होती है । मनुष्य जिस समय आशाहीन हो जाता है, गिराव होता है, हराया होता है, उस समय वह इस जगत्से

हटनेका या मर जानेका इच्छुक होता है । यह विचार यदि पाठकोंके मनमें जम जायगा, तो उनको पता लग जायगा कि यह सूक्त मनुष्यके साथ कितना पणित संबंध रखता है ।

जिस समय "आशा" शब्दका अर्थ "आशा, आकांक्षा," आदि किया जाता है उस समय यही सूक्त मनुष्यका अभ्युदयर मार्ग बताता है । तथा जिस समय इसी "आशा" शब्दका अर्थ "दिशा" किया जाता है, उस समय यही सूक्त बाय जगत् तथा राष्ट्रेके प्रबंधका भाव बताता है । सूक्तकी यह शब्दरचना विशेष गंभीर है और वह हरएक को वेदकी अद्भुत वर्णन शैलीका स्वप्न बता रही है ।

सूक्तका मनुष्यवाचक भावार्थ ।

मनुष्यकी चार आशाएँ हैं, उनके चार अमर पालक हैं । इन भूतार्थियोंकी हम हवनसे पूजा करते हैं ॥१॥ मनुष्यकी चार आशाओंके चार पालक हैं, वे हमें पापसे बचावें और दुष्ट अवस्थासे भी बचावें ॥२॥ मैं न एकता हुआ और अंगाने दुर्बल न होता हुआ हविते तथा घृतसे इनकी वृद्ध करता हूँ इन चार आशाओंके पालकोंमें से चतुर्थ पालक जो है वह हमें उत्तम आनंदको प्राप्त करनेमें सहायक होवे ॥३॥ इनकी सहायतासे हमारे माता, पिता, इष्ट, मित्र, गाय, घोड़े आदि सब सुखी हों । हमारा अभ्युदय होवे और हम ज्ञानी बनकर दोगांधु बनें ।

केवल एक "आशा" शब्दका अर्थ ठीक प्रकार ध्यानेसे आनेसे व्यक्तिविशेषक उन्नतिके मार्गके संबंधमें कैसा उत्तम उपदेश मिल सकता है यह पाठक यहाँ देखें । यह उपदेश इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसके अनुसार चलनेसे मनुष्य ऐंद्रिक अभ्युदय तथा पारमार्थिक निःश्रेयस प्राप्त कर सकता है । इस सूक्तपर बहुत सिखा जा सकता है, परंतु यहाँ संक्षेपसे ही इसका विवरण करेंगे ।

मनुष्यमें

चार द्वारोंकी चार आशाएँ ।

मनुष्यके शरीरमें चार द्वार हैं, इस बातका वर्णन इससे पूर्व किया ही है । इन चार द्वारोंके कारण चार आशाएँ मनुष्यके मनमें उत्पन्न होती हैं । जिस प्रकार घरके जितने द्वार होते हैं उनसे बाहर जाने और इन दिशाओंसे कार्य करनेकी इच्छा घरके मालिक की होती है, उसी प्रकार इस शरीररूपी घरके स्वामी आत्मदेवकी आशाएँ इस घरके द्वारोंसे अगतने प्रगम करके

वहाँके कार्यक्षेत्रमें प्रवेश करनेकी सोचते हैं । वास्तवमें इस शरीरमें अनेक द्वार हैं, इसमें भी द्वार हैं, ऐसा अन्यत्र कई स्थानोंमें कहा है । देखिये—

महाशका नवद्वारा देवानां प्रप्रेष्यता ।

उत्तरां हिरण्यकाः कोटाः स्वर्गां न्योतिषाऽऽनृतः ॥

(अथर्वं १०।२।३१)

“आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवीकी अवस्था नामक नगरी है, इसमें सुवर्णमय कोश है वही तेजस्वी स्वर्ग है।”

इस अथर्व धृतिमें शरीरका और हृदय गुहाका वर्णन करते हुए कहा है, कि इस शरीरमें नौ द्वार हैं। ये द्वार हैं इसमें कोई संदेह ही नहीं है। दो नाक, दो व्यास दो कान, एक मुख, गुदा और शिश्न ये नौ द्वार यहाँ कहे हैं। इनमें से मुख पूर्व द्वार, गुदा पश्चिम द्वार, शिश्न दक्षिण द्वार इन तीनों का संबंध इस अपने प्रचलित मूलके मंत्रमें है। जो चतुर्थद्वार है वह आठ

चक्रवाले पृष्ठवंशके ऊपर मस्तिष्कसे भी ऊपर के भागमें विद्यति नामसे प्रसिद्ध है। इसका वर्णन अथर्ववेदमें इस प्रकार है—

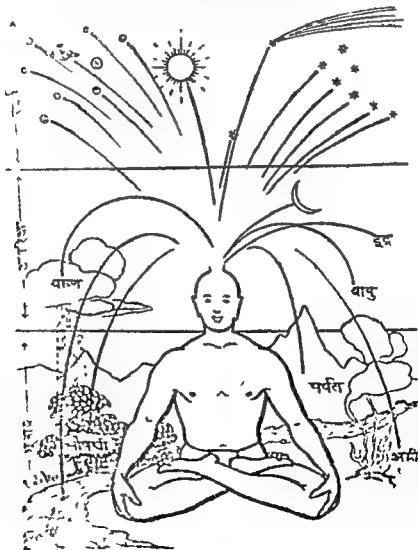
सूर्याग्नमस्य संसीन्यायवाँ हृदयं च यत्।

मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि दीर्यतः ॥

(अथर्व० १० २।२६)

“मस्तक और हृदय को सीकर अर्थात् एक केन्द्रमें सीन करके मस्तकसे भी ऊपर सिरके बीचमें से प्राण फैला जाता है।”

विद्यति-द्वारसे प्रवेश ।



विदिति द्वारासे तैत्तिरीय देवोंके साथ आत्माका शरीरमें प्रवेश।
मंदर मानेपर यह द्वार बंद होता है। पश्चात् प्राणसाधन
द्वारा अपनी हृच्छासे इसी द्वारसे घाघस जानेपर मुक्ति।
साधारण जन देहात्याग करनेके समय किसी अन्य द्वारसे
बाहर जाते हैं, परन्तु केवल योगी ही अथर्ववेदके कहे मार्गसे
मस्तिष्कके परे इसी द्वारसे जाता है और मुक्त होता है।

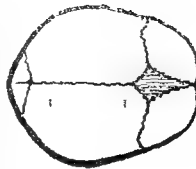
इस मंत्रमें “मस्तिष्मात् ऊर्ध्वः । अपि शीर्षत ।” आदि
शब्दों द्वारा मस्तकके ऊपर के उतार द्वाराका वर्णन किया है।
अर्थात् जो चार द्वार हमने इस मंत्रके व्याख्यानके प्रसंगमें
निश्चित किये हैं उनका बेदमें अन्यत्र वर्णन इस प्रकार आता है।
नौ द्वारोंमें तीन और इस मन्त्रा सस्थानका एक मिलकर चार
द्वार हैं और उनको चार आशाएँ अथवा दिशाएँ हैं। अब वे
आशाएँ देखिये—

द्वार

- १ पश्चिमद्वार = गुदा = की आशा विसर्जन करना।
शरीरधर्म।
- २ पूर्वद्वार = मुख = “ ” मधुर भोजन करना।
अर्थप्राप्ति।
- ३ दक्षिणद्वार = शिख = “ ” भोगका उपभोग
करना। काम।
- ४ उत्तरद्वार = विदिति = “ ” बंधनसे मुक्त होना।
मोक्ष।

आरोग्यका आधार

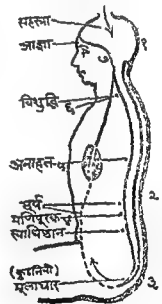
इसमें पश्चिमद्वारसे जो आशा है वह केवल “शरीरधर्म”
पालन करने की ही है तथापि इस शोध धर्मसे अर्थात् पवित्र
बनने के कर्मसे शरीर शुद्ध होनेके कारण इससे शरीर स्वास्थ्यकी
प्राप्ति होती है। सब अन्य भोग इसके आश्रयसे हैं यह अत
हर एक जान सकते हैं। इस द्वारका कार्य विगड़ जानेसे शरीर
रोगी होता है और अन्य द्वारों की आशाएँ पूर्ण होने की असमर्थ-
ता होती है। इसके साम प्रकार कार्य करनेपर अन्य आशाएँ
सफल होनेकी संभावना है। इसलिये हम कह सकते हैं, कि
इस पश्चिम द्वारकी आशा मनुष्यके मनमें “आरोग्यकी प्राप्ति”
रूपसे रहती है। इस आशाका कार्यक्षेत्र बहुत बड़ा है, मनुष्य
इस विषयमें जितना कार्य करेगा उतना वह स्वस्थता प्राप्त करेगा
और वह यदि ऐसे व्यवहार करेगा कि इस पश्चिम द्वारके
व्यवहार ठीक न चले तो उसके रोगी होनेमें कोई संकाही नहीं
है।



मस्तकमें
विदितिद्वार



विदितिद्वार



सहस्रार चक्र
पृष्ठवंशमें चक्रोंके स्थान।

पृष्ठवंश

खानपान ।

अब पूर्वद्वारकी आशा देखिये । संक्षेपसे इतना कहना इस विषयमें पर्याप्त होगा कि इस द्वारसे मनुष्य उत्तम अन्न और उत्तम पान करने की इच्छा करता है । मधुरतावा प्रेम करते करते मनुष्य इतना आर्षिक आशा है कि वह अजीर्णसे भीमार हो जाता है । इसलिये इस विषयमें प्रयत्नपूर्वक संयम रखना चाहिये । दलिका गुलाम और जिह्वाका दास जो बनता है उसकी आत्मा कष्टप्रद ही होती है । हरएक इन्द्रियके विषयमें यही बात है । इस प्रकार इन्द्रिय भोगके लिये धनकी आवश्यकता है इन हेतु इस द्वारकी आशा "अर्थको प्राप्ति" ही है । यह आशा अत्यधिक बढ़नेसे कष्ट होने और संयम द्वारा अत्यावश्यकताके अनुसार भोग लेनेसे सुख बड़ेगा, उन्नति होगी । सुखद्वारसे शब्द बोलनेका भी एक काम होता है । उत्तम शब्द-प्रयोगसे जगत्में ध्यानि फैलती है और ऊर्ण्यके प्रयोगसे अज्ञाति फैलती है । इस विषयमें भी जिह्वापर संयम रहना आवश्यक है । अन्वया अनर्थ होनेमें कोई हेर नहीं खोजेगी । इस प्रकार इस द्वितीय द्वारकी आशाका संबंध मनुष्यकी उन्नतिके साथ है ।

कामोपभोग ।

तीसरा दक्षिण द्वार है । इस द्विस्तद्वारा जगत्में उत्तम प्रयत्नन अर्थात् सुप्रयत्नजनन करना आवश्यक है । परंतु जगत् में इसके अर्थमयों को अनर्थ ही रहते हैं, वे किसीसे छिपे नहीं हैं । इसका संयम महत्प्रयाससे साध्य होता है । कर्मरेखा होना ही वैदिक धर्मका साध्य है । इसके विचारसे इन द्वारकी आशाएँ पता लग जायगा । यह ब्रह्म आर्षत महत्प्रयत्न है, परंतु जनना का इष्ट इमेक कार्यमें विनाश करनेकी और अधिक है और सुचारुके मार्गमें प्रयत्न अति फल दे ।

बंधनका नाश ।

बननेके लिये ही ये सब धर्ममार्ग हैं । जिस समय आये हुए मार्गसे यह जीवात्मा वापस जानेकी शक्ति प्राप्त कर सकेगा उस समय इसको कोई बंधन कष्ट नहीं पहुंचा सकता । हरएक बंधन को दूर करनेकी इच्छा इसमें इस द्वारके कारण है ।

इस प्रकार चार द्वार की चार आशाएं हैं और हरएक मनुष्य इन आशाओंके कार्यक्षेत्रमें घुसा या भला कार्य करता है और गिरता है या चढ़ता है । इन आशाओंके कार्यक्षेत्रकी कल्पना पाठकोंकी ठीक प्रकार हो गई, तो इस सूक्तके मंत्रोंका विचार समझनेमें कोई कठिनता नहीं होगी । इसलिये प्रथम इन चार द्वारोंका विचार पाठक बारबार मननद्वारा करें और यह बात ठीक प्रकार ध्यानमें धारण करें । तत्त्वज्ञात निम्नलिखित स्थानों-करण पढ़ें—

अमर दिक्पाल ।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रके कवचमें तीन बातें कही हैं—“(१) चार आशाओंके चार अमर आशा पालक हैं । (२) देही चार भूताध्यक्ष हैं । (३) उनकी पूजा हम इवनसे करते हैं ।”

मनुष्यमें चार आशाएं कीनहीं हैं, उन आशाओंका स्वरूप क्या है और उनके साथ मनुष्यके पतन अथवा उत्थानका किस प्रकार संबंध है, यह पूर्व रूपमें बताया ही है । चार आशाएं मनुष्यके अंदर सनातन हैं, (१) शरीरधर्मका एकाग्र करना, (२) भोग प्राप्त करना, (३) कर्मका भोग करना और (४) बंधनसे निवृत्त होना, ये चार भावनाएं अथवा कान्तारें मनुष्यमें सदा जागती हैं, पूर्वमें तथा प्राग्में ये समानतासे रहती हैं । प्रवृत्तियोंमें भी अस्पर्शसे ये रहती हैं अर्थात् भूतनाशमें वे सदा रहती हैं, इसलिये इनका सनातन आधिकार प्राणीमात्रपर है, माओ ये ही भूतोंके अध्यक्ष हैं । इनको अभ्यस्त इसलिये कहा कि वे इनकी श्रेणमें ही प्राणी भवने अपने सब व्यवहार करते हैं । यदि ये आशाएं प्राणियोंके अंदर न रहती तो उनकी इनका भी बंद हो जायगी । मनुष्यके संपूर्ण प्रयत्न इनकी आधीनस्थ

पूजा से लोग अपना ही पात कर रहे हैं। इतनी बात मत्स्य है कि उत्तरद्वार जिसका नाम विदिति है उसमें पूजाक अर्थात् अम्स है और पश्चिमद्वार की पूजा करना थोड़े ही जानते हैं। पश्चिमद्वार को पूजा योगमें प्रसिद्ध "अपानायाम" से की जाती है। जिस प्रकार नासिका द्वारा करनेका प्राणायाम होता है उसी प्रकार पश्चिम गुद द्वारसे अपानायाम किया जाता है। इसकी क्रिया भी थोड़े लोग जानते हैं। यह क्रिया योग-शास्त्रमें प्रसिद्ध है और इससे नाभिके निचले भागका आरोग्य प्राप्त होता है। उत्तरद्वार विदितिके उपासक स्वाम योगी होते हैं वे इस स्थानकी चालना करके अपनी मुक्तता प्राप्त करते हैं। इनकी हवनसे पूजा यह है—

१ पूर्वद्वार— (मुख)— अन्नपानादिके हवनसे पूजा

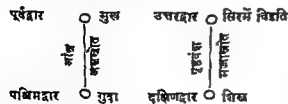
२ दक्षिणद्वार— (शिल्प)— भोगादिद्वारा कामदेवकी पूजा ।

६ पश्चिमद्वार — (गुदा)— अपानायाम—अपानका प्राणमें हवन करके पूजा । इसका उल्लेख भगवद्गीतामें । भी है — अपाने जुह्वति प्राण प्राणोऽपानं तथा परे । (अ० गी० ४।२९)

७ उत्तरद्वार— (विदिति)— अस्तिष्कके अन्नाकेन्द्रके सहस्रारचक्रमें ध्यानादिके पूजा ।

यहां पाठक जान गये होंगे, कि पहिली दो उपासनाएं जगत् में अधिक हैं और दूसरी दो कम हैं। परंतु बीजरूपसे हैं। प्रथम मंत्रमें " इमं चारो अमर आशापाठकी हवनद्वारा पूजा करेंगे" ऐसा स्पष्ट कहा है। यह इसलिये कि हर एक मनुष्य चारोंकी उपासनाद्वारा अपना उद्धार करे ।

‘ यहां नियमन की बात पाठकोंको ध्यानमें धारण करनी चाहिये । यह नियमन इस प्रकार है—



पूर्व तथा पश्चिमद्वार ये हमारे आंतिके विषय दिशाके मुख है । मुखका अतिरिक्त होनेसे शुद्धाका कार्य बिगड़ता है, और

शुद्धाका कार्य ठीक रहनेसे मुखकी शक्ति ठीक रहती है। इस प्रकार ये एक दूसरेपर नियमन करते हैं। इसी प्रकार अस्तिष्क और शिल्प ये परस्परका नियमन करते हैं। यदि शिल्पदेवने आंतरिक क्रिया को अस्तिष्क द्वारा होता है, और मनुष्य बुद्धि-का कार्य करनेमें असमर्थ होता है, पागल बनता है, निश्चय होता है। तथा अस्तिष्कमें सुविचारोंको स्थिर करनेसे वे सुविचार शिल्पदेवका संयम करनेमें सहायक होते हैं। इस प्रकार ये परस्पर उपकारक भी हैं और घातक भी हैं। पाठक सोच कर आनन्द प्रयत्न करें कि ये किस प्रकार उपकारक होते हैं और कैसे घातक होते हैं तथा इनकी उपासना किस प्रकार करनी चाहिये और इनके प्रकीर्णसे किस प्रकार बचना चाहिये । अब द्वितीय मंत्रका विचार करेंगे—

पापमोचन ।

द्वितीय मंत्रका आशय यह है— “चार आशाओंके चार आशापाठक देव हैं वे हमें पापसे तथा अधोगतिसे पाशासे बचावें । ”

पूर्वोक्त वर्णनसे पाठकोंने जान लिया होगा कि ये चार देव हमें किस प्रकार बचा सकते हैं और किस प्रकार गिरा सकते हैं । देखिये—

१ पूर्वद्वार—मुख=जिह्वाकी गुलामांशे खानपानमें आंतरिक होकर, गेटका विषाद और स्वास्थ्यका नाश । इसी जिह्वाके संयमसे आरोग्यप्राप्ति ।

२ पश्चिमद्वार—गुदा=पूर्वोक्त संयम और असंयमसे ही इसका लाभ या हानि प्राप्त होनेका संबंध है ।

३ दक्षिणद्वार—शिल्प=ब्रह्मवर्चद्वारा संयमसे उत्पत्ति, संयम-पूर्वक शुद्धचर्म पाठनसे सुप्रज्ञाप्राप्ति और असंयमसे क्षय ।

७ उत्तरद्वार—विदिति=पूर्वोक्त संयम और असंयमसे इसके लाभ और हानि प्राप्त होनेका संबंध है ।

इसका मनन करनेसे ये किस नियमसे पापसे छुड़ा सकते हैं इसका ज्ञान हो सकता है । पापसे छुड़ानेसे ही निर्वर्तितिके पाप-से मनुष्य छूट जाता है । निर्वर्तितिका अर्थ नाश है । पाप करने-वालेको निर्वर्तितिके अर्थात् विनाशके पाप बाध देते हैं । और पुण्यवानोंको उनसे कोई कष्ट नहीं होता । इस मंत्रका यह कथन बड़ा बोधप्रद है कि ये चार आशाकी चार आशाएं मनुष्यको पापसे छुड़ा सकती हैं और बंधनसे भी मुक्त कर सकती हैं । पाठक अपनी अपनी अवस्थाका विचार करें और आत्मपरीक्षाद्वारा जाननेका यत्न करें कि उनके लक्षणोंमें क्या दो रूढ़ा है । यदि

कोई आशापालक उनके विरुद्ध कार्य करता हो, या अशुके आधीन हुआ हो, तो साधनासे अपने बचावका यत्न करें। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका विचार करनेसे इतना बोध मिला; अब तृतीय मंत्र देखते हैं—

चतुर्थ देव ।

तृतीय मंत्रका आशय यह है—“मैं न यकता हुआ और अंगोष्ठे दुर्बल न होता हुआ हवनसे तथा घांसे इनकी तृप्ति करता हूँ। इन चार आशापालकों जो चतुर्थ आशापालक देव है वह हूँ सुखसे यश आनंद स्थानमें पहुंचावे ।”

इस मंत्रमें कहा हुआ “तुरीयः देवः” अर्थात् चतुर्थ देव त्रितितित्वाकरा रक्षक मोक्षकी आशाका पालक है। इसी देवकी कृपासे अन्य सब द्वागोष्ठा नियमन हो सकता है। इसी दृष्टिसे अन्य सब कार्य-व्यवहारका नियमन होना चाहिये। वैदिक धर्मके संपूर्ण कार्य-व्यवहार इसी दृष्टिसे रचै गये हैं। मोक्षके मार्गके ध्यानसे जगत्के सब व्यवहार होने चाहिये। इसीका नाम धर्म है। बंधनसे मुक्त होना मुख्य साम्य है, उसके सहायकारी अब अन्य व्यवहार होने चाहिये। अम्याजगत्के व्यवहारको अधिक महत्त्व देनेसे और मोक्षधर्मको कम महत्त्व देनेसे मनुष्यमें लोभहृदि होनेके कारण बड़ा अनर्थ होगा। त्यागपूर्ण जीवन और भोगपूर्ण जीवनका भेद यहाँ स्पष्ट होता है।

मंत्रमें कहा है कि न यकता हुआ और अवयवोसे विकल न होता हुआ मैं इन देवोंकी पूजा करूँगा। इस कथनका भाव स्पष्ट है कि मनुष्य प्रयत्न करके अपना शरीर सुदृढ़ बनावे और अनेक पुरुषार्थ करनेका उपाय मनमें स्थिर करे।

इन चार देवोंकी आज्ञादिये तथा भी आदिसे क्षुति करनी चाहिये। त्रिषदा जो हवन है उसीके अनुकूल उषध भी भी है। वह जैसा त्रिषदा देना है वह यथायोग्य रीतिसे देकर उसकी क्षुति करनी चाहिये। इस विषयमें धकाष्ट करना योग्य नहीं। न यकते हुए और न शीत होते हुए ये भोग प्राप्त करने और योग्य प्रमाणसे उनका स्वीकार भी करना चाहिये। अर्थात् बड़ी दक्षतासे ज्ञान का व्यवहार करना अभिनंदन है। परंतु सब व्यवहार करते हुए चतुर्थ देवकी कृपा गंगाधन करने का अनुसंधान रखना चाहिये। क्योंकि उसीकी कृपासे आनंद, उन्नति, यश आदि भी यहाँ प्राप्ति होती है और मन्त्रों भी मिल सकती है।

चतुर्थ मंत्र इस प्रकार हमारे सम्मुख आता है—“इन आशापालकों सहायतासे हम तथा हमारे माता, पिता, इष्ट, मित्र, गाय, घोड़े आदि सब सुखी हों। हमारा अभ्युदय होने तथा हम ज्ञानी बनकर निःश्रेयसके आगो वने और दीर्घायु बनें।” इस मंत्रमें चार बातें कही हैं—

१ स्वस्ति (सु+ अस्ति) = सबका उत्तम अस्तित्व हो अर्थात् इस लोकका जीवन सुखपूर्वक हो।

२ सुभूतं = (सु+ भूति) = उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त हो, यह उत्तम अभ्युदयका सूचक विधान है।

३ सुविद्वन् = (सु+ विद्+ ञ्) = उत्तम ज्ञान मिले। आत्मज्ञान ही सब ज्ञानोंमें उत्तम और निःश्रेयसका हेतु है। यह हमें प्राप्त हो।

४ उवोक् = दीर्घकाल जीवन हो। यह तो अभ्युदय और निःश्रेयससे सहज ही प्राप्त हो सकता है।

वेदमंत्रोंमें बारंबार “उवोक् च सूर्यं दधेम” अर्थात् “दीर्घकालतक सूर्यको हम देखते रहें।” यह एक सुवाच्य है, इसका तात्पर्य “हमारी आयु अनिर्दीर्घ हो” यह है। परंतु यहाँ ध्यानमें विशेषतया धारण करनेकी बात यह है कि अति दीर्घ आयु प्राप्त करनेका संबंध सूर्यसे अवश्यही है। जहाँ जहाँ दीर्घ आयु प्राप्त करनेका उपदेश वेदमें आया है वहाँ वहाँ सूर्यका संबंध अवश्य बताया है। इसलिये जो लोग दीर्घ आयु प्राप्त करना चाहते हैं वे सूर्यके साथ आपुष्यवर्धनका संबंध है यह बात भूलें। मन्त्रकी कृपासे दीर्घ आयु प्राप्त होती है इस विषयमें अवश्यवेदमें अध्ययन कहा है—

यो ये तां ब्रह्मणो वेदाद्युतेनापूतां पुरम् ।

तस्मै ब्रह्म च ब्राह्मणं चतुः प्रागं प्रजो ददुः ॥ १९ ॥

न वे सं चतुर्जहाति च प्रागो जरसः पुरा ।

पुरं यो ब्रह्मणो वेदं परस्याः पुरय उच्यते ॥ २० ॥

(अथर्व ११२)

“जो निययते ब्रह्मकी अप्रत्यक्ष पूर्ण जगत्को जानता है उसकी स्वयं प्रज्ञा और ब्रह्मके साथी अर्ध देव चतुः, प्राण और प्रमा देने हैं ॥ १९ ॥ अति बृहदवस्थासे पूर्ण-उपस्थिति प्राण और चतुः उच्यते नहीं जो मन्त्रपुराणोंको जानता है और त्रिषदा पुरोंमें रहनेके कारण इसका पुरय कहते हैं ॥ २० ॥”

इस प्रकार यह ज्ञानी मनुष्य इस परलोकमें यशस्वी होता है ।
यही इस सूक्तका उपदेश है ।

विशेष दृष्टि ।

यह सूक्त केवल बाह्य दिशाएं और उनके फलकोंका ही वर्णन नहीं करता है । बाह्य दिशाओंका वर्णन इस सूक्तमें है, परंतु दिशा शब्द न प्रयुक्त करते हुए " आशा " शब्द का प्रयोग इसमें इच्छालिये हुआ है कि मनुष्य अपनी आशाओं और उनकी पालक शक्तियोंकी अपने अंदर अनुभव करे और उनके संयम, नियमन, और योग्य उपासन आदिसे अपना अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करे

इस सूक्तका यह खेपालंकार बड़ा ही महत्वपूर्ण है । और जो इस सूक्तका केवल बाह्य दिशाओंके लिये ही समझते हैं वे इसके महत्वपूर्ण उपदेशसे वंचित ही रहते हैं । पाठक इस दृष्टिसे इसका अध्ययन करें

इस सूक्तका संबंध आयुष्य गण, अपराजित गण आदि अनेक गणोंसे विषयकी अनुकूलतासे है । यह सूक्त स्वयं वास्तोष्पात गण अथवा वसु गण का है । इसलिये "यद्वांके निवास" के साथ इसका अपूर्व संबंध है । इस प्रकारकी दृष्टिसे विचार करनेसे पाठक इससे बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं और उसको आचरणमें लाकर अपना अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त कर सकते हैं ।



जीवन-रसका महासागर ।

(३२)

(ऋषिः— ब्रह्मा । देवता—चापाशुषिणी)

इदं जनासो विदथं महद्ब्रह्मं वदिष्यति । न तत्पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥ १ ॥
अन्तरिक्ष आसां स्थाम् आन्तसदामिव । आस्थानंमस्य भूतस्य विदुष्टद्वेषतो न वा ॥ २ ॥
यद्रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् । आद्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥ ३ ॥
विश्वमन्यामंभीवारं तदन्यस्यामधिश्चितम् । दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरुं नमः ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (जनासः) लोगो ! (इदं विदथं) यह ज्ञान प्राप्त करो । वही ज्ञानी (सहत् ब्रह्म वदिष्यति) वही ब्रह्मके विषयमें कहेगा । (येन वीरुधः प्राणन्ति) जिससे जीवियों आदि प्राण प्राप्त करती है, (तत् पृथिव्यां न, नो दिवि) वह पृथ्वीमें नहीं और नहीं गुलोक में है ॥ १ ॥ (आसां अन्तरिक्षे स्थाम्) इन जीवधि आदिकोंका अन्तरिक्षमें स्थान है, (आन्तसदां इव) यक कर बैठेहुओंके समान (अस्य भूतस्य आस्थानं) इस बने हुएका स्थान जो है (तत् वेधसः विदुः वा न) वह ज्ञानी जानते हैं वा नहीं ? ॥ २ ॥ (यत् रेजमाने रोदसी) जो हिलनेवाले चापाशुषिणी और (भूमिः च) केवल भूमिने भी (निरतक्षतं) बनाया (तत् जय सर्वदा आद्रं) वह आज्ञातक सदासर्वदा रसमय है (समुद्रस्य स्रोत्याः इव) जैसे समुद्रके स्रोत होते हैं ॥ ३ ॥ (विश्वं) सब ने (अन्यां अभीवारं) दुष्टोंको घेरलिया है, (तत्) वह (अन्यस्यां अधिश्चितम्) दुष्टोंमें आश्रित हुआ है । (दिवे च) गुलों और (विश्ववेदसे पृथिव्यै) संसार पर्वतोंके शुच पृथिवीके लिये (नमः अकरं) नमस्कार मैंने किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे लोगो ! यह समझो कि जो तत्त्वज्ञान समझेया वही ज्ञानी उसका विवरण करेगा । तत्त्वज्ञान यह है कि—जिससे बनेवाली वनस्पतियां आदिक अपना जीवन प्राप्त करती हैं वह जीवनका सत्व पृथ्वीपर नहीं है और नहीं गुलोक में ॥ १ ॥ इन वनस्पति आदिका स्थान अंतरिक्ष है । जैसे वक्रोमादे विभ्राम करते हैं उसप्रकार ये वनस्पति आदिक अंतरिक्षमें रहते हैं । इस बने हुए जगत्का जो आधार है उसको कौनसे ज्ञानी लोग जानते हैं और कौनसे नहीं जानते ? ॥ १ ॥ दिव्ये जुग्मे गते

युलोक और पृथ्वीलोक के द्वारा जो कुछ बनाया गया है, वह सब इस समयतक विलकुल नया अर्थात् जीवन रससे परिपूर्ण जैसा है, जैसे सरोवरमें चलनेवाले स्रोत रससे परिपूर्ण होते हैं ॥ ३ ॥ यह सब जगत् दूसरी शक्तिके ऊपर रहा है और वह भी दूसरी के ही आश्रयसे रहा है। युलोक और सब घनोषे युक्त पृथ्वी देवोंको मैं नमन करता हूँ (क्योंकि ये दो देवताएँ इस जगत् का निर्माण करनेवाली हैं ।) ॥ ४ ॥

स्थूल सृष्टि ।

जो सृष्टि दिखाई देती है वह स्थूल सृष्टि है, इसमें मिट्टी पथर आदि अतिस्थूल पदार्थ, रुक्षवनस्पत्यादि घटनेवाले पदार्थ, पशुपक्षी आदि घटने और हिलनेवाले प्राणी तथा मनुष्य घटने हिलने और उन्नत होनेवाले सब छोटीके प्राणी हैं। पथर मिट्टी आदि स्थिर सृष्टीको छोड़ जाय और वनस्पति पशु तथा मानव सृष्टिमें देखा जाय, तो ये उत्पन्न होते हैं, घटते हैं और प्राण धारण करते हैं यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। इसमें दिखाई देनेवाला जीवनतरंग कौनसा तत्व है ? क्या यह स्थूल ही है या इससे भिन्न और कोई तत्व है इस का विचार इस सूक्तमें किया है ।

सब लोग इस जीवन रसका ज्ञान प्राप्त करें। यदि उनको जीवनसे आनंद प्राप्त करना है तो उनके उचित है कि वे इस (जनास. । विदय) ज्ञानको प्राप्त करें। यह मनन करने योग्य सूचना प्रथम मंत्रके प्रारंभमें ही दी है । (मंत्र १)

यह जीवन रसकी विद्या कौन देगा ? किससे यह प्राप्त होगी ? यह शका यही आती है, इस विषयमें प्रथम मंत्रने ही आगे जाकर कहा है कि, जो इस विद्याको जानता होगा, परी (महत् ब्रह्म यदिष्यति) वही ब्रह्मके विषयमें अर्थात् इस महत्त्वपूर्ण ज्ञानके निरयमें कहेगा । जिसको इस विद्याकी प्राप्ति परन्तु ही इच्छा हो, वह ऐसे विद्वानके पास जावे और ज्ञान प्राप्त करे । शिषी अन्यत्र पास जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

आगे के मंत्रोंमें आज्ञायाग ।

भूतमात्रका आश्रय ।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि—“ इस सृष्टिगत संपूर्ण पशु पक्षी आश्रयस्थान अंतरिक्ष है । इन स्थूल पदार्थ मात्रका जो अंतरिक्षमें आश्रय स्थान है वह ज्ञानी भा जानते हैं वा नहीं ? ” अर्थात् इसका ज्ञान सब ज्ञानियोंकी भी एकता है वा नहीं ? ज्ञानियोंमें भी जो परिपूर्ण ज्ञानी होते हैं वे ही केवल जानते हैं । सृष्टि विद्याके जाननेवाले इस बातको नहीं जान सकते, परंतु आरमविद्याका ज्ञान जाननेवाले ही इसको यथावत् जानते हैं । (मंत्र २)

इस द्वितीय मंत्रमें “ भूत ” शब्द है, इसका अर्थ ‘बना हुआ पदार्थ’ । “ जो यह बनी हुई सृष्टि है इसीका नाम भूत है और इसकी विद्याका नाम भूतविद्या है । इस सब सृष्टि का आधार देनेवाला एक सूक्ष्मतरंग है जिसका ज्ञान अप्यारमविद्या जाननेवाले ही जान सकते हैं । इसलिये जीवनरस विद्याका अध्ययन करनेवाले ऐसे सद्गुरुके पास जावें, कि जो इस ज्ञाता ही और उसके पाससे यह जीवनकी विद्या प्राप्त करें । यह ही ज्ञानी (महत् ब्रह्म यदिष्यति) वही ब्रह्मका ज्ञान कहेगा । इस प्रकार द्वितीय मंत्रका प्रथम मंत्रके साथ संबंध है ।

सनातन जीवन ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि—“ जो हम यावापृथिवीके ऊपर बना हुआ पदार्थ मात्र के वह यदा सर्वदा, भिन्न समय बना है उस समयसे लेकर इस समयतक बराबर जीवन रससे परिपूर्ण होनेके कारण नवीन सा रहा है, इसमें जीवन रस ऐसा भार है जंग सरोवरसे चलनेवाले विभिन्न स्रोतोंमें सरोवरका जल चलता है । ”

विषि नामोंमेंसे किसी नामका प्रयोग किया है और जगत्की मूल उत्पादक शक्तियोंका वर्णन किया है ।

जीवनका एक महासागर ।

वेदमें यावा पृथिवी — धुलोक और पृथ्वीलोक — को जगत् के माता पिता करके वर्णन किया है क्योंकि सम्पूर्ण जगत् इन्हींके अंदर समाया है । यह बना हुआ जगत् यद्यपि बननेके पश्चात् बढता और बिगडता भी है तथापि बने हुए सम्पूर्ण पदार्थोंमें जो जीवन तत्त्व व्याप रहता है वह एक रूप-से व्यापता है, इसलिये संपूर्ण जगत्के निश्चय अटल और एक जैसे हैं । हजारों वर्षोंके पूर्व जैसा जीवन संसारमें चलता था वैसा ही आज भी चल रहा है । इससे जीवनामृतकी अगाध सत्ता की कल्पना हो सकती है ।

जिस प्रकार एक ही सागरसे अनेक झील चलते हैं तो उनमें एक ही जीवन रस सबमें एकसा प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार इस संसारके अंदर बने हुए अमृत पदार्थोंमें एक ही अगाध जीवनके महासागरसे जीवन रस फैला रहता है, मानो संपूर्ण पदार्थ उस जीवनामृतसे ओतप्रोत भरपूर हो रहे हैं ।

पाठक क्षणभर अपने आपको भी उसी जीवन महासागरमें ओतप्रोत भलेवाले एक चक्केके सामान समझें और अपने अंदर वही जीवन झील चल रहा है इसका ध्यान करें । जिस प्रकार तैरनेवाला मनुष्य अपने चारोंओर जलका अनुभूति करता है उसीप्रकार मनुष्य भी उसी जीवन महासागरमें तैरनेवाला एक प्राणी है, इसलिये इस प्रकार ध्यान करनेसे उस जीवनामृतके महासागर की अल्पधी कल्पना हो सकती है । यह जीवन सदा ही नवीन है, कभी भी यह पुराना नहीं होता, कभी बिगडता नहीं । अन्य पदार्थ बनने और बिगडने पर भी यह एहसास नवीन रहता है । और यही सबको जीवन देता है । (तत्त्व व्यय सर्वदा भाई) वह आज और सदा सर्वदा एक जैसा अमिन्न रसपूर्ण रहता है । सबको जीवन देने पर भी जिसकी जीवन शक्ति रसिमान भी कम नहीं होती, इतनी अगाध जीवन शक्ति उसमें है ।

सबका एक आधाय ।

चतुर्थ मंत्रका कथन है कि—“संपूर्ण विश्व अर्थात् यह स्थूल जगत् एक दूसरी शक्तिके ऊपर रहता है और वह शक्ति और दूसरी शक्तिके आश्रयसे रहता है । वही आधारका तत्त्व पृथ्वी और बुलोकके स्वरूपमें दिखाई दे रहा है इसलिये मैं बुलोकमें उसकी प्रकाशशक्तिको और पृथ्वीमें उर्वरा आधार शक्तिको नमस्कार करता हूँ ।” अर्थात् संपूर्ण जगत्में उसकी शक्ति ही जगत् के रूपमें प्रकट होगई है ऐसा जानकर, जगत्की देखकर उस शक्तिका स्मरण करता हुआ उस विषयमें अपनी नम्रता प्रकट करता हूँ ।

स्थूल सूक्ष्म और कारण ।

इस मंत्रमें विश्व “शब्द” स्थूल जगत्का बोधक है इस स्थूलका आधार (अन्या) दूसरा है, इससे सूक्ष्म है और वह इसके अंदर है अथवा उसके बाहर यह सब विधा है । प्रत्येक स्थूल पदार्थके अंदर यह सूक्ष्म तत्त्व है और यह भी तसिरे आतिसूक्ष्म तत्त्व पर आश्रित है । यह तीसरा तत्त्व ही सबका एक मान आधार है और इसका जीवन असूक्ष्म सबमें एक रस होकर व्याप रहा है । इसी जीवनके समुद्रमें सब विश्वके पदार्थ तैर रहे हैं अथवा संपूर्ण पदार्थ कभी छोटे बड़े होत उसी एक आद्वितीय जीवनमहासागर से चल रहे हैं । इसमें उसीका जीवन कार्य कर रहा है यह बताना इस सूक्तका उद्देश्य है । अनेकों में एक ही जीवन भर । है इसका अनुभव यहा होता है ।

यह सूक्त केवल पढ़नेके लिये नहीं है, प्रत्युत यह मनकी धारणा करके अपने मनमें धारणाने स्थिर करनेके अनुष्ठानके लिये ही है । जो पाठक इसकी उक्त प्रकार धारणा कर सकेंगे वे ही इससे योग्य लाभ प्राप्त कर सकेंगे । पाठक यहा देखें कि छोटेसे छोटे सुक्तों द्वारा वेद कैसा अद्भुत उपदेश दे रहा है । निःसंदेह यह उपदेश जीवन पलटानेमें समर्थ है । परंतु यह लाभ वही प्राप्त करेगा कि जो इसको जीवनमें डालनेका यत्न करेगा ।

जलसूक्त

(३३)

(क्रपिः-शन्तातिः । देवता आपः । चन्द्रमाः)

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यासुग्निः ।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ १ ॥

यासां राजा वरुणो याति मर्च्ये सत्यानृते अउपश्यन् जनानाम् ।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ २ ॥

यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भुक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ ३ ॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।

घृतश्रुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ ४ ॥

अर्थ-जो (हिरण्य-वर्णा) सुवर्णके समान चमकनेवाले वर्णसे युक्त (शुचय पावका) शुद्ध और पवित्रता बढ़ानेवाला (यासु मविता जात) जिनमें सविता हुआ है और (यासु अग्नि) जिनमें अग्नि है, (या सुवर्णा) जो उत्तम वर्णवाला जल (जो अग्नि गर्भं दधिरे) अग्निको गर्भमें धारण करता है (ता आप) वह जल (न श स्योना भवन्तु) हम सबको शांति और मुख देनेवाला होवे ॥ १ ॥ (यासां मर्च्ये) जिस जलके मर्च्ये रहता हुआ (वरुण राजा) वरुण राजा (जना ना सयानृते अउपश्यन्) जनोके वश्य और असल कर्मोंका अवलोकन करता हुआ (याति) चलता है । (या सुवर्णा) जो उत्तम वर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और मुख देनेवाला होवे ॥ २ ॥ (देवा दिवि) देव गुल्लोहमें (यामा भक्ष कृण्वन्ति) जिनका भक्षण करते हैं, और जो (अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति) अन्तरिक्षमें अनेक प्रकार से रहता है और जो उत्तमवर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और मुख देनेवाला होवे ॥ ३ ॥ (या अग्निं) जल । (शिवेन चक्षुषा मा पश्यत) कल्याणकारक नेत्र द्वारा मुझको तुम देखो । (शिवया तन्वोप स्पृशत) कल्याणमय अपने शरीरसे मेरी स्पर्श करो । जो (घृतश्रुत) तेज देनेवाला (शुचय पावका) शुद्ध और पवित्र (आप) जल है (ता न श स्योना भवन्तु) वह जल हमारे लिये शांति और मुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

भाषार्थ-अन्तरिक्षमें सारा करनेवाले मेघमण्डलमें तेजस्वी पवित्र और शुद्ध जल है, जिन मेघोंमें तेज दिखाने देता हो, जिनमें विगुप्त रूपी अग्नि कभी व्यक्त और कभी गुप्त रूपसे दिखाने देता हो, वह जल हमें शांति और आरोग्य देनेवाला होवे ॥ १ ॥ जिनमें वरुण राजा प्रसन्न है और जाते जाते मनुष्योंके हाथ और अस्त्राय निचारे और कर्मोंका निर्वाह करता है जिन मेघोंमें विगुप्त रूपी अग्निसे गर्भके रूपमें धारण किया है उन मेघोंका चढ़क हमें मुख और आरोग्य देवे ॥ २ ॥ गुप्तोक्त के देव जिसका भक्षण करते हैं और जो विविध रूपरूपवाले अन्तरिक्षस्थानीय मेघोंमें रहता है तथा जो विगुप्त रूप धारण करते हैं उन मेघोंका जल हमारे लिये मुख और आरोग्य देवे ॥ ३ ॥ जल हमारा कल्याण करे और उसका हमारे शरीरके हाथ छीनेवाला रूपसे हमें आनन्द देनेवाला प्रतीत हो । मेघोंका तेजस्वी और पवित्र जल हमें शांति और मुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

वृष्टिका जल ।

इन चारों मंत्रोंमें वृष्टिजलका काव्यमय वर्णन है। इन मंत्रोंका वर्णन इतना काव्यमय है और छंद भी ऐसा उत्तम है कि एक स्वरसे पाठ करनेपर पाठकको एक अद्भुत आनंदका अनुभव होता है। इन मंत्रोंमें जलके विशेषण “शुचि, पावक, सु-वर्ण” आदि शब्द वृष्टि जलकी शुद्धता बता रहे हैं। वृष्टि जल जितना शुद्ध होता है उतना कोई दूसरा जल नहीं होता। शरीर शुद्धिकी इच्छा करनेवाले विष्यलोच इधो जलका पान करें और आरोग्य प्राप्त करें। इसके पानसे शरीर पवित्र और निरोग

होता है। सामान्यतया वृष्टि जल शुद्ध ही होता है परंतु जिस वृष्टिमें सूर्यकिरणों भी प्रकाशितों हैं उसकी विशेषता अधिक है। इधो प्रकार चंद्रमाकी किरणोंका भी परिणाम होता है।

इस सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें उत्तम स्वास्थ्यका लक्षण बताया है वह ध्यानमें धारण करने योग्य है—“जलका स्पर्श हमारी चमड़ाको आल्हाद देवे।” जबतक शरीर मरीज होता है तबतक ही शीत जलका स्पर्श आनंद कारक प्रतीत होता है, परंतु शरीर रुग्ण होते ही जल स्पर्श हुए लगने लगता है।



मधु-विद्या ।

(३४)

(ऋषिः— अथर्वा । देवता—मधुवल्ली)



इयं श्रीरन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि । मधोराधि प्रजातासि सा नो मधुमत्स्कृषि ॥ १ ॥
जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् । ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे पुरार्यणम् । वाचा वंदासि मधुमद भूयानं मधुसंतदशः ॥ ३ ॥
मधोरस्मि मधुतरो मधुघ्नान्मधुमत्तरः । मामित्किल त्वं वनाः शालां मधुमतीमिव ॥ ४ ॥
परि त्वा परितस्तुनेक्षुणाग्रामर्विद्विषे । यथा मां कामिन्यसो यथा मचापंगा असः ॥ ५ ॥

अर्थ—(इयं श्रीरन्मधुजाता) यह वनस्पति मधुरताके साथ उत्पन्न हुई है, म (त्वा मधुना खनामसि) तुझे मधुसे खोदता हू। (मधो अधि प्रजाता असि) शब्दके साथ तु उत्पन्न हुई है अतः (सा) वह तू (न मधुमत् कृषि) हम सबको मधुर कर ॥ १ ॥ (मे जिह्वाया अग्रे मधु) मेरी जिह्वाके अग्र भागमें मधुरता रहे । (जिह्वामूले मधूलकम्) मेरी जिह्वाके मूलमें भी मीठास रहे । हे मधुरता । तू (मम क्रतो इव अह अस) मेरे कर्ममें निधायक रहे । (मम चित्तं उपायसि) मेरे चित्तमें मधुरता पनी रहे ॥ २ ॥ (मे निक्रमणं मधुमत्) मेरा बालबलन मीठा हो । (मे परार्यणं मधुमत्) मेरा दूर होना भी मीठा हो । मैं (वाचा मधुमत् वंदासि) वाणसे मीठा बोलता हू जिससे मैं (मधुमन्मत्) मधुरताकी मूर्ति बनूँगा ॥ ३ ॥ मैं (मधो मधुवर अस्मि) शब्दसे भी अधिक मीठा हू । (मधुघ्नान् मधुमत्तर) मधुरपदार्थसे अधिक मधुर हू । (मां इव किल त्वं वना) गुप्तपर ही तू प्रेम कर (मधुमतीं शालां इव) जैसे मधुर रखवाली वृक्ष शालासे प्रेम करते हैं ॥ ४ ॥ (अ निद्विषे) बेर दूर करने के लिये (परितस्तुना इक्षुणा त्वा परि अगाम्) फेले हुए ईशके साथ तुझे घेरता हू । (यथा मां कामिनी अस) जितने तू मेरी कामना करनेवाली होवे और (यथा मयं न अपंगा अस) जिससे तू मुझसे दूर न होनेवाली होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह ईश नामक वनस्पति स्वभावसे मधुर है और उसको लगनेवाला और उखाड़नेवाला भी मधुरता की भावनासे ही उसको लगाता है और उखाड़ता है । इस प्रकार यह वनस्पति परमात्मासे मीठास अपने साथ लाती है, इसलिये हम चाहते हैं कि यह हम सबको मधुरतासे युक्त बनावे ॥ १ ॥ मेरी जिह्वाके अग्रभागमें मधुरता रहे, जिह्वाके मूल में और मध्यमें मधुरता

रहे । मेरे कर्ममें मधुरता रहे, और मेरा चित्त भी मधुर विचारोंका मनन करे ॥ २ ॥ मेरा चलचलन मीठा हो, मेरा खाना जाना मीठा हो, मेरे शरीर और भाव तथा मेरे शब्द भी मीठे हों । ऐसा होनेसे मैं अंदर बाहरसे मीठागम की मूर्ति हो 'बन्गा' ॥ ३ ॥ मैं गृहदशे भी मीठा बनता हूं, मैं मिठाईसे भी मीठा बनता हूं, इसलिये जिस प्रकार मधुर फलवाली शाखापर पक्षी प्रेम करते हैं इस प्रकार तू सुखपर प्रेम कर ॥ ४ ॥ कोई किसीका द्वेष न करे इस उद्देश्यसे व्यापक मधुरवर्णियोंका अर्थात् व्यापक मधुर विचारोंकी बाढ़ चारों ओर बनाता हूं ताकि इस वादमें सब मधुरता ही बढे और सब एक दूसरेपर प्रेम करें और विद्वेषसे कोई किसीसे विमुख न हो ॥ ५ ॥

मधुविद्या ।

वेदमें कई विद्याएं हैं अध्यात्मविद्या, देवविद्या, जन विद्या, युद्ध विद्या; इसी प्रकार मधुविद्या भी वेदमें है । मधुविद्या जगत् की और किस प्रकार देखना चाहिये वह दृष्टिकोण ही मनुष्यमें उपज करती है । उपनिषदों में भी यह मधुविद्या वेद मंत्रोंसे ली है । यह जगत् मधुरूप है अर्थात् मीठा है ऐसा मानकर जगत् की ओर देखना इस बातका मधु विद्या उपदेश करती है । दूसरी विद्या जगत् को कष्टका आगर बताती है, इसके पाठक कष्टविद्या कह सकते हैं । परंतु यह कष्टविद्या वेदमें नहीं है । वेद जगत् की ओर दुःख दृष्टिसे देखाना नहीं, न ही दुःख दृष्टिसे जगत्को देखनेका उपदेश करता है । वेदमें मधुविद्या इधीलिये है कि इसका ज्ञान प्राप्त करके लोग जगत् की ओर मधुरदृष्टिसे देखनेकी बात सीखें । इस विद्याके मंत्र अथर्ववेदमें भी बहुत हैं और अन्य वेदोंमें भी हैं, उनका यहा विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है । इस सूक्तके मंत्र ही स्वयं उक्त विद्याका उत्तम उपदेश देते हैं । पाठक इन मंत्रोंका विचार करें और उचित बोध प्राप्त करें ।

जन्म स्वभाव ।

पृथोमें क्या और प्राणियोंमें क्या हरएक का व्यक्तित्व जन्मस्वभाव रहता है जो बदलता नहीं । जैसा सर्वका प्रकाशना, अमिका उष्ण होना, ईशका मीठा होना, करेलाका कड़वा होना, इत्यादि ये जन्मस्वभाव हैं । ये जन्मस्वभाव वहाँसे आते हैं वह निवारणीय प्रश्न है । इस मिठागम खाता है और करेला कच्चाष्ट खाता है । पर ही भूमिमें उगी ये दो वनस्पतियां परस्पर भिन्न दो रसोंको अपने साथ लाती हैं । कभी कोलेमें मीठा रस नहीं होता और न ही ईशमें कड़वा । ऐसा क्यों होता है ? कहानों में रस आते हैं ?

कई कहना कि भूमि । क्योंकि अमिका नाम "रसा" है । इस भूमिमें विविध रस होते हैं । जो जो पौधा उगके पाय जाता है, वह उस रसभावके अनुसार भूमिमें रस गाँवका है और जगत्में देना है । करेलाका स्वभाव-कड़वा है और ईशका

मीठा है । ये पौधे भूमिके विविध रसोंमें से अपने स्वभावके अनुसार रस लेते हैं और उनको लेकर जगत् में प्रकट होते हैं ।

मनुष्यमें भी यही बात है । विभिन्न प्रकृतिके मनुष्य विभिन्न गुणधर्म प्रकट कर रहे हैं, उनको एक ही खजानेसे एकही जीवनके महानागरसे जीवन रस मिलता है, परंतु एकमें वही जीवन शान्ति बढानेवाला और दूसरेमें अशान्ति फैलानेवाला होता है । ये स्वभाव धर्म हैं । एवही जल जेधोंमें जाता है और मीठा बनकर दृष्टिसे परिशुद्ध स्थितिमें प्राप्त होता है, जिसकी पीकर मनुष्य तृप्त हो सकता है वही जल समुद्रमें जाता है और खारा बनता है, जिसको कोई पी नहीं सकता । यह स्वभाव भेद हैं ।

अन्य पदार्थ अथवा अन्य योनिया अपने स्वभाव बदल नहीं सकती । मरनेतक उनमें बदल नहीं होता । परंतु मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है कि जिस योनिके लोग छानियोंने आचरणसे अपना स्वभाव बदल सकते हैं । दुष्टके सुष्ठ बन सकते हैं, सुष्ठके प्रयुद्ध बन सकते हैं, दुराचारियोंके सदाचारी हो सकते हैं, इधीलिये वेद मनुष्योंको भलाई के लिये इस मधुविद्याका उपदेश दे रहा है । मनुष्य अपनी कच्चाष्ट कम करे और अपनेमें मिठागम बढाये यही यहा इस विद्याका उद्देश्य है ।

अब मधुविद्याका प्रथम मंत्र देखिये- "यद् ईश नामक वनस्पति मिठागम के साथ जन्मी है, मनुष्य मीठी मावनाके साथ उसे नोदते हैं । यह मधुरता लेकर आगे है, इसलिये हम आपको यह पानी मिठाससे युक्त करे ।" (मंत्र १)

यह प्रथम मंत्र बड़ा अर्थपूर्ण है । इसमें चार बातें हैं- (१) स्वयं मीठी स्वभाव का होना, (२) मीठी स्वभाव पाँवोंसे संबंध करना, (३) स्वयं मधुर जीवनको ध्यतीत करना, और (४) दूसरोंको मीठा बना देना । पाठक देखें कि- (१) ईश नाम स्वभावसे मीठा होता है, (२) मीठा उत्तम करनेकी इच्छा वालें दिवानोंसे उच्छरी मित्रता होती है, (३) ईश स्वयं मीठा जीवन रस अपने माथ खाता है और (४) मित्र कीर्ति के साथ

मिलता है उसको। मीठा बनाता है। क्या पाठक इस आदर्श मीठे जीवनसे बोध नहीं ले सकते ?

ये चार उपदेश हैं जो मनुष्यको विचार करने चाहियें। यह ईश अपने व्यवहारसे मनुष्यको उपदेश दे रहा और बता रहा है कि इस प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य मीठा बन सकता है। इसके मननसे प्राप्त होनवाले नियम ये हैं —

(१) अपना स्वभाव मीठा बनाना। अपनेमें यदि कोई कटुता, कठोरता या तीक्ष्णता हो तो उसको दूर करना तथा प्रति समय आत्मपरीक्षा करके, दोष दूर करके, अपने अंदर मीठा स्वभाव बढ़ानेका ध्यान करना।

(२) मनुष्यको उचित है कि वह स्वयं ऐसे मनुष्यों के साथ मित्रता करे कि जो मीठे स्वभाव वाले हों अथवा मधुरता फैलाने के इच्छुक हों।

(३) अपना जीवन ही मीठा बनाना, चालचलन, चालना धालना मीठा रखना। अपने इशारेसे भी कटुताका भाव व्यक्त न करना।

(४) प्रयत्न इस बातका करना कि दूसरोंके भी स्वभाव मीठे बनें और कठोर मरुतिवाले मनुष्य भी मधुर कर उचम मधुर मरुतिवाले बनें।

पाठक प्रथम मंत्रका मनन करेंगे तो उनको ये उपदेश मिल सकते हैं। "ईश स्वयं मीठा है मीठा चाहनेवाले किसान से मित्रता करता है, अपनेमें मधुर जीवन रख लाता है और जिसमें मिल जाता है उनको मीठा बना देता है।" इस प्रथम मंत्रके चार पादोंका भाव उक्त चार उपदेश दे रहे हैं। पाठक इन उपदेशोंको अपनातेका प्रयत्न करें। (मंत्र १)

यहाँ अन्योक्ति अलंकार है। पाठक इस काव्यमय मंत्रका यह अलंकार देखें और समझें। वेदमें ऐसे अलंकारोंसे बहुत उपदेश दिया है।

मीठा जीवन।

पूर्वोक्त प्रथम मंत्रके तीसरे पादमें अन्योक्ति अलंकारसे सूचित किया है कि "मनुष्य मिठाई के साथ जीवन व्यतीत करे।" अर्थात् अपना जीवन मधुर बनाये। दूरी बातोंकी व्याख्या अगले तीन मंत्रोंमें स्वयं वेद करता है। इसलिये उक्त तीन मंत्रोंका साथ ध्यान विरहा। न कहाँ देते हैं—

(दूसरा मंत्र) — "मेरी जिह्वाके मूल, मध्य और अग्रभागमें मिठाई रहे अर्थात् मेरा जो मधुर वाद ही बोलेंगा। कभी कटु वादका प्रयोग बोलनेमें और मेलने नहीं करूँगा, कि प्रियमे जगत्में कटुता फैले। मेरा विषय भी मीठे विचारोंका

चिन्तन करेगा। इस प्रकार चित्तके विचार और वाणीके उच्चारण एक रूपता से मीठे बन गये तो मेरे (कटु) आचार व्यवहार अर्थात् कर्म भी मीठे हो जावेंगे। इस प्रकार विचार उच्चारण आचारमें मीठा बना हुआ मैं जगत् में मधुरता फैलाऊँगा। मेरे विचार से, मेरे भाषणसे और मेरे आचार व्यवहार से चारों ओर मिठाई फैलेगी।"

(तीसरा मंत्र) — "मेरा आचार व्यवहार मीठा हो, मेरे पासके और दूरके व्यवहार मीठे हों, मेरे इशारे मीठे हों, मैं वाणीसे मधुर ही वाद उचरूँगा और उस भाषणका अद्ययभी मधुरता बढ़ानेवाला ही होगा। जिस समय मेरे विचार उच्चारण और आचार में स्वाभाविक और अनजान मधुरता टपकने लगेंगी, उस समय मैं माधुर्य की मूर्ति ही बनूँगा।"

(चतुर्थ मंत्र) — "जब शब्दसे भी मैं अधिक मीठा बनूँगा, और लट्टूहूसे भी मैं अधिक मीठा बनूँगा तब तब सब लोग निःसंदेह मुझपर वैसा प्रेम करेंगे कि जैसा पाणिन मीठे फलोंसे युक्त वृक्षशाखापर प्रेम करते हैं।"

ये तीन मंत्र कितना अद्भुत उपदेश दे रहे हैं इसका विचार पाठक अवश्य करें। कार भाषार्थ देते समय ही भाषार्थ ठीक व्यक्त करने के लिये कुछ आधिक शब्द रखें हैं, उनके कारण इनका अर्थ अधिक स्पष्टीकरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रतिज्ञा।

ये मंत्र प्रतिज्ञा के रूपमें हैं। मैं प्रतिज्ञा इस प्रकार करता हूँ यह भाव इन मंत्रोंमें है। जो पाठक इन मंत्रोंसे अधिकसे अधिक लाभ उठानेके इच्छुक हैं वे वही प्रतिज्ञा करें, यदि उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की और उस प्रकरण उनका आचरण हुआ तो उनका यह सर्वत्र कैव जायगा। यह पूर्ण अर्द्धिवा की प्रतिज्ञा है। अपने विचार, उच्चारण, आचार, वाणीके विषय प्रसार किसी भी दिशा न हो, इस प्रकार अपना वादयंत्र जीवन बनेवर जगत्में अलंकार ही ग्राह्य बन जायगा। इस अलंकारका सामान्य ध्यान करना वैदिक धर्मोद्देश परम धर्म ही है और इसीसे इस मधुविद्याका उपदेश हम शुरुआतमें हुआ है।

भाव आदि शत्रु-उत्पत्ति तक न आसके । यह बाढ अपने मनमें सुविचारोंकी हो, अपने इंद्रियोंके साथ संयम की हो, अपने घरमें परस्पर प्रेमकी हो, समाजमें परस्पर मित्रताकी हो । अपने सब मित्रभा उत्तम मीठे विचार जीवन में लाने और मधुरता फैलाने बाल हों ऐसी बाढ होगई तो अंदरका मिठासका खेत बिगड़ेगा नहीं । इस विषयमें पंचम मंत्र देखने योग्य है-

(पंचम मंत्र)—“ मै विद्वेषको हटानेके लिये चारों ओर फैलनेवाले मीठे ईश्वरोंकी बाढ तुम्हारे चारों ओर करता हूँ जिससे तू मेरी इच्छा करेगी और सुसंघे दूर भी न होगी । ”

यह जितना बड़ी पुरस्के आपसके अविद्वेषके लिये सत्य है

उतना ही अन्य परिवारों और मित्रजनोंके अविद्वेष और प्रेम बढ़ानेके विषयमें सत्य है । परंतु अपने चारों ओर मीठों बाढ करनेकी शुक्ति पाठकोंको अवश्य जाननी चाहिये । अपने साथ ईश्वरोंकी बाढ लेनेसे यह कार्य नहीं होगा । यह कार्य करनेके लिये जो ईश्वर चाहिये वे विचार, उच्चार और भावनाके तथा मनोभावना की ईश्वर चाहिये । जो पाठक अपने अंतःकरणके क्षेत्र में ईश्वर लगायें और उसकी पुष्टि अपने मीठे जीवन से करेंगे, वे ही वे वैदिक उपदेश आचरणमें ढाल सकते हैं ।

ये मंत्र स्पष्ट हैं । अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है, परंतु पाठक इनको काव्य की दृष्टिसे समझनेका यत्न करेंगे तभी वे लाभ उठा सकेंगे ।

तेजस्विता बल और दीर्घायुष्य

की प्राप्ति ।

(३५)

(ऋषिः—अथर्व । देवता—हिरण्यं, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवाः)

यदार्धभन्दाक्षायुणा हिरण्यं श्रुतानीकाय सुमनुस्पर्मानाः ।

तत्तै वक्ष्नाम्यायुषे वर्षसे बलाय दीर्घायुत्वाय श्रुतशरदाय ॥ १ ॥

नैनं रक्षांसि न पिशाचाः संहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ज्येष्ठतु ।

यो विभक्तिं दाक्षायुर्ण हिरण्यं स जीवेयुं कृणुते दीर्घमायुः ॥ २ ॥

अर्पा तेजो ज्योतिरोन्नो बलं च वनस्पतीनामुत्त वीर्याणि ।

इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयागो अस्मिन्तद्दक्षमाणो विमर्द्धिरण्यम् ॥ ३ ॥

सर्मानां मासामृतमिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पर्यसा पिपर्षि ।

इह आग्नी विश्वं देवास्तेऽनु मन्यन्तामहर्णयमानाः ॥ ४ ॥

अर्थ—(सुमनुस्पर्मानाः दाक्षायुणा) शुभ मनवाले और बलकी वृद्धि करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष (शत अनीकाय) बलके धी विमानों के संचालक के लिये (यन् हिरण्यं अथर्वम्) जो सुवर्ण वाधते रहे (तन्) वह सुवर्ण (आयुषे वर्षसे) जीवन, तेज, (बलाय) बल और (शरदाय दीर्घायुत्वाय) लंबी दीर्घ आयुके लिये (ते वक्षामि) तेरे ऊपर बांधता हूँ ॥ १ ॥ (न रक्षांसि, न पिशाचाः) न राक्षस और न पिशाच (एनं संहन्ते) हम पुरुषका हमला नद सकते हैं (हि) क्योंकि (एतन् देवानां प्रथमजं)

भोजः) यह देवोंसे प्रथम उपज हुआ सामर्थ्य है। (यः दाक्षायणं हिरण्यं त्रिभक्तिं) जो मनुष्य दाक्षायण सुवर्ग धारण करता है (सः जीवेतु दीर्घ आयुः कृणुते) वह जीवोंमें अपनी दीर्घ आयु करता है ॥ २ ॥ (अर्थां तेजः ज्योतिः भोजः बलं च) जलका तेज, कान्ति, पराक्रम और बल (उत्त) तथा (वनस्पतीनां वीर्याणि) औषधियोंके सब वीर्य (अस्मिन् अधि धारयामः) इस पुरुषमें धारण कराते हैं (इन्द्रे इन्द्रियाणि इव) जैसे आत्मामें इन्द्रिय धारण होते हैं । इस प्रकार (दक्षमागः हिरण्यं विभ्रतु) बल बढ़ाने की इच्छा करनेवाला सुवर्गका धारण करे ॥ ३ ॥ (समानां मायां ऋतुभिः) सम महिनोंके ऋतुओं के द्वारा (संवत्सरस्य पयसा) वर्ष रूची गौके दूधसे (त्वा वयं पिपर्मि) तुमसे हम सब पूर्ण करते हैं। (इन्द्राम्) इन्द्र और अग्नि (विश्वे देवाः) तथा सब देव (अङ्गर्णीयमानाः) संकोच न करते हुए (ते अतु मन्यन्तां) तेरा अनुमोदन करें ॥४॥

भारार्थ- बल बढ़ानेवाले और मर्षमें शुभ विचारों की धारणा करनेवाले श्रेष्ठ महारमा पुरुष सेना संचालकके देहपर बलवृद्धि के लिये जिस सुवर्णके आभूषणको लटका देते हैं, वही आभूषण में तेरे शरीरपर इसलिये लटकता हूँ कि इससे तेरा जीवन सुधरे, तेज बढ़े, बल तथा सामर्थ्य दृढित हो और तुमसे सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त हो ॥ १ ॥ यह आभूषण धारण करनेवाले पर पुरुषके हमलैसी न राक्षस और नही विधाव सह सकते हैं । वे इसके हमलैसे घबरकर दूर भाग जाते हैं, क्योंकि यह देवी से निकला हुआ सबसे प्रथम दर्जेका बल ही है । इसका नाम दाक्षायण अर्थात् बल बढ़ानेवाला सुवर्गका आभूषण है । जो इसका धारण करता है वह मनुष्योंमें सबसे अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥ २ ॥ इसका इस पुरुषमें जीवनका तेज, पराक्रम सामर्थ्य और बल धारण कराते हैं । और साथ साथ औषधियोंसे नाना प्रकारके संश्लेषणी बल भी धारण कराते हैं । जिस प्रकार इन्द्रमें अर्थात् आत्मामें इन्द्रिय शक्तियाँ रहती हैं वही प्रकार इस सुवर्गका आभूषण धारण करनेवाले मनुष्यके अंदर सब प्रकारके बल रहें, वे बाहर प्रगट हो जाय ॥ ३ ॥ दो महिनोंका एक ऋतु होता है । प्रत्येक ऋतुकी शक्ति भलग भलग होती है; माने संवत्सरकी चौथा दूध गौ के दूधसारकी छह ऋतुओंमें निबोधा हुआ है । यह दूध मनुष्य पशु और बलवान् बने । इसकी अनुकूलता ईद अग्नि तथा सब देव, करें ॥ ४ ॥

दाक्षायण हिरण्य ।

हिरण्य शब्दका अर्थ सुवर्ग अथवा सोना है, यह परिशुद्ध स्थितिमें बहुत ही बलवर्धक है । यह वेदमें भी लिया जाता है और शरीरपर भी धारण किया जाता है । श्री० वास्काचार्य हिरण्य शब्दके दो अर्थ देते हैं—“ हितरमणीयं, हृदयमणीयं ” अर्थात् यह सुवर्ग हितकारक और रमणीय है तथा हृदयकी रमणीयता बढ़ानेवाला है । सुवर्ग बलवर्धक तथा योग नाशक है इसलिये आरोग्य चाहनेवाले इसका उपयोग कर सकते हैं ।

इस सूक्तमें “ दाक्षायण ” शब्द (दक्ष+अयन) अर्थात् बलके लिये प्रयत्न करनेवाला इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है । प्रथम मंत्रमें यह शब्द मनुष्योंका विशेषण है और द्वितीय मंत्रमें यह सुवर्गका विशेषण है । तृतीय मंत्रमें इसी अर्थका “ दक्ष-माग ” शब्द है जो शक्तिमानका वाचक है । शठक विचार करीगे तो उनको निश्चय होगा कि “ दाक्षायण और दक्षमाग ” ये दो शब्द करीब एकान्तक के हैं । वाचक हैं । दक्ष शब्द वेदमें बलवाचक प्रयुक्त है । इस प्रकार इस सूक्तमें बल बढ़ानेका जो मार्ग बताया है, उसमें सबसे प्रथम हिरण्यधारण है । हिरण्यधारण दो प्रकारसे होता है, एक तो आभूषण शरीरपर धारण करना और दूसरा

सुवर्ण शरीरमें सेवन करना । सुवर्ण शरीरमें खानेकी रीति वैद्यमेंसे भी प्रसिद्ध है । सब अन्य धातु तथा औषधियाँ सेवन करनेपर शरीरमें नहीं रहती, परंतु सुवर्ण की ही विशेषता है कि यह शरीरके अंदर रहियेके जोड़ोंमें जाकर स्थिर रूपमें रहता है और मृत्युके समय तक साथ देता है । इस प्रकारकी मुक्तिधारणाने अनेक रोगोंमें मुक्तता होती है । इस रीतिसे धारण किया हुआ सुवर्ण देह मृत होनेपर उसके अंतर्गतके बाद शरीरकी शक्ति राक्षस सब मिलता है । अर्थात् यदि किसी पुरुषमें एक तीव्र सुवर्ण वैद्यकीय रीतिसे सेवन किया तो वह रोगामर सुवर्ण एक शरीरके दाह होनेके पश्चात् उसके संबंधियोंको प्राप्त हो सकता है । इस प्रकार कोई हानि न करता हुआ यह सुवर्ण बल और आरोग्य देता है ।

जो वेद इस सुवर्ण धारण विधिसे जानने हैं उनका नाम “ दाक्षायण ” प्रथम मंत्रमें बड़ा है । इस प्रकारका परिशुद्ध सुवर्ण बलवर्धक होनेसे उगहा नाम आ “ दक्षायण ” है यह बात द्वितीय मंत्रमें बला ही है । जो मनुष्य इस प्रकार सुवर्ण धारण विधिसे अपना लाघव्य बढ़ाना चहता है उगहा भी मनुष्य होने

तृतीय मंत्रमें ' दक्ष-माण " बताया है। इस प्रकार यह सुक्त यलवर्धन की बात प्रारंभसे अंत तक बता रहा है।

दाक्षायणी विद्या ।

यल यदानेकी विद्याका नाम दाक्षायणी विद्या है। (दक्ष-अयनः) यल प्राप्त करनेके मार्गका उपदेश इस विद्यामें होता है। इस विद्यामें मनके साथ विशेष संबंध रहता है (सु-मनस्यमानः) उत्तम मनसे युक्त अर्थात् मनका विशेष शक्तिये मंपन्न। कमजोरीकी भावनासे मन अवशून होना है और सामर्थ्य की भावनासे बलशाली होना है। मनका शक्ति यदानेकी जो विद्या है उस विद्याके अनुसार मन सुनियमसे युक्त बननेवाले प्रेष्ठ लोग " सुमनस्यमानाः दाक्षायणाः " या दोहावा वेदमें बताये हैं। पाठक अपने मनकी अवस्थाके साथ अपना बलका संबंध देखें और इन वाक्यों द्वारा जो सुमनस होन की सूचना मिलती है, वह श्रेय और दम प्रकार मानसिक धारणासे अपना बल बढ़ावें।

धातु है जो जीवन शक्तिका वाचक प्रसिद्ध है। इसलिये जीवन शक्तिका अर्थ भी अर्जाक शब्दमें है। इस अर्थके लेनेसे " धतानीक " शब्दका अर्थ " सौ जीवन शक्तिया, अथवा सौ जीवन शक्तियोंसे युक्त " होता है। यह भाव लेनेसे उक्त मंत्र भागका अर्थ ऐसा होता है कि—

सत्तानीकाय हिरण्यं यज्जामि । (मंत्र १)

" सौ जीवन शक्तियोंकी प्राप्ति के लिये मैं सुवर्णका धारण करता हूँ। " सुवर्णके अंदर तो कौनो बौद्ध है, उन सबकी प्राप्ति के लिये मैं उसका धारण करता हूँ। यह आशय प्रथम मंत्र भाग का है। इस प्रथम मंत्रमें इनमेंमें कुछ गुण कहे भी हैं—

आयुषे । यवसे । बलाय । दीर्घायुधाय । शतसारदाय ।

" आयु, तेज, बल, दीर्घ आयु, सौ वर्षकी आयु " इत्यादि शब्द जीवन शक्तियोंके ही सूचक हैं। इनका योधावा परिणाम यहाँ किया है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं और जान सकते हैं कि इसी प्रकार अनेक जीवन शक्तियाँ हैं, उनकी प्राप्ति अपने अंदर करनी और उनकी वृद्धि भी करनी वैदिक धर्मका उद्देश्य है। इस विचारसे ज्ञात हो सकता है कि यहाँ " धतानीक " शब्दका अर्थ " जीवनके सौ धर्म, जीवन की सैकड़ों शक्तियाँ " अभीष्ट है। यद्यपि यह अर्थ हमने संशर्प करने समय किया नहीं है तथापि यह अर्थ हमें यहाँ प्रतीत हो रहा है। इसलिये प्रसिद्ध अर्थ उत्तर देकर यहाँ यह अर्थ लिता है। पाठक इसका अधिक विचार करें।

इस प्रकार प्रथम मंत्रका यमन करनेके बाद इसी प्रकारका एक मंत्र यजुर्वेदमें योडेसे पाठभेदसे जाता है उसकी पाठकोंके विचारके लिये यहाँ देते हैं—

यदायधन्वादाशायण्य हिरण्यं सत्तानीकाय सुमनस्यमानाः ।

तम्य आवाजामि शतसारदावायुध्या अरदायिषामम् ॥

(मंत्र १५१)

प्रथमार्थ वैसाका वैसा ही है । यहाँ प्रथम मंत्रका विवरण समाप्त हुआ, अब द्वितीय मंत्रका विचार करते हैं । —

राक्षस और पिशाच ।

नरमांस भोजन करनेवाले राक्षस होते हैं और रक्त पीनेवाले पिशाच होते हैं । ये सबसे भूत होनेके कारण सब लोग इनसे डरते रहते हैं । परंतु जो पूर्वोक्त प्रकार "सुवर्ण प्रयोग करता है उनके हमलेको राक्षस और पिशाच भी सहज नहीं सकते ।" इतनी शक्ति इस सुवर्ण प्रयोगसे मनुष्यको प्राप्त होती है । सुवर्णमें इनकी शक्ति है । क्योंकि "यह देवोंका पहिला भोग है ।" अर्थात् सर्वा देवोंकी अनेक शक्तियाँ इसमें संश्रुति हुई हैं । इसलिये द्वितीय मंत्रके उत्तरार्धमें कहा है कि—"जो यह बल प्राप्त करे सुवर्ण शरीरमें धारण करता है वह सब प्राणियोंमें भी अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है ।" अर्थात् इस सुवर्ण प्रयोगसे शरीरका बल भी बढ़ जाता है और दीर्घ आयु भी प्राप्त होती है । यह द्वितीय मंत्रका भाव पहिले मंत्रका ही एक प्रकारका स्पष्टीकरण है, इसलिये इसका इतना ही, मनन पर्याप्त है । यही मंत्र मनुष्यमें निम्न लिखित प्रकार है—

न चमत्कृति न पिशाचास्तस्मिन् देवानामभोजः प्रथमजं ह्येतत् ।
यो विभक्तिं दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ यजु० १५।५।

'यह देवोंके उत्पन्न हुआ पहिला भोग है, इसलिये राक्षस और पिशाच भी इसके पार नहीं हो सकते । जो दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है वह देवोंमें दीर्घ आयु करता है और मनुष्योंमें भी दीर्घ आयु करत है ।'

इस मंत्रके द्वितीयांशमें योडा भेद है और जो अथर्व पाठमें "जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः" इत्यादि पा, वहाँ ही इसमें "देवेषु और मनुष्येषु" में शब्द अधिक हैं । "जीवेषु" शब्दका ही यह "देवेषु, मनुष्येषु" आदि शब्दोंद्वारा अर्थ हुआ है । इस प्रकार अन्य शाखासंहिताओंके पाठभेद देखनेसे अर्थ निश्चय करनेमें बड़ी सहायता होती है ।

यहाँ तक दो मंत्रोंका मनन हुआ । इन दो मंत्रोंमें शरीर पर सुवर्ण धारण करनेकी बातका उद्देश्य किया है अब अगले दो मंत्रोंमें जल वनस्पति तथा वायुवायुमनुसार उत्पन्न होनेवाले अन्य बलवर्धक पदार्थोंका अनर्वाग सेवन करनेकी महत्त्वपूर्ण विषया दी जाती है, उसका पाठक विद्वेय ध्यानमें मनन करे ।

तृतीय मंत्रमें कहा है—"जल और औषधियोंके तेज, क्षिति, शक्ति, बल और दीर्घवर्षक रम्योक्त इस रीति धारण करते हैं कि

जैसे आत्मामें इंद्रिय शक्तियाँ धारण हुई हैं । इसी प्रकार बल बढ़ानेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सुवर्णका भा धारण करे ।"

जलमें नाना औषधियोंके गुण हैं यह बात इसे पूर्व आगे हुये जल सूक्त में वर्णन हो चुका है । ये सूक्त पाठक वगैरह दत्त । औषधियोंके अंदर दीर्घवर्षक रस है, इसीलिये वैद्य भी वैद्य प्रयोग करते हैं, अथर्ववेदमें भी यह बात आगे आजायगी । जिस प्रकार जल अंतर्बोधा पवित्रता करके बल आदि गुणोंकी वृद्धि करता है, इसी प्रकार नाना प्रकारकी औषधियोंके औषधियोंके पथ हिन मित अन्न भक्षण पूर्वक सेवनसे मनुष्य बल प्राप्त करके दीर्घ जीवन भी प्राप्त करता है । सुवर्ण सेवनसे भी अथवा सुवर्णादि धातुओंके सेवनसे भी इसी प्रकार लाभ होते हैं, इसका वैद्यशास्त्रमें नाम "रस प्रयोग" है । यह रस प्रयोग सुयोग्य वैद्य ही के उपदेशानुसार करना चाहिये । यहाँ यजुर्वेदका इसी प्रकारका मंत्र देखिये—

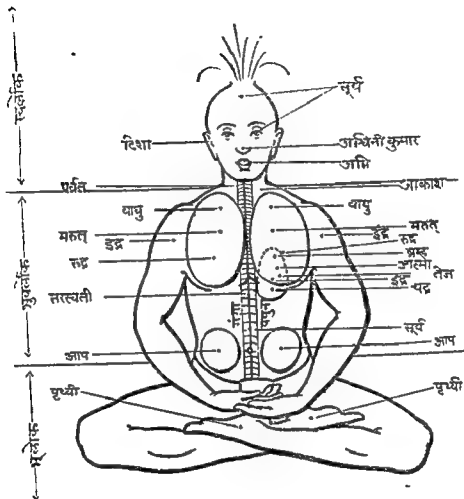
सुवर्णके गुण ।

आयुष्यं वर्षस्वं रायस्थौरमौनिरिदम् ।
इदं हिरण्यं वर्षस्वस्यैत्रायाविशतातु माद्र् ॥
वा. यजु. १५।५०

"(आयुष्यं) दीर्घ आयु करनेवाला, (वर्षस्वं) क्षिति बढ़ानेवाला, (रायस्थौर) शोभा और पुष्टि बढ़ानेवाला (मौनिरिदं) खामम उत्पन्न होनेवाला अथवा कार उठानेवाला, (वर्षस्वन्) तेज बढ़ानेवाला (त्रैत्राया) विप्रमते लिये (इदं हिरण्यं) यह सुवर्ण (मा त आविशता) मुझे अपना मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो ।"

सुवर्णका सेवन ।

मनुष्यके शरीरमें देवोंके अंश ।



जगत्में जो अग्नि आदि देव हैं उनके अंश शरीर में हैं। इनके स्थाय इस चित्रमें बताया है। इसके मननसे ज्ञात हो सकता है कि वायु जगत् के अग्नि आदि देवोंकी सहकारिताके साथ शरीरके स्वास्थ्यका कितना पानिष्ठ संबंध है।

काली कामधेनुका दूध ।

इस चतुर्थ मंत्रमें कहा है कालरूपी संवत्सरका (काली कामधेनुका) दूध जो मनुष्योंके द्वारा मिलता है, उससे मनुष्यकी पूर्णता करते हैं। इस कार्यमें इन्द्र अग्नि विधेदेव आदि सब पूर्णताये अनुकूल रहें।

संवत्सर—वर्ष अथवा काल—यह एक कामधेनु है। काल संबंधी दूध धेनु होनेसे इसको काली धेनु कहने में, यह इसलिये कामधेनु कहा गया है कि मनुष्यादिकोंके इच्छित फल धान्य आदि पदार्थ मनुष्योंके अनुकूल देकर यह मनुष्यादि प्राणियों

की पुष्टी करती है। प्रत्येक ऋतुके अनुकूल नाना प्रकारके फल और फूल संवत्सर देता है, इसलिये वेदमें संवत्सरको विताभी कहा है और यहां मधुर दूध देनेवाली कामधेनु कहा है। हर एक ऋतुमें कुछ नवीन फल, फूल, धान्य आदि मिलता है, मांसी इस धेनुका दूध है। यह दूध हर एक ऋतु इस संवत्सर रूपी गौसे निबोद्धकर मनुष्यादि प्राणियोंको देते हैं, वह अनुकूल अर्पण। इस मंत्रमें बताया है। पाठक इस काव्यपूर्ण अलंकार का अस्वाद यहां ले।

प्रत्येक मासमें प्रत्येक ऋतुमें तथा प्रत्येक क्षणमें जो जो

फल फूल उत्पन्न होते हैं उनका योग्य उपयोग करनेसे मनुष्यके बल, तेज, वीर्य, आयुष्य आदि बढ़ सकते हैं। यह इस मंत्रका आशय हर एक मनुष्यको मनन करने योग्य है। मनुष्य अपने पुरुषार्थ व प्रयत्नसे शत्रुके अनुसार फल फूल घान्म्य आदिकी अधिक उत्पत्ति करे और उनके उपयोग से मनुष्योंकी लाभ पहुँचावे।

पूर्व मंत्रमें “(अपो वनस्पतीनां च वीर्याणि) जल तथा वनस्पतियोंके वीर्य” धारण करनेका जो उपदेश हुआ है उसीका स्पष्टीकरण इस चतुर्थ मंत्रमें किया है। जिस शत्रुमें जो जल और जो वनस्पति वृक्ष व वीर्यवात् प्राप्त होनेकी संभावना हो, उस शत्रुमें उसका संप्रग्रह करके, उसका सेवन करना चाहिये। और इस प्रकार आयु, बल, तेज, वांति, शक्ति वीर्य आदि गुण अपने में बढ़ाने चाहिये।

यह वेदका उपदेश मनन करने और आचरणमें लाने योग्य है। इतना उपदेश करनेपर भी यदि लोग निर्बीर्य, निःशक्त, निस्तेज, निर्बल रहेंगे और वीर्यवान् बननेका यत्न नहीं करेंगे तो ॥ मनुष्योंका ही दोष है। पाठक इस स्थानपर विचार करें और निश्चय करें कि वेदका उपदेश आचरणमें लानेका यत्न वे कितना कर रहे हैं और कितना नहीं। जो वैदिक धर्मी लोग अपने वैदिक धर्मके उपदेशको आचरणमें नहीं लाते वे शीघ्र प्रयत्न करके इस दिशासे योग्य सुधार अवश्य

करें और अपनी उन्नतिका साधन करें।

इस मंत्रके उत्तरार्धका भाव मनन करने योग्य है। “इन्द्र अग्नि आदि सब देव इसकी अनुकूलतासे सहायता करें” अग्नि आदि देवताओंकी सहायताके बिना कौन मनुष्य कैसे उन्नतिको प्राप्त हो सकता है? अग्नि ही हमारा अन्न पकाता है, जल ही हमारी तृप्ति शांत करता है, धृती हमें आधार देती है, विजली सबको चेतना देती है, वायु सबका प्राण बनकर प्राणियोंका धारण करता है, सूर्यदेव सबको जीवन शक्ति देता है, अंशुमा अपनी किरणोंद्वारा वनस्पतियोंका पोषण करनेसे हमारा पक्षायक बनता है, इसी प्रकार अन्यान्य देव हमारे सहायक हो रहे हैं। इनके प्रतिविधि हमारे शरीरमें रहते हैं और उनके द्वारा ये सब देव अपने अपने जीवनोंस हमतक पहुँचा रहे हैं। इस विषयमें इसके पूर्व बहुत कुछ लिखा गया है, इसलिये यहाँ अधिक विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

इतने विवरणसे यह बात पाठकोंके मनमें आगई होगी कि अग्नि आदि देवताओंकी सहायता किस रीतिसे हमें हो रही है और यदि इनकी सहायता अधिक से अधिक प्राप्त करने और उससे अधिकसे अधिक लाभ उठानेकी विधि ज्ञात हो गई, तो मनुष्योंका बहुत ही लाभ हो सकता है। आगे है कि पाठक इसका विचार करेंगे और अपना आयु, आरोग्य बल और वीर्य बढ़ाकर जगत् में दमरबी होंगे।

यहाँ पठ अनुवाक और प्रथम आह समाप्त।

प्रथम काण्डका मनन ।

थोड़ासा मनन ।

इस प्रथम काण्डमें दो प्रपाठक, छः अनुवाक, पैंतीस सूक्त और १५३ मंत्र हैं । इस काण्डके सूक्तोंके ऋषि, देवता, और विषय बतानेवाला कोष्टक यहां देते हैं—जो पाठक इस काण्डका विशेष मनन करना चाहते हैं उनको यह कोष्टक बहुत लाभदायक होगा—

अथर्व वेद प्रथम काण्ड के सूक्तों का कोष्टक ।

सूक्त	ऋषि	देवता	गण	विषय
१	अथर्वी	वाचस्पति	वर्चस्वगण	मेधाजनन
२	"	पर्जन्य	अपराजितगण सांप्रामिक गण	विजय
३	"	मंत्रोक्त (धृष्णी, मित्र, वरुण, चंद्र, सूर्य)	—	आरोग्य
४	सिधुद्वीपः	आपः	—	"
५	"	"	—	"
६	"	"	—	"
		(इति प्रथमोऽनुवाकः)		
७	चातनः	इन्द्राग्नी	—	अधुनाशन
८	"	अग्निः, बृहस्पतिः	—	"
९	अथर्वी	वत्सदायः	वर्चस्व गण	तेजकी प्राप्ति
१०	"	अश्वरो वरुणः	—	पापनिवृत्ति
११	"	पूषा	—	सुखप्रप्ति
		(इति द्वितीयोऽनुवाकः)		
१२	भुवंगिराः	यक्षमाशन	तक्षमाशनगण	रोगनिवारण
१३	"	विदुः	—	ईशमन
१४	"	यमो वरुणो वा	—	कुलवधुविवाह
१५	अथर्वी	सिन्धु	—	संगठन
१६	चातनः	अग्नि, इन्द्र, वरुणः अधुनाशन गण	—	आशनाशन
		(इति तृतीयोऽनुवाकः प्रथमः प्रपाठकश्च समाप्तः ।)		
१७	महा	योधिः	—	रक्तप्राप-दूरीकरण
१८	प्रविशोदाः	विश्रावक, सोमाश्वं	—	सोमामयवर्धन
१९	महा	ईश्वरः, अपा	सांप्रामिकगण	अधुनाशन
२०	अथर्वी	धोम	—	महान आशुष
२१	"	इन्द्रः	अभयगण	प्रश्नापलन

(इति चतुर्थोऽनुवाकः)

२२	मन्त्र	सूर्यः, हरिमा, हृद्भोगः	—	हृद्भोग तथा कामिना रोग नाशन
२३	अथर्वा	ओषधिः	—	कुष्ठनाशन
२४	मन्त्रा	आमुदी धनस्पतिः	—	"
२५	मृग्वंशिराः	अग्निः, तत्कमा	तन्मनाशनयण	ज्वरनाशन
२६	मन्त्रा	इन्द्रादयः	स्वस्त्ययनयण	सुखगति
२७	अथर्वा	इन्द्राग्नी	"	विजयी हन्त्री
२८	चातनः	स्वस्त्ययनं	"	दुष्टनाशन

(इति पंचमोऽनुवाकः)

२९	इतिष्ठः	अभीवर्तमानेः	—	राष्ट्रवर्धन
३०	अथर्वा	विश्वेदेवाः	आयुष्ययण	आयुष्यवर्धन
३१	मन्त्रा	आनापात्राः, वास्तोऽपतिः	वास्तुयण	आनापाशन
३२	"	वावाप्रायिवी	—	जीवनतत्त्व
३३	शान्ताति	आपः, चन्द्रमाः	शान्तिगण	जल
३४	अथर्वा	मधुवल्ली	—	मीठा जीवन
३५	"	हिरण्यं, इन्द्राग्नी	—	वीर्यायु
		विश्वेदेवाः	—	

(इति षष्ठोऽनुवाको द्वितीयः प्रपाठकश्च समाप्तः)

इति प्रथमं काण्डम् ।

इन सूक्तोंका मनन करनेके लिये ऋषि और गणोंका विभाग जाननेकी भी आवश्यकता है । इसलिये ये सूक्त नीचे दिये हैं—

३ चातन ऋषि — शत्रुनाशन, दुष्टनाशन ।

४ भृग्वंगिरा ऋषिः—री०निवारण, उवरनाशन, ईशनमन विवाह ।

५ सिधुदीप ऋषि — जलसे आरोग्य ।

६ श्रवणे दा ऋषिः—सौभाग्यवर्धन ।

७ वसिष्ठ ऋषिः—राष्ट्रसंवर्धन ।

८ शान्ताती ऋषि—रुष्टि जलसे स्वास्थ्य ।

इस प्रकार किन ऋषियोंके नामोंसे किन दिन विषयोंका संबंध है यह देखना बड़ा बोधप्रद होता है । (१) सिधुदीप ऋषिके नाममें " सिंधु " शब्द जल प्रवाह का वाचक है और यही जल देवताके मनोंका ऋषि है । (२) चातन ऋषिके नामका अर्थात् " चातन " शब्दका अर्थ " घबरादेना भगदेना, शत्रुको उखाड़ देना " है और इस ऋषिके सूक्तोंमें भी यही विषय है । इस प्रकार सूक्तोंके अंदर आनेवाला विषय और ऋषिनामोंका अर्थ इसका कई स्थानोंपर घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है । इसका विचार करना योग्य है ।

सूक्तों के गण ।

जिन प्राचीन मुनियोंने अथर्व सूक्तोंपर विचार किया था, उन्होंने इन सूक्तोंके गण बना दिये हैं । एक एक गणके संपूर्ण सूक्तोंका विचार एक साथ होना चाहिये । ऐसा विचार करने से अर्थज्ञान भी शीघ्र होता है और शब्दोंके अर्थ निश्चित करना भी सुगम हो जाता है । इस प्रथम कांडक पैंतीस सूक्तोंमें कई सूक्त कई गणोंके अंदर आगये हैं और कई गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं । जो गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं उनको अथर्वकी दृष्टिसे हम अन्यगणोंके साथ पठ सकते हैं । इस प्रकार गणशः विचार करनेसे सूक्तोंका बोध शीघ्र हो जाता है, देखिये—

१ वयस्व्य गण—इसके सूक्त १, ९ ये हैं । तथापि तेज, आरोग्य आदि बहनेका उपदेश करनेवाले सूक्त इस गणके साथ पठ सकते हैं, जैसे — सूक्त ३—६, १८, २५, २६, ३०, ३१, ३४, ३५ आदि ।

२ अपराजित गण, सांमामिकगण इसके सूक्त २, १९ ये हैं तथापि इससे साथ संबंध रखनेवाले अमय गणकेसूक्त हैं । तथा राष्ट्रशासन और राज्य पालनके साथ सूक्तोंके संबंध गंभीर हैं, जैसे—सूक्त ७, ८, १५, १६, १७, २०, २१, २७, २९, ३१ आदि ।

३ तक्मनाशन गण—इस गणके सूक्त १३, २५, ये हैं तथापि सब रोग नाशक और आरोग्यवर्धक सूक्त इस गणके सूक्तोंके साथ पठना चाहिये । जैसे सूक्त ३—६; १७, २१, २३, २५, २३, ३५, आदि—

४ स्वस्त्ययनगण—इस गणके सूक्त २६, २७ ये हैं ।

५ आयुष्यगण—इस गणके सूक्त ३०, ३५ ये हैं, तथापि स्वस्त्ययन गण, वयस्व्यगण, तक्मनाशन गण तथा शांतिगणके सूक्तोंका इससे संबंध है ।

६ शांतिगण—जल देवताके सब सूक्त इस गणमें आते हैं ।

७ अभयगण—इसका सूक्त २१ वा है, तथापि इसके साथ संबंध रखनेवाले गण स्वस्त्ययनगण, अपराजितगण, तक्मनाशनगण, चातन-सूक्त ये हैं ।

इस प्रकार यह सूक्तोंके गणोंका विचार है और इस रीतिसे सूक्तोंका विचार होवेसे बहुत ही बोध प्राप्त होता है ।

अध्ययन की सुगमता ।

कई पाठक शङ्क करते हैं कि एक विषयके सब सूक्त इकट्ठे क्यों नहीं दिये और सब विषयोंके मिलेजुले सूक्त ही सब कांडोंमें क्यों दिये हैं ? इसका उत्तर यह है कि यदि जल आदि विषयोंके संपूर्ण सूक्त इकट्ठे होते, तो अध्ययन करनेवालेको विविधताका अभाव होनेके कारण अध्ययन करनेमें बड़ा कष्ट हो जाता । अध्ययनकी सुविधाके लिये ही मिलेजुले सूक्त दिये हैं । अच्छी पाठशालाओंमें घण्टे दो घण्टेमें भिन्न भिन्न विषय पढ़ाये जाते हैं, इसका यही कारण है कि पढ़नेवालोंके मस्तिष्ककी बृद्धि न हो । सबेरेसे शामतक एक ही विषयका अध्ययन करना ही जो पढ़ने पढ़नेवालोंका अतिकष्ट होते हैं । इस बातका अनुभव हरएकको होगा ।

इससे पाठक जान सकते हैं कि विषयोंकी विभिन्नता रखनेके लिये विभिन्न विषयोंके सूक्त मिलेजुले दिये हैं ।

इसमें दूसरा भी एक हेतु प्रतीत होता है, वह यह है कि, पूर्वोपर सबधका अनुमान करने और पूर्वोपर संबंधका स्मरण रखनेका अभ्यास हो । यदि जलसूक्त प्रथम कांडमें आया हो, तो आगे जहाँ जल सूक्त आजायें वहाँ वहाँ इसका स्मरण पूर्वक अनुसंधान करना चाहिये । इस प्रकार स्मरणशक्ति भी बढ गइती है । स्मरणशक्तिका बढना और पूर्वोपर संबंध जोड़नेका

अभ्यास होना ये दो महत्वपूर्ण अभ्यास इस व्यवस्थासे साध्य होते हैं।

इस प्रथम काण्डके दो प्रपाठक हैं, इस "प्रपाठक" का तात्पर्य ये दो पाठ ही हैं। दो प्र-पाठक" अर्थात् दो विशेष पाठ हैं। शुद्ध एकवार जितना पाठ लिया जाता है उतना एक-प्र पाठक होता है। प्रकाश यह प्रथमकाण्ड दो पाठोंकी पढ़ाई है। अथवा एक अनुवाकका एक पाठ अल्पबुद्धिवालोंकेलिये माना जाय तो यह प्रथमकाण्डकी पढ़ाई पाठोंकी मात्री आ सकती है। एक अनुवाकमें भी विषयोंकी विविधता है और एक प्रपाठकमें भी पाठ्य विषयोंकी विविधता है और इस विविधता के कारण ही पढ़ने पढ़ानेवालोंकी बड़ा श्रेयकता उत्पन्न हो सक्ता है।

आजकल इतनी पढ़ाई नहीं हो सकती, यह सुद्धि कम होना या। माहकता कम होनेका प्रमाण है। यह अथर्ववेद प्रयुक्त विद्यार्थीके ही पढ़नेका विषय है। इसलिये अच्छे प्रयुक्त तथा अन्य शास्त्रोंमें कृतपरिधम उक्त प्रकार पढ़ाई कर सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

अथर्ववेदके विषयोंकी उपयुक्तता।

जो पाठक इस प्रथमकाण्डके सब मंत्रोंकी अच्छी प्रकार पढ़ने और धीमा मनन भी करेंगे तो उनकी उन्नी समय इस बातका पता लग जायगा कि, इस वेदका उपदेश इस समयमें भी सर्वांग और अर्थपूर्ण उपयोगी तथा आज ही अपने आचरणमें लाने योग्य है। सूक्त पढ़नेके समय ऐसा प्रतीत होता है कि, यह उपाय आज ही हम आचरण में लायेंगे और अपना लाभ उठावेंगे। उपदेश की आविष्टता और आपत्ता इसी बातमें पाठकोंके मनमें स्पष्ट रूपसे छाड़ी हो जाती है।

वेद सब मंत्रोंसे घुराने मंत्र होनेपर भी मंत्रों से मन्त्रों हैं और यही इनकी "मन्त्रात्मक विद्या" है, यह विद्या कभी पुरानी नहीं होती। जो जिस समय और जिस अवस्थामें पड़ेगा उसको उन्नी अवस्थामें और उन्नी समय अपनी उन्नतिको उपदेश प्राप्त हो सकता है। इस प्रथम काण्डके सूक्त पढ़कर पाठक इस बातका अनुभव करें और वेद विद्याका महत्त्व अपने मनमें गिरा करें।

कम दस पांच बार मनन पूर्वक करना चाहिये।

व्यक्तिके विषयमें उपदेश।

प्रथम काण्डके ३५ सूक्तोंमें करीब १६ सूक्त ऐसे हैं कि जो मनुष्यके स्वास्थ्य, आरोग्य, नीरीयता, बल, आयुष्य, सुख आदि विषयोंका उपदेश देनेके कारण मनुष्यके दैनिक व्यवहार के साथ संबंध रखते हैं। हर एक मनुष्य इस समय में भी इनके उपदेशसे लाभ उठा सकता है। आरोग्यवर्धनके वैदिक उपायोंकी ओर हम पाठकोंका विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। जो इस गणके सूक्त हैं उनका मनन पाठन सबसे अधिक करें और अपनी परिस्थितिमें उन उपायोंकी बालनेका जितना हो सकता है उतना यत्न करें। आरोग्यवर्धनके उपायोंमें सांसारिकपक्ष इन उपायोंका वर्णन विशेष बलसे लाभ इस काण्डमें किया है—

जलसे आरोग्य—जलन आरोग्य होता है, पानीमें स्नान, सुख, नीरीयता आदि प्राप्त होती है यह बातनेपाले जल देवता के चार सूक्त दिये हैं। अनेक प्रकारके जलोंका इन सूक्तोंमें वर्णन करनेके बाद 'दिश्य जल' अर्थात् वेपोंने प्राप्त होनेवाले जलका महत्त्व बताया है यह कभी भूलना नहीं चाहिये। शृष्टिसे दिनोंमें जिन दिनोंमें शुद्ध जलकी वृष्टि होती है—उन दिनोंमें हम जलका समग्र इस्तेमाल कर सकते हैं। जहाँ वृष्टि बहुत होती है वहाँकी बात छोड़ दी जाय तो अन्यत्र यह जल सातमरके फीकेले लिये पर्याप्त प्रमाणमें मिल सकता है। परंतु हमरूप रखना चाहिये कि परके उपरपर जमा हुआ जल लेना नहीं चाहिये परंतु छत पर लूले और बड़े मुखाका बर्तन रखकर सबसे गीली वृष्टिपाराओं से जल गहराई करना चाहिये। अर्थात् ऐसा इंतजाम करना चाहिये कि वृष्टिजल की पाराएँ गीली अपने बर्तनमें आजाय। बीचमें हवा, उपर आदि धिनीका दावत न हो। इस प्रकारका इन्तजाम किया हुआ जल स्वच्छ और निर्मल बोनलों भरकर हमने उपभोग रहना है और बिगड़ना नहीं। यह बात यदि अच्छी रंग में दो बर्तन रखना है और इनका यह नुविगमनेका गुण ही मनुष्यका आरोग्य वर्धन करना है।

चाहिये और भोजन अत्यन्त लघु होना चाहिये । हरदिन भी पानेके लिये डमका उपयोग करनेवाले बड़ा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं । इसका नाम 'अमस्वारुणा वा पान' है । इसीको 'गुरा' भी कहते हैं । गुरा शब्द केवल मद्य अर्थमें आजकल प्रयुक्त होता है, परन्तु प्राचीन प्रथासे इसका अर्थ 'शुद्धि जल' भी था । वर्णन का जन साम्राज्य मेघ मण्डल में है और वही इस आरोग्य वर्षक शुद्धि जल को देता है । इसका वर्णन वेदके अनेक सूक्तों में है ।

वेदका यह आरोग्य प्राप्तिरा सोधा, सुगम और व्ययके बिना प्राप्त होनेवाला उपाय यदि पाठक व्यवहारमें लायेंगे तो वे बड़ा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं । इसलिये हम सानुरोध पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे इस विषयमें दत्तचित्त हों और अपना लाभ उठावें ।

आरोग्य साधनके अन्य उपाय ।

जल पश्चात् आरोग्य स बनके उपाय जो वेदन बताये ने अब हेतिये-

तंग कपडे पहननेवाले वायु लोगोंको होती है, इसका कारण यही है कि, जिनका शरीर सूर्य किरणोंके माय संबंध होनेके कारण बीरोग रहता है वे तन्दुरुस्त रहते हैं और जो नाना कपडे पहननेके कारण कमजोर चमड़ी बाल बनते हैं वे अधिक बीमार हो जाते हैं ।

रामायण महाभारतके समयमें रामकृष्णादि बीर अतिदीर्घ आयुवाले थे । वे बीर लोग धोती पहनते थे और धोती ही ओढ़ते थे । प्रायः अन्य समय शरीरपर एक उत्तरीय पहनते थे । पाठक इनके वर्णन यदि पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें यह बात आजायगी कि सभाओंमें भी वे लोग केवल धोती पहनकर ही बैठते थे । इसकारण इनके शरीरके साथ वायु और सूर्य प्रकाश का संबंध अच्छों प्रकार हो जाता था । अनेक कारणोंमें यह भी एक कारण है कि जिस हेतु वे अतिदीर्घायुवाले और अति बलवान् थे । वह सादगी इस समय नहीं रह गई है और इस समय बड़ी दुर्मिता हमारे जावन व्यवहारमें आगयी है इसका परिणाम हमारे अस्वास्थ्य दुर्बल और रोगी होनेमें हो रहा है । पाठक वेदके उपदेशके साथ इस ऐतिहासिक बालका भी मनन करें ।

सूर्य प्रकाश इतने विपुल प्रमाणमें भूमिपर आता है कि वह आवश्यकतासे कई गुना अधिक है । इतना होता हुआ भी तंग गलियों, तंग मकान, अंधेरे कमरे और उनमें अत्यधिक मनुष्योंकी संख्या होनेके कारण जीवन देनेवाला सूर्यनारायण हमारे आरोग्यवर्धनके लिये प्रातेदिन आता है, तथापि हमारेलिये वह क्षतना लाभ नहीं पहुंचा सकता जितना कि वह पशुबाने में समर्थ है । ये सब दोष मनुष्यकृत हैं । ऋषिजीवनका हमें इस विषयमें बहुत विचार करना चाहिये और जहासक हों सके वहां तक चरन करके वह सादगी हमारे स्वागपान, वस्त्रभूषण तथा अन्य-य व्यवहारमें आनी चाहिये । वेदके उपदेशानुसार ऋषि अपना व्यवहार रखते थे, इसलिये ऋषि लोगोंकी अतिदीर्घ आयु प्राप्त होती थी, और हम उनके बोलचाल उल्टे आ रहे हैं, इसलिये मनुष्यके वक्षमें हम अधिक हो रहे हैं ।

ही है। खुली वायु और तुला सूर्य प्रकाश मनुष्योंको पूर्ण आयु प्रदान करनेमें समर्थ है, परंतु जो मनुष्य उनसे दूर भागते हैं उनका लाभ कैसे हो सकता है? तृप्तिजल, सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु ये तीन पदार्थ वेद मंत्रों द्वारा आरोग्य बढ़ानेवाले बताये हैं और आजकलके शास्त्रभी उन बातों की पुष्टि कर रहे हैं, इतना ही नहीं परंतु युरोप अमेरिकामें जहां शीत अधिक होता है, उन देशोंमें भी ऐसी संस्थाएं स्थापित हुई हैं कि जहाँ आरोग्य वर्धनके लिये सूर्य प्रकाशमें करीब करीब नगा रहना आवश्यक माना गया है। जिन लोगोंने तब कपड़े पहननेके रिवाज जारी किये, वे ही युरोप अमेरिकाके लोग इस प्रकार ऋषिजीवन की ओर झुक रहे हैं यह देखकर हमें बदरी सच्चाईका जगत् में विजय हो रहा है यह अनुभव होनेसे अधिक ही आनंद होता है। बिना प्रचार किये हुए ही लोग भूलते और भटकते हुए वैदिक सच्चाईका इस प्रकार ग्रहण कर रहे हैं; ऐसी अवस्थामें यदि हम अपने वैदिक अध्ययन करेंगे, उन वेद मंत्रोंके उपदेशों की अपने आचरणमें डालेंगे, और अनुभव लेनेके पथान् अपने धार्मिक जीवनमें उस सच्चाईका जगत्में प्रचार करेंगे तो जगत्में इस सच्चाईका विजय होनेमें कोई देरी नहीं लगेगी।

इसलिये हम पाठकोंसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे वेदका पाठ केवल मनोरंजनके लिये न करें, केवल पारलौकिक भावनासे भी न करें, प्रत्युत वह उपदेश इस जगत् के व्यवहार में किस प्रकार वाला जा सकता है, इसका विचार करते हुए वेदका अध्ययन करें। तब हमके गहरावका पता विशेष रीतिसे लग जायगा।

राष्ट्रीय जीवन।

जंग वैयक्तिक जीवनके लिये वैदिक उपदेशोंकी उपयोगिता है उसी प्रकार सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनके लिये भी वेदके उपदेश आनि मनन करने योग्य हैं। यह विषय आगेके रागोंमें विशेष रातिमें आनेवाला है, और वही इसका अधिक निरूपण होगा। इस प्रथम कांडमें भी राष्ट्र विषयक मंत्र वदे आजम्बी और अत्यंत बोधप्रद हैं।

उनतीसवें सूक्तमें 'राष्ट्रके लिये भुक्ते बडावो,' तथा 'राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये यह आभूषण मेरे शरीरपर बांधा जावे' इत्यादि आजम्बी उपदेश हरएक गमयमें और हरएक राष्ट्रके मनुष्यों और राजपुरुषोंके लिये आदर्श रूप हैं। राष्ट्रीय हमिये यह वसिष्ठ सूक्त हरएक मनुष्यको विचार करने योग्य है।

इस प्रथम कांडमें कई महत्त्वपूर्ण विषय आये हैं उन पर हम यहाँ विचार करनेके लिये स्थान नहीं है। उग उग गुल्ले प्रसंगमें ही विशेष बातका विवरण किया है। इसलिये हमसे दुहराने की यहाँ कोई आवश्यकता ही नहीं है। पाठक हम राईका बारबार मनन करेंगे तो मननसे उनके मनमें ही विशेष बातें स्वयं स्फुरित हो जायगी, जो ऊपरके विषयमें लिखी नहीं हैं। वेदका अर्थ जाननेके लिये मना ही करना चाहिये।

आजा है कि पाठक मनन पूर्वक इस वाक्यका अन्वय करेंगे और इस उपदेशसे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करनेका यत्न करेंगे तथा जो विशेष बात अनुमनमें आ जायगी उसका प्रकाशन जनताकी मलाईके लिये करेंगे। इस प्रकार करनेसे सबका ही भला हो जायगा।





अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

प्रथमकाण्डकी विषय-सूची ।

सूक्त	विषय	पृष्ठ		
अथर्ववेदके विषयमें स्मरणीय कथन ।	३	३	पृथ्वीमें जीवन ।	"
अथर्ववेदका महत्त्व ।	"	"	मृत्युबोध निवारण ।	११
अथर्वशास्त्र ।	"	"	पूर्वोपर सम्बन्ध ।	२०
अथर्वके कर्म ।	"	"	धारिण शास्त्र का ज्ञान ।	"
मन्त्रका सम्बन्ध ।	४	४	जल सूक्त ।	"
छान्तिर्कर्म के विभाग ।	"	५	"	११
मन्त्रोंके अनेक उद्देश्य ।	५	६	"	११
सूक्तोंके गण ।	६	६	जलकी मिश्रता ।	"
अथर्ववेदका महत्त्व ।	"	"	जलमें औषध ।	११
अथर्ववेद प्रथम काण्ड ।	८	८	समता और विषमता ।	"
१ वैधाजनन ।	९	९	जलही वृद्धि ।	१४
बुद्धिका संवर्धन करना ।	११	११	शीर्ष आयुष्यका मापन ।	"
मनन ।	११	११	प्रजनन शक्ति ।	"
अनुसंधान ।	१२	१२	७ धर्म-प्रचार-सूक्त ।	१५
२ विजय-सूक्त ।	"	"	अग्नि बोन है ।	१६
वैपश्चित्त विजय ।	१३	१३	शानी उपदेशक ।	"
पिताके गुण-धर्म-कर्म ।	"	"	महा क्षत्रिय ।	"
माताके गुण-धर्म-कर्म ।	"	"	इन्द्र बोन है ।	"
पुत्रके गुण-धर्म-कर्म ।	"	"	धर्मोपदेश का क्षेत्र ।	"
एक अद्भुत अलंकार ।	१४	१४	दुष्टोंका सुधार ।	१७
कुटुम्ब का विजय ।	"	"	मित्र भोजन करो	१८
पूर्वोपर सम्बन्ध ।	१५	१५	दुष्ट जीवनका पथान्वय	"
कुटुम्बका आदर्श ।	"	"	धर्मोपदेशक कार्य बन्परे	"
औषधि प्रयोग ।	"	"	दुष्टोंकी पथान्वयसे छुटि ।	१९
राष्ट्रका विजय ।	१६	१६	धर्मका दूत ।	"
१ आरोग्य सूक्त ।	"	"	बाहुभोजी दण्ड ।	"
आरोग्य का साधन ।	१७	१७	प्रत्यक्ष और अतिदीर्घ प्रत्यक्ष प्रमाण ।	२०
परमन्त्रे आरोग्य ।	"	"	८ धर्म-प्रचार-सूक्त-	"
मित्र (प्राय) वापुगे आरोग्य ।	"	"	धर्मोपदेशका परिणाम ।	११
बल (बल) देवसे आरोग्य ।	"	"	मन्त्र-विज्ञान आदि ।	"
बल (बल) देवसे आरोग्य ।	१८	१८	दुष्टोंकी सम्बन्धका सुधार ।	१९
सूर्यदेवसे आरोग्य ।	"	"	कार्ये प्रमाण ।	"
वधवार विधि ।	"	"		

९ सर्व-भासि सूक्त ।	३३	वरकी परीक्षा ।	"
देवताओंका सम्बन्ध ।	"	पतिके गुणधर्म ।	"
उष्णतिका मूलमन्त्र ।	३४	वधू परीक्षा ।	५१
विजयके लिये संयम ।	३५	बन्ध्याके गुणधर्म ।	"
ज्ञानसे जातिमें श्रेष्ठताकी भासि ।	"	मगनीका समय ।	"
अनताकी भलाई करना ।	"	धिरकी सजावट ।	"
उष्णतिका चार संदियों ।	३६	मंगनीके पथान् विवाह ।	५२
इन सूक्तोंका स्मरणार्थ उपदेश ।	"	१५ संगठन-महावक्त्र-सूक्त	"
१० असत्य भाषणादि पापोंसे छुटकारा ।	३७	संगठनसे क्षत्रिकी वृद्धि ।	५३
पापसे छुटकारा पानेका मार्ग ।	३८	यज्ञमें संगतिकरण ।	"
एक शासक ईश्वर ।	"	संगठन का प्रचार ।	५४
ज्ञान और भक्ति ।	"	पशुभाव का यज्ञ ।	"
प्रायश्चित्त ।	"	पशुभाव छोड़नेका फल ।	"
पापी मनुष्य ।	३९	१६ चौर-नाशन-सूक्त	५५
११ सुख-प्रसूति सूक्त ।	"	क्षत्रिकी गोली ।	"
प्रसूति प्रकरण ।	४०	शत्रु ।	"
ईश्वरभक्ति ।	"	आर्य धीर ।	५६
देवोंका गर्भमें विकास ।	४१	१७ रक्तश्राव बन्द करना ।	"
गर्भवती स्त्री ।	"	श्राव और रक्तश्राव ।	५७
गर्भ ।	"	दुर्भाग्य की क्षी ।	"
सुख प्रसूतिके लिये आदेश ।	४२	विषवाके वक्त्र ।	"
आईकी सहायता ।	"	१८ सौभाग्य-वर्धन-सूक्त ।	५८
सूचना ।	४३	कुलक्षण और सुलक्षण ।	५९
१२ श्वादि रोग निवारण सूक्त ।	४४	वाणीसे कुलक्ष्णोंको हटाना ।	"
महत्त्वपूर्ण सूक्त ।	४५	वाणीसे श्रेण्या ।	"
आरोग्य का दाता ।	"	हाथों और पावोंका दर्द ।	६०
सर्प किरणोंसे चिकित्सा ।	४६	सौभाग्यके लिये ।	"
सर्व साधारण उपदेश ।	"	सन्तानका कल्याण ।	"
१३ अन्तर्यामी ईश्वरको नमन ।	४७	शत्रु नाशन-सूक्त ।	"
सूक्त की देवता ।	"	आन्तरिक कवच ।	६१
तापका महत्व ।	४८	इस सूक्तके दो विभाग ।	"
परम धाम ।	४९	वैदिकधर्मका माध्य । आश्विनच	"
सुखमें सहायता ।	"	अन्य कवच । आश्विनच	६२
नमन ।	"	दासभावका नाश ।	"
१४ कुलवधू सूक्त ।	"	२० महान् शासक ।	६३
पदिता प्रस्ताव ।	५०	पूर्व सूक्तसे सम्बन्ध ।	६४
प्रस्तावना अनुमोदन ।	५१	आपसकी घृष्ट हटा दो ।	"
		बड़ा शासक ।	६५

२१ प्रजा-पालक--सूक्त ।	११	दुष्टोंका सुधार ।	"
आन भर्मा ।	१५	२९ राष्ट्र-सर्वधन भूत ।	७९
२२ हृदयरोग तथा कामिलरोगकी चिकित्सा ।	१५	अनुसन्धान ।	८०
वर्ण चिकित्सा ।	१६	अभीवर्त मणि	"
सूर्यकिरण चिकित्सा ।	"	इस सूक्तका संवाद ।	"
परिधारण विधि ।	"	राजके गुण ।	"
हृय और बल ।	"	राजविजय ।	"
रंगीन रोंके दूधसे चिकित्सा ।	१७	शत्रुके लक्षण ।	८२
पथ्य ।	"	सबकी सहायता ।	"
२३ श्वेत-कुष्ठ--नाशन सूक्त ।	१७	केवल राष्ट्रके लिये ।	"
श्वेतकुष्ठ ।	१८	' राष्ट्र ' का अर्थ ।	८३
निदान ।	"	३० आयुष्य-वर्द्धन-सूक्त ।	"
दो भेद और उनकी उपाय	"	आयुका सर्वधन ।	८४
रंगका पुसमा ।	"	सामाजिक निर्भयता ।	"
औषधियोंका पोषण ।	"	देवोंके आधीन आयुष्य ।	८५
२४ कुष्ठ-नाशन-सूक्त ।	१९	हम क्या करते हैं ?	"
ननस्पतिके माता पिता ।	"	आदित्य देवोंकी जाग्रती ।	८६
सकप करण ।	७०	देवोंके पिता और पुत्र ।	"
ननस्पतिपर विजय ।	"	देवोंके स्थान ।	८७
सूर्यका प्रभाव ।	"	देवताओंके चार वर्ग ।	८८
सूर्यसे बोधे प्राप्ति ।	"	३१ आशा-पालक-सूक्त ।	८९
२५ शीत-उष्ण-वृद्धिकरण सूक्त ।	७०	दिवपाल ।	९०
उष्णकी उत्पत्ति ।	७१	देहमें चार दिक्पाल ।	"
उष्णका परिणाम ।	"	आशा और दिशा ।	९१
द्विसप्तरके नाम ।	७२	सूक्तका मनुष्य वाचक भावार्थ ।	"
नम शब्द ।	७३	मनुष्यमें चार द्वारोंकी चार आशाएँ ।	"
२६ सुख-प्राप्ति-सूक्त ।	७३	विदित-द्वारसे प्रवेश ! (चित्र)	९२
देवोंसे मित्रता ।	"	द्वार, आशा ।	"
विशेष सूचना	७४	आरोग्यका आभार ।	"
२७ विजयी की का पराक्रम ।	७५	मस्तकमें विदित द्वार । (चित्र)	"
इन्द्राणी ।	"	पृष्ठ वंश (चित्र)	"
भीर (भी)	"	विदितद्वार, सहचारक, पृष्ठ-	"
शत्रुवाचक शब्द ।	७६	वशमें चर्कोके स्थान । (चित्र)	"
तीन गुणा सात ।	"	कानपान ।	९४
निर्जरायु ।	"	कामोपयोग ।	"
२८ दुष्ट-नाशन सूक्त ।	७७	बंधनका नाश ।	"
पूर्वोपर सम्बन्ध ।	"	अथर दिक्पाल ।	"
दुर्जनके लक्षण ।	७८		

हवनसे पूजन ।	१	प्रविज्ञा	१
पापमोचन ।	१५	मीठी बाढ	११
चतुर्थ देव ।	१६	३५ तेजस्विता, बल और दीर्घायुष्यकी प्राप्ति ।	१०४
द्वार्थ श्राद्ध ।	१७	दाशायणी हिरण्य	१०५
विशेष रधि ।	१७	दाशायणी विद्या	१०६
३२ जीवन रसका महासागर	१७	सुवर्ण धारण	१०
स्थूल श्रष्टि ।	१८	राक्षस और पिशाच	१०७
जीवन का रस ।		सुवर्णके गुण	१०
भूतमात्रका साधन ।	१	सुवर्ण का सेवन	१०८
सनातन जीवन	१	शरीरमें देवोंके अक्ष (चित्र)	१०८
जगत् के मातापिता	११	काली कामधेनुका दूध	११०
जीवनका एक महासागर	११	त्रयम कण्डका मनन ।	११०
सपका एक आश्रय	११	सूक्तोंका कोष्ठक	१११
स्थूल सूक्ष्म और कारण	११	अपि विभाग	१११
३३ जल सुवत् ।	१००	सूक्तोंक गण	११२
शुद्धि का जल	१०१	अभ्ययन की सुव्यवस्था	११२
१४ मधु विद्या ।	१०२	अथर्ववेदके विषयोंकी उपयुक्तता	११३
मधु विद्या ।	१०२	व्याक्तिके विषयमें उपदेश	११४
जन्म स्वभाव	१०२	आरोग्य साधनके अन्व उपाय	११४
मौलि जीवन	१०२	राष्ट्रीय जीवन	११५



ॐ

अथर्ववेद

का

पुस्तक माध्य ।

द्वितीयं काण्डम् ।

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

साहित्यकायस्थति, वेदाचार्य, गीणारुझार

अभयक्ष-स्वाध्याय मण्डल, अलनन्दाश्रम, किला पारडी (जि. सुरत)

तृतीय वार

सद्यत् १००८, शके १८७३, सन १९५१

सबका पिता ।

स नः पिता जनिता स उत बन्धुधर्मानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो दुवानौ नामध एक एव तं संप्रभं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥

अथर्ववेद २।१।३

“वह ईश्वर हम सबका पिता, उत्पादक और बन्धु है, वही सब स्थानों और सुवनोंको पथावत जानता है । उसी अकेले ईश्वरको अम्व सम्पूर्ण देवोंके नाम दिये जाते हैं और सम्पूर्ण भुवन उसी प्रशंसनीय ईश्वरको प्राप्त करने के लिये धूम रहे हैं ।”



मुद्रक तथा प्रकाशक— बल्लभ श्रीवास्तव, लखनऊ।

भारत मुद्रणालय, २५, बाल गंगाधर तिलक रोड, (वि. ए. रोड)



अथर्ववेद का सुबोधभाष्य ।

द्वितीय काण्ड ।

इस द्वितीय काण्डका प्रारंभ "वेन" सूक्से और "वेन" शब्दसे होता है । यह मंगल वाचक शब्द है । 'वेन' शब्दका अर्थ " स्तुति करनेवाला, ईश्वरके गुण गानेवाला भक्त" ऐसा है । परमात्मा पूर्ण रीतिसे स्तुति करने योग्य होनेसे उसीके साक्षात्कारके और उसीके गुण वर्णन के मन्त्रोंका यह सूक्त है । इस परमात्माकी विद्याके नाम " गुप्त विद्या, गूढ विद्या, गुह्य विद्या, परा विद्या, आत्मविद्या " आदि अनेक हैं । इस गुह्य विद्यामें परमात्माका साक्षात्कार करनेके उपाय बताये जाते हैं । यह इस विद्याकी विशेषता है । विद्याओंमें अष्ट विद्या यही है जो इस काण्डके प्रारंभमें दी गई है, इसलिये इसका अध्ययन पाठक इस दृष्टिसे करे ।

जिस प्रकार प्रथम काण्ड मुख्यतया चार मंत्रवाले सूक्तोंका है, उसी प्रकार यह द्वितीय काण्ड पाँच मन्त्रवाले सूक्तोंका है । इस द्वितीय काण्डमें ३६ सूक्त हैं और २०७ मन्त्र हैं । अर्थात् प्रथम काण्डकी अपेक्षा इसमें एक सूक्त अधिक है और ५४ मन्त्र अधिक हैं । इस द्वितीय काण्डमें सूक्तोंकी मन्त्र संख्या निम्नलिखित प्रकार है ।

५	मंत्रोंके	सूक्त	२२	हैं, इनकी	मंत्र	संख्या	११०	है
६	"	"	५	" "	"	"	३०	"
७	"	"	५	" "	"	"	३५	"
८	"	"	३	" "	"	"	३९	"
कुल सूक्त संख्या			३६	कुल मंत्र	संख्या	२०७		

इस द्वितीय काण्डके त्रयि देवता छंद आदि निम्नलिखित प्रकार हैं—

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
प्रथमोऽनुवाकः				
१	५	वेन	ब्रह्म, आत्मा	त्रिष्टुप्, ३ अगती
२	"	मातृनामा	गणेश, अप्सराः	२ विराहप्रगती, ४ त्रिवाहप्रगती, गायत्री
				५ श्रुतिगुह्य

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
३	६	अंगिराः	मैषज्यं, आयुः, धन्वन्तरिः	अनुष्टुप्, ६ स्वराडुपरिष्ठा- न्महाबृहती.
४	"	अथर्व	चन्द्रमाः, अश्विः	२ विराद् प्रस्तारपंक्तिः
५	७	भृगुः (आथर्वणः)	इन्द्रः	त्रिष्टुप्, १, २ उपरिष्ठाद्बृहती (१ निचृत्, २ विराद्) विराद् पथ्या बृहती, ४ अगती पुरोविराद्

द्वितीयोऽनुवाकः

६	५	शौनकः (संपत्कामः)	अग्निः	" ४ चतुष्पदाभी पंक्तिः ५ विराद् प्रस्तारपंक्तिः
७	"	अथर्व	मैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः	अनुष्टुप्, १ मूर्तिः, ४ विराडुपरिष्ठाद्बृहती
८	"	भृगुः (आशिहसः)	वनस्पतिः	" ३ पथ्यापंक्तिः, ४ विराद्
९	"	" "	यक्ष्मनाद्यानं,	५ निचृत् पथ्यापंक्तिः
१०	८	" "	" "	१ विराद् प्रस्तारपंक्तिः
		" "	निकैलि,	१ त्रिष्टुप्, २ सप्तपदष्टिः ३-५, ७, ८ (१) सप्तपदी
		" "	पावाष्टुपिबी,	५, ८ (१) सप्तपदी
		" "	मानादेवताः	६, ८ (२, ३) द्वौ पदौ, अग्निहो ।

तृतीयोऽनुवाकः

११	५	शुकः	हस्तादपणं, हृत्प्यापरिहरणं	१ चतुष्पदा विराद्, २-५ त्रिपदा परोष्णिहः, ४ विपीलिकमाया निघृत्
१२	८	भरद्वाजः	मानादेवताः	त्रिष्टुप्, २ अगती, ७, ८ अनुष्टुभी
१३	५	अथर्व	" अग्निः	" ; ४ अनुष्टुप्, २ विराद् अगती
१४	६	आतनः	द्यावः, अग्निः, मंत्रोक्तदेवताः	अनुष्टुप्, २ मूर्तिः, ४ उपरिष्ठाद्विराद्बृहती.
१५	"	मह्यः	मघः, अपानः, आयुः	त्रिपदापञ्चमी.
१६	७	"	"	१, २ पृथ्व्यागुनी त्रिपुर, ३ पृथ्व्यागुनी अजिह्व, ४, ५ द्विपदागुनी पावनी

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
१७	"	"	"	१ ६ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, ७ भासुरी वृष्णिक् ।
चतुर्थोऽनुवाकः				
१८	५	चातन (सपरन क्षयकाम)	अग्नि	साप्ती वृहती.
१९	"	अथर्वी	"	१-४ त्रिष्टुप् १ गायत्री ५ मूरिग्विषमा
२०	"	"	घातु	" "
२१	"	"	सूर्य	" "
२२	"	"	चन्द्र	" "
२३	"	"	श्याम	" "
२४	८	अज्ञा	आयुष्य	वृष्णिक्
२५	५	चातनः	वनस्पति	अनुष्टुप्, ४ मूरिक्
२६	"	सविता	वसु	त्रिष्टुप् ३ उपनिषाद्विराट् वृहती ४, ५ अनुष्टुप् (४ मूरिक्)
पञ्चमोऽनुवाकः				
२७	७	कपिञ्जलः	वनस्पति	अनुष्टुप्
			रुद्रः, इन्द्रः	
२८	५	हाम्मुः	अग्निमा, आयुः	त्रिष्टुप् १ उगती, ५ मूरिक्
२९	७	अथर्वी	बहुदेवता	" १ अनुष्टुप् ४ वराहवृहती त्रिष्टुप् प्रत्यारपतिः
३०	५	महापति	अग्निर्वी	अनुष्टुप्, १ वपापति. ३ मूरिक्
३१	३	काण्व	मही, चन्द्रमा,	" २ उपनिषाद्विराट् वृहती ३ आपोविष्टुप् ४ आयुष्य वृहती, ५ आयुष्य त्रिष्टुप्

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
३४	५	अथर्वी	पशुपतिः	त्रिष्टुप्
३५	"	अंगिराः	विश्वकर्मा	" १ गृहतीर्गमा, ४, ५ भूरिक्
३६	८	पातिवेदनः	अग्नीषोमी	" १ भूरिक् २, ५-७ अनुष्टुप्- ८ निचृत्तुर षण्णिग्

इस प्रकार सूक्तोंके ऋषि देवता और छंद हैं । स्वाध्याय करनेके समय पाठकों को इनके ज्ञानसे बहुत लाभ हो सकता है । अब हम ऋषि क्रमसे सूक्तोंका कोष्ट देते हैं—

१ अथर्वी— ४, ७, १३, १९-२३; २९, ३४ ये दस सूक्त ।

२ प्रह्ला— १५-१७, २४, ३३, ये पांच सूक्त ।

३ अंगिरसो ऋगुः— ८-१० ये तीन सूक्त ।

४ चातनः— १४, १८, २५, " " "

५ अंगिराः— ३, ३५, ये दो सूक्त ।

६ काण्वः ११, ३२ " " "

७ अथर्वणी ऋगुः— ५ यह एक सूक्त ।

८ वेनः— १ " "

९ मातृशामा— २ " "

१० दौनिकः— ६ " "

११ द्युक्— ११ " "

१२ भरद्वाजः— १२ " "

१३ सविता— २६ " "

१४ कपिश्रुक्— २७ " "

१५ शम्भू— २८ " "

१६ प्रजापतिः— ३० " "

१७ पतिवेदना— ३६ " "

१ प्रह्ला, आरामा— १ यह एक सूक्त ।

२ गंधर्वः— २ " "

३ इन्द्रः— ५ " "

४ अग्निः— ६, १३, १४, १८, १९, ये पांच सूक्त ।

५ वनस्पतिः— ३, ७-९, २५, २७ ये छः सूक्त ।

६ श्रीर्षायुषं— ३, ७, १५-१७, २४, २८ ये सात सूक्त ।

७ आरोग्यं— ८, ९, ११, १५-१७; २८ ये सात सूक्त ।

८ चंद्रमा— ४, २२, ३१, ३३ ये चार सूक्त ।

९ अग्निहः— ४ यह एक सूक्त

१० निर्मतिः— १० " "

११ वायुः— २० " "

१२ सूर्यः— २१ " "

१३ आदित्यः— ३२ " "

१४ आपः— २३ " "

१५ अश्विनी— ३० " "

१६ विश्वकर्मा— ३५ " "

१७ अग्नीषोमी— ३६ " "

१८ पशुपतिः— ३४ " "

१९ पशुः— २६ " "

ये ऋषि— क्रमानुसार सूक्त हैं । अब देवता— क्रमानुसार सूक्तों की गणना देखिये—

अथ सूक्तों में अनेक देवताएँ हैं, जो प्रत्येक मंत्रके विवरण में पाठक देख सकते हैं । समान देवताके सूक्तोंका अर्थविचार एक साथ करना चाहिए । अर्थविचार करनेके समय ये कोष्टक पाठकोंके लिए बड़े उपयोगी हो सकते हैं । इस कोष्टकसे मिलने सूक्तों का विवरण साथ साथ करना चाहिए । यह बात पटल जान सकते हैं और इस प्रकार विचार करके मंत्रों और सूक्तों का अनुष्ठान कर सकते हैं ।

इसकी आवश्यकता बराबरी करके अब इस द्वितीय कोष्टका अर्थ विचार करते हैं—

अथर्व वेदका सुकोष माण्ड्य ।

द्वितीय काण्ड ।

गुह्य-अध्यात्म-विद्या ।

(१)

[ऋषिः-वेनः । देवता-ब्रह्म, आत्मा]

वेनस्तत्तत्त्वत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।

इदं पृथिरदुहृज्जायमानाः स्वविदो अभ्यन्तिपतु वाः

॥ १ ॥

प्र तद्वोचेदुमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् ।

त्रीणि पदानि निहितानि गुहास्य यस्तानि वेद स पितृष्पितासत्

॥ २ ॥

स नः पिता जनिता स उत बन्धुधर्मानि वेद भुवनानि विश्वा ।

यो देवानां नाम्ब एक एव तं संप्रशं भुवना यन्ति सर्वा

॥ ३ ॥

अर्थ— (वेनः तत् परमं परमत्) मयत् ही उस परमप्रेष्ठ परमा माओ देखता है, (यत् गुहा) जो हृदय की गुफा में है और (पत्र विश्व एकरूपं भवति) जिसमें सम्पूर्ण जगत् एकरूप हो जाता है । (इदं पृथिः आपमानाः अनुहृज्) इसीका प्रकृतिने दोहन करकेही जन्मलेनेवाले पदार्थ बनाये हैं और इसलिये (स्वविदो वाः) प्रकाश को जानकर प्रत्यक्ष पालन करनेवाले मनुष्यही इसकी (अभ्यन्तिपतु) उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

(यत् गुहा) जो हृदयकी गुफा में है (यत् अभ्यन्त्य परम धाम) वह अभ्यन्तका श्रेष्ठ स्थान (विद्वान् गन्धर्वः प्रबोचत्) ज्ञानी ब्रह्मा कहे । (अथ त्रीणि पदा) इस के तीन पद (गुहा निदिता) हृदय की गुफा में रखे हैं, [यः तानि वेद] जो उनकी जानता है (सः पितुः पिता असत्) वह पिताका भी पिता अर्थात् ब्रह्मा समर्थ हो जाता है ॥ २ ॥

[सः नः पिता] वह हम सबका पिता है, (जनिता) जन्म देनेवाला (उत सः बन्धुः) और वह भाई है, वह (विश्वा सुवमानि धामानि वेद) सब भुवनों और स्थानोंको जानता है । (यः एकः एव) वह अकेलारी एक (देवानां नाम्ब—यः) सम्पूर्ण देवोंके नाम धारण करनेवाला है, (तं संप्रशं) इसी उत्तम प्रकारसे पूजने योग्य परमात्माके प्रति (सर्वा भुवना यन्ति) संपूर्ण भुवन पहुँचते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिसमें जगत्की विविधता भेदका त्याग कर एकरूपताको प्राप्त होती है और जिसका निवास हृदयमें है, उस परमात्माको मछरी अपने हृदयमें छायात देखता है । इस प्रकृतिने उसी एक आत्माकी विविध शक्तियोंको निष्काट कर उत्पन्न होनेवाले इस विविध जगत् की निर्माण किया है, इसलिये आत्मज्ञानी मनुष्य सदा उसी एक आत्माका गुणगान करते हैं ॥ १ ॥ जो अपने हृदयमें ही है उस अमृतके परम धाम का वर्णन आत्मज्ञानी संतमा ब्रह्मा ही कर सक्ता है । इसके तीन पाद हृदयमें प्राप्त हैं, जो उनकी जानता है, वह परम ज्ञानी होता है ॥ २ ॥

वही हम सबका पिता, जन्मदाता और भाई भी है, वही सर्वत्र प्रकृतिोंकी सब व्यवस्थाओंको संचालित जानता है । वह अकेलारी एक है और अति आदि संतुल्य अन्य देवोंके नाम उगीको प्राप्त होने हैं अर्थात् उसको ही निवेदन में हैं । जिसका जन्म उगीके विषयमें बारंबार प्रशंसा करने हैं और ज्ञान प्राप्त करते हुए अन्यमें उगीको प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

परि धावांपृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजातृतस्य ।

वाचमिव वक्तारिं भुवनेष्ठा धास्युरेप नन्वेडुषो अग्निः

॥ ४ ॥

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।

यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्वैरयन्त

॥ ५ ॥

अर्थ- (सद्यः) तीव्र ही (धावा-पृथिवी परि आद्यं) सुलोक और पृथ्वी लोकमें सर्वत्र मैं घूम आया हूँ और अब (ऋतस्य प्रथमजां उपातिष्ठे) सत्यके पहिले उपासक की उपासना करता हूँ । (वक्तारि वाचं हव) वक्तारिं जैसी वाणी रहती है, उसी प्रकार यह (भुवने-स्थाः) सब भुवनोंमें रहता है, और (एवः धास्युः) वही सबका धारक और पोषक है, (ननु एवः अग्निः) निश्चयसे यह अग्नि ही है ॥ ४ ॥

(यत्र) जिसमें (अमृतं आमशानाः देवाः) अमृत खानेवाले सब देव (समाने योनौ) समान आश्रयको (अध्वैर-यन्त) प्राप्त होते हैं, वस (ऋतस्य) सत्यके (विततं कं तन्तुं दृशे) फैले हुए सुलकारक धागेको देखनेके लिए मैं [विश्वा सुतवानि परि आद्यं] सब भुवनोंमें घूम आया हूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ- सुलोक और पृथ्वी लोकके अंदर जो अनंत पदार्थ है, उन सबका निरीक्षण करनेके बाद पता लगता है, कि अतल सत्य नियमोंका पहिला प्रवर्तक एकही परमात्मा है, इसलिए मैं उसकी उपासना करता हूँ । जिस प्रकार वक्तारि वाणी रहता है, उसी प्रकार जगत् के सब पदार्थों अथवा सब प्राणियोंमें वह सबका धारण पोषण कर्ता एक आत्मा रहता है, उसको अग्नि भी कह सकते हैं अर्थात् जैसा अग्नि सृष्टिमें गुप्त रहता है उसी प्रकार वह सब पदार्थोंमें गुप्त रहता है ॥ ४ ॥

जिस एक परमात्मामें अग्नि वायु सूर्यादि देव समान रीतिसे आश्रित हैं और जिसकी अमृत मयी शक्ति से पूर्ण स्रष्टा देवोंमें कार्य कर रही है, वही एक सर्वत्र फैला हुआ व्यापक सत्य है, उसी का साक्षात्कार करनेके लिए सब वस्तुमात्रका निरीक्षण करने किया है और पश्चात् उसके अंदर वही एक सत्य फैला है वह मैंने अनुभव किया है ॥ ५ ॥

गूढविद्याका अधिकारी ।

सब विद्यार्थियों यह गुप्त विद्या सुट्ट है, इसलिए हर एक को इस विद्याकी प्राप्ति के लिये दान करना चाहिए । वारत्तनमें देखा जाय, तो सभी मनुष्य इसकी प्राप्ति के मार्ग में लगे हैं, कई दर के मार्गपर हैं और कईयोंने समीपका मार्ग पकड़ा है, इन अनेक मार्गोंमेंसे कौनसा मार्ग इस सूक्तको अभीष्ट है, यह बात यहाँ अब देखेंगे—

वेनः उत्पद्यत् ॥ १ ॥

‘वेनही उसको देखता है,’ यह प्रथम मंत्रका विधान है । यहाँ प्रत्यक्ष देखता है, जिस प्रकार मनुष्य सूर्यकी आकाशमें प्रत्यक्ष देखता है उस प्रकार यह भक्त इस आत्मा को अपने हृदयमें प्रत्यक्ष करता है, यह भाव स्पष्ट है । यह अर्थिकार ‘वेन’ का ही है यह ‘वेन’ कौन है ? ‘वेन्’ धातुके अर्थ—‘मजन पूजन करना, विचार से देखना, भक्ति करना, तथा इसी प्रकार के सपासनाके कार्य करनेके लिये जाना’ ये हैं । ये ही अर्थ यहाँ वेन शब्द में हैं । ‘जो ईश्वर का भजन पूजन करता है, हृदयसे उसकी भक्ति करता है, विचारकी दृष्टिसे उसको जाननेका प्रयत्न करता है’ इस प्रकारका जो ज्ञानी भक्त है, वह वेन शब्दसे यहाँ अभिप्रेत है । इसलिए केवल “ब्राह्मिन्” अर्थ ही यहाँ सेना उचित नहीं है । कितनी भी ब्राह्मिणी विद्यालता क्यों न हुई हो, जबतक उसके हृदयमें भक्ति की लहरें न उठती हों, तबतक उस प्रकारके शुद्ध ज्ञानसे परमात्माका साक्षात्कार नहीं हो सकता, वह यहाँ इस सूक्त द्वारा विशेष रीतिसे बताया है ।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि—

अमृतस्य घाम विद्वान् गंधर्वः ॥ २ ॥

“अमृत के घाम की जाननेवाला गंधर्व ही उसका वर्णन कर सकता है ।” इसमें “गंधर्व” शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण है । गंधर्व शब्द का अर्थ “संत, पवित्रात्मा” केशों में प्रसिद्ध है और वह शब्द वेन शब्दके पूर्वोक्त अर्थके साथ मिलता जुलता भी है । तथापि “गो वाणी धारयति” अर्थात् “अपनी वाणीका धारण करनेवाला” यह अर्थ यहाँ विशेष योग्य है । वाणीका धारण तो सब करते ही हैं, परंतु यहाँ वाणीका बहुत प्रयोग न करते हुए अपनी वाक्शक्तिका संयम करनेवाला, अत्यन्त आदर्शवत्ता होनेपर ही वाणीका उपयोग करनेवाला, यह अर्थ गंधर्व शब्दमें है । विशेष अर्थ से परिपूर्ण परंतु अल्प शब्द बोलनेवाला विद्वान् गंधर्व शब्दसे यहाँ लिया जाता है । प्रायः आत्मज्ञानोत्कर्षाका वक्तृत्व सूक्ष्मतासे ही होता है, किंवा थोड़े परंतु अर्थपूर्ण शब्दोंसे ही आत्मज्ञान पवित्रात्मा आस पुरय जो कुछ कहना है, कह देता है । जबतक लौकिक विद्याका ज्ञान मनुष्यके मनमें छल्लबली मथाए रहता है, तब तक ॥ मनुष्य मेघमर्जनाके समान वक्तृत्व करता रहता है, परंतु इसका परिणाम श्रोताओंपर विशेष नहीं होता । जब आत्मज्ञान होता है और ईश्वर साक्षात्कार होता है, तब इसका वक्तृत्व अल्प होने लगता है । परंतु समाज बढ़ता जाता है । वाक्शक्तिपर संयम होने लगता है । यह गंधर्व अवस्था समझिये ।

यहाँ ‘वेन और गंधर्व’ ये दो शब्द आत्मज्ञानके अधिकारीके वाचक शब्द हैं । उपासक, भक्त तथा गंभीर शब्दोंका प्रयोग संयम के साथ करने वाला जो होता है, वही परमात्माका साक्षात्कार करता है और यही उसका वर्णन भी कर सकता है ।

पूर्व तैयारी । (प्रथम अवस्था)

उक्त उपासक आत्मज्ञानी हो सकता है, परंतु इसके बननेके लिये पूर्व तैयारी की आवश्यकता है, यह पूर्व तैयारी निम्न लिखित शब्दों द्वारा उस सूक्तमें बताई है—

सप्तः धावाश्रयिणी परि भाष्यम् ॥ ३ ॥

विद्या मुचनानि परि भाष्यम् ॥ ५ ॥

कुछ किया, मनुष्यों को जो जो अभ्युदय विषयक करना संभव है, वह सब किया । यह गूढतत्त्वके दर्शनकी प्रथम अवस्था है । इस अवस्थामें भोगेच्छा प्रधान होती है ।

द्वितीय अवस्था ।

इसके बाद दूसरी अवस्था आती है, जिस समय विचार उत्पन्न होता है, जिसमें नाशवन्त भोग कितने भी प्राप्त किये, तथापि इनसे सच्ची तृप्ति नहीं होती; इसलिये सच्ची तृप्ति, सच्चा मनका समाधान प्राप्त करनेके लिये कुछ यत्न करना चाहिये । इस द्वितीय अवस्थामें भोगोंकी ओर प्रवृत्ति कम होती है और अभौतिक तत्त्व दर्शन की ओर प्रवृत्ति बढ़ती जाती है; इसका निर्देश इस सूक्तमें निम्न लिखित प्रकार किया है—

अमृतस्य विततं कं तन्तुं ह्यो विद्या भुवनानि परि जायम् ॥ ५ ॥

“अमृतका फेला हुआ सुखकारक मूल सूत्र देखनेके लिए मैंने सब भुवनोमें चकर मारा, ” अर्थात् इस द्वितीय अवस्थामें इसका चक्र इसलिये होता है, कि इस विविधतासे परिपूर्ण जगत्के अंदर एकताका मूल खोज होगा तो उसे देखें; इस दुःख कष्ट भेद लड़ाई जगत् को से परिपूर्ण जगत्में सुख आराम ऐश्वर्य और अविरोध देनेवाला कुछ तत्त्व होगा तो उसको ढूँढ़ेंगे, इस उद्देश्यसे इसका भ्रमण होता है । यह जिज्ञासूची दूसरी अवस्था है । इस अवस्था का मनुष्य तीनों क्षेत्रों और गुण्यप्रदेशों में जाता है, वहाँ सज्जनोंसे मिलता है, देशदेशांतरमें पहुँचता है और वहाँसे ज्ञान प्राप्त करता है इसका इस समय का उद्देश्य यही रहता है, कि इस विमोद पूर्ण इस समय अवस्थासे अभेदमय सुखकारक अवस्थाको प्राप्त करें । इतने परिश्रम करनेसे उसको कुछ न कुछ प्राप्त होता रहता है और फिर वह प्राप्त हुए ज्ञानको अपने में स्थिर करनेका यत्न करनेकी तैयारी करता है । इस प्रकार वह दूसरी अवस्थासे तीसरी अवस्थामें पहुँचता है । इस तीसरी अवस्थाका वर्णन इससूक्तमें निम्न लिखित शब्दों द्वारा किया है—

तृतीय अवस्था ।

धावाग्रथिषी परि जायं सद्यः श्रुतस्य प्रथमज्ञां वपातिष्ठे ॥ ४ ॥

“मैं सुलोक और पृथ्वीलोक में खूब घूम आया हूँ और अब मैं सत्य के पहिले प्रवर्तक की उपासना करता हूँ ।” जगत् मरमें घूमकर विचार पूर्वक निरीक्षण करनेसे इसको पता लगता है कि, इस विभिन्न जगत् में एक अभिन्न तत्त्व है और वही (कं) सच्चा सुख देनेवाला है । जब यह ज्ञान इसकी होता है, तब यह उसके पास जानेकी इच्छा करता है । उपासनासे भिन्न कोई अन्य मार्ग उसको प्राप्त करनेका नहीं है, इसलिये इस मार्गमें अब यह उपासक आता है । ये अवस्थायें इस सूक्तके मंत्रों द्वारा स्पष्ट होगई हैं, इन मंत्रों के साथ यज्ञोद वाजसनेयी संहिताके मंत्र देखनेसे यह विषय अधिक स्पष्ट जाता है; इसलिये ये मंत्र अब यहाँ दिये हैं—

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रक्षिप्यो दिशश्च ।

उपस्थाप्य प्रथमज्ञामृतस्वाध्वनामानमग्निं सं विवेश ॥ ११ ॥

परि धावाग्रथिषी सद्य इत्या परि लोकान्परी दिशः परि स्वः ।

अतस्य तन्तुं विततं विष्वत् तदपश्यत्तदमवत्तदासीत् ॥ १२ ॥

वा. यज्ञ. अ. १२

“ (भूतानि परीत्य) सब भूतोंको जानकर या भूतोंमें घूमकर (लोकान् परीत्य) सब लोकोंमें भ्रमण करके (सर्वा दिशः प्रदिश. च परीत्य) सब दिशा और उपदिशाओंमें भ्रमण करके अर्थात् इन सबको उपासित जानकर (अतस्य प्रथमज्ञां उपस्थाप्य) उसके पहिले नियमके प्रवर्तक की उपासना करके (आत्मना आत्मानं) केवल आत्मस्वरूपसे परमात्माके प्रति (अग्निं ५ विवेश) सब प्रकारसे प्रवेष्ट होता हूँ ॥ ११ ॥

ये दो मंत्र उपासककी उन्नतिके मार्गका प्रकाश उत्तम रीतिसे कर रहे हैं । जगत् में घूम आनेकी जो बात अथर्ववेदने कही थी, उसका विशेष ही स्पष्टीकरण इन दो मंत्रोंके प्रथम अर्धोंद्वारा हुआ है : “सब भूत, सब लोकलोकान्तर, सब उपादिशायँ, सु और पृथ्वीके अंतर्गत सब पदार्थ, अथवा अपनी सत्ता जहाँ तक जासकती है, वहाँ तक जाकर, वहाँतक विजय करके, वहाँतक पुनर्पार्थ प्रयत्नसे यश फैलाकर तथा उन सबका परीक्षण निरीक्षण समीक्षण आदि जो कुछ किया जाना संभव है, वह सब करके देख लिया । इतने निरीक्षणसे ज्ञात हुआ कि अठल सन्नियमोंको चलानेवाला एकही सूक्ष्मरूप आत्मा सबके अंदर है, वही सर्वत्र फैला है, उसीके आधारसे सब कुछ है, उसके आधार के बिना कोई ठहर नहीं सकता । जब यह ज्ञान लिया तब उसकी ही उपसना की, और केवल अपने आत्मासेही उसमें प्रवेश किया । जब वहाँका अनुभव लिया, तब उपासक वैशा बन गया, जैसा पहिले था ।

पाठक इन मंत्रोंके इस आशयको देखिये तो उनकी क्या लग जायगा, कि जो अथर्ववेदके इस सूक्तके मंत्रों द्वारा आत्मय व्यक्त हुआ है, वही बेटे विस्तारसे इन मंत्रोंमें वर्णित हुआ है । और ये मंत्र उन्नतिकी अवस्थाएँ भी स्पष्ट शब्दोंद्वारा बता रहे हैं, देखिये—

१ प्रथम अवस्था—(अज्ञानावस्था)—अपने या जगत् के विषय का पूर्ण अज्ञान ।

२ द्वितीय अवस्था—(भोगावस्था)—जगत् अपने भोग के लिये है, ऐसा मानना, और जगत्को अपने स्वाधीन करनेका यत्न करना । जगत् पर प्रभुत्व स्थापित करना । इसी अवस्थामें राज्यैश्वर्य भोग बढ़ाये जाते हैं ।

३ तृतीय अवस्था—(त्यागावस्था)—जगत्के भोगोंसे अवसाधान होकर विभक्तोंमें स्वायत्त अविभक्त सत्तावली सद्गुरुको ईश्वरका प्रयत्न करना । वह जिज्ञासुकी अवस्था है ।

४ चतुर्थ अवस्था (भक्तावस्था)—प्रभुत्व विभिन्न विधमें स्वायत्त एक अभिन्न आत्मतत्त्वको देखने लगता है और भक्ता भक्तिसे उसकी उपासना करने लगता है ।

५ पंचम अवस्था—(स्वरूपावस्था)—उपासना और भक्ति इतनी और गहन होनेपर वह तद्रूप हो जाता है, मानो उसमें एक रूप होकर प्रविष्ट होता है, या जैसा या वैशा बन जाता है । यही साक्षात्कार की अवस्था है, यहाँ इसके भव ज्ञान प्रत्यक्ष होता है ।

यही मार्ग इस अथर्व सूक्तमें वर्णन किया है । यही पाठकोंकी स्पष्ट हुआ होगा कि पूर्व तैयारी कौनसी है और अगेन मार्ग क्या है ।

पूर्णावस्था ।

पूर्वोक्त यजुर्वेदके मंत्रोंमें कहा ही है कि—

उपस्थाप्य प्रथमज्ञासूक्तस्य
आत्मनात्मानमभि सं विवेक्ष्य
ज्ञातस्य तन्तुं विततं विचूय ।
तदुपस्थाप्यतदभवत्तदासीत् ॥११॥

वा. यजु० अ. ३२

“ उसको पहिले प्रथम परमात्माकी उपासना करके आत्मासे परमात्मामें प्रविष्ट हुआ । उसके फलसे हुए भाग्यसे अन्त देवदत्त वैशा हुआ जैसा कि पहिले था । ” वह सब वर्णन पूर्ण अवस्थाका है । इसीको निरालिखित शब्दोंद्वारा इस अथर्व सूक्तमें कहा है—

स्वर्गिणः माः अम्यनूयत ॥ १ ॥
अमृतस्य घाम विद्वान् ॥ २ ॥
सकामि वेद स विगुणितः स्यत् ॥ ३ ॥

“ (ब्रा.) व्रत पालन करनेवाले (स्तुतिदः) आत्मज्ञानी वही की स्तुति करते हैं । वे अमृतके धामको जानते हैं । जो ये धाम जानता है वह पिताका पिता अर्थात् सर्वमें अधिक ज्ञानी अथवा सर्वमें अधिक समर्थ होता है । ” यह अंतिम फल है पूर्ण अवस्था में पहुँचनेका निश्चय इससे हो सकता है ।

प्रथम मंत्रमें “ ब्रा. ” शब्द बड़ा महत्त्व रखता है । मर्तो या नियमोंका पालन करनेवाला अपनी उन्नतिके लिये जो नियम आवश्यक होंगे उनको अपनी इच्छासे पालन करनेवालेका यह नाम है । नियम स्वयं देखकर स्वयंही उस व्रतका पालन करना बड़े पुरुषार्थसे साध्य होता है । इसमें व्रतमंग होनेपर अपने आपको स्वयंही दंड देना होता है, स्वयं ही प्रायश्चित्त करना होता है । महान् आत्माही ऐसा कर सकते हैं । हर एक गुरुग्य दुष्टों पर अधिकार चल सकता है, परंतु स्वयं अपने पर अधिकार चलना अति कठिन है । अपनी संपूर्ण शक्तिशाली अपने आधीन रखनी और कभी कुविचार आदि अनुश्रुतोंके आशीन न होना इत्यादि महत्त्व पूर्ण बातें इस आत्मसाधनमें आती हैं । परंतु जो यह करेगा, वही आत्मज्ञानी और विशेष समर्थ बनेगा और वही एक महत्त्व घट लीम मानेगा ।

सुत्रात्मा ।

मणियोंकी माला बनती है, इस मालामें जितने मणि होते हैं, उन सबमें एक सूत्र होता है, जिसके आधारसे ये मणि रहते हैं । सूत्र टूट गया तो माला नहीं रहती और मणि भी बिखर जाते हैं । जिस प्रकार अनेक मणियोंके बीचमें यह एक सूत्र या तंतु होता है, वही प्रकार इस जगत् के सूर्यचंद्रादि विविध मणियोंमें परमात्माका व्यापक सूत्र तन्तु या धागा है, जिसके आधारसे यह सब विद्य रहा है, इसीका दर्शन नहीं होता, सब मालका ही वर्णन करते हैं, परंतु जिस धागेके आधारसे ये सब मणि मालारूपमें रहे हैं, उस सूत्रका महत्त्व सर्वज्ञानी ही जान सकता है और वह सब जगदाधार को प्राप्त कर सकता है ।

वेदमें “ तन्तु, सूत्र ” आदि शब्द इस अर्थमें आगये हैं । जगत् के संपूर्ण पदार्थ मात्रके अंदर यह परमात्माका सूत्र फैला है, कोई भी पदार्थ इसके आधारके बिना नहीं है । यह जानना, इस ज्ञानका प्रत्यक्ष करना और इसका साक्षात्कारसे अनुभव लेना गुरु विद्याका विषय है, जो इस सूत्र द्वारा बताया है ।

इस गुण विद्याका अनुभव लेनेके विषयमें बड़ा लाभ निःसंदेह होता है; परंतु यह एक बाधा साधन है । सखी गुफा हृदय की गुहा ही है । हृदय की गुफा सब जानते ही हैं । इसी में इस गुणतत्त्वकी खोज करनी चाहिए ।

सब प्राणी तथा सब मनुष्य बाहर देखते हैं, इस बहिर्दृष्टिसे गुणतत्त्वकी खोज नहीं हो सकती । इस कार्यके लिए दृष्टि अंतर्मुख होनी चाहिए, अपनी इंद्रिय शक्तियों का प्रवाह अंदर की ओर अर्थात् चन्द्रा शून्य होना चाहिए । तभी इस गुण तत्त्व की खोज हो सकती है । अपने हृदयमें ही उस गुण आत्मानो देखना चाहिए । अर्थात् इसकी प्रातिके लिए बाधा दिशाओंमें भ्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है, अंतर्मुख होकर अपनी हृदयकी गुफामें देखना चाहिए ।

चार भाग

यह अमृतका धाम हृदयमें है । यदि इस अमृत के चार भाग मान लिए जाय, तो तीन भाग अंदर गुप्त हैं और केवल एक भाग ही बाहर व्यक्त है । जो बाहर दिव्यता है, जो स्थूल दृष्टिसे अनुभवमें आता है वह अत्यंत अल्प है, परंतु जो अंदर गुप्त है, वह बहुत विस्तृत ही है । अपने शरीर में भी देखिये आत्मा-बुद्धि, मन, प्राण ये हमारी अंतःशक्तियाँ अल्प है और स्थूल शरीर वह हृदय है । यदि शक्तिकी तुलना की जाय तो स्थूलशरीर की शक्ति की अपेक्षा आंतरिक शक्तियाँ बहुत ही प्रमाणा-शाली हैं । अर्थात् स्थूल और व्यक्त की शक्तिकी अपेक्षा सूक्ष्म और अव्यक्त की शक्ति बहुतही बड़ी है । यही यहाँ निम्नलिखित शब्दोंद्वारा व्यक्त हुआ है—

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य परतानि वेद स पितृभित्ताऽस्य ॥ २५ ॥

“ इसके तीन पाद गुहामें गुप्त हैं, जो उनको जानता है वह समर्थ है भी समर्थ होता है । ” अर्थात् स्थूलशरीरकी शक्तिकी स्वाधीनता होनेकी अपेक्षा आंतरिक शक्तियोंपर प्रभुत्व प्राप्त होनेसे अधिक सामर्थ्य प्राप्त होता है । इसी विषयमें मैं मंत्र देखिये—

पादोऽस्य त्रिधा तानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्वं तदैरुण्यः पादोऽस्वेहाऽमवत्युनः ॥ ४ ॥

अ० १०१०।वा. य. ३१

त्रिभिः पक्षिर्धामोहपादोऽस्वेहाऽमवत्युनः ॥

अथर्व १९।६

त्रिपाद्वक्त्रं पुरुरूपं वितपे तेन जीवन्ति प्रदिशन्वतसः ॥

अथर्व १०१०।१९

“ उसके एक पादसे सब भूत बने हैं और तीन पाद अमृत सुलोक में है । तीन पाद पुरुष का ऊपर उदय हुआ है, और एक पाद पुरुष यहाँ वारंवार प्रकट होता है । तीन पादोंमें स्वर्गपर चढ़ा है और एक पाद यहाँ पुनः पुनः होता है । तीन पाद ब्रह्म बहुत रूप धारण करके उठता है, जिससे चारों दिशाएं जीवित रहती हैं । ”

इस सब मंत्रोंका तात्पर्य यही है, जो इस गुण के ऊपर दिए हुए भागमें बताया है । उस अमृतकी अल्पकी शक्ति स्थूल में प्रकट होती है, शेष अनंत शक्ति अप्रकट स्थितिमें गुप्त रहती है और उस गुप्त शक्तिसे ही इस व्यवस्त में कार्य होता रहता है । पाठक मनकी शक्ति की शरीरकी शक्तिके साथ तुलना करेंगे, तो उक्त बातका पता उनके लग जायगा । मनकी शक्ति बहुत है उसका सोचासा भाग शरीरमें गया है और यहाँ कार्य कर रहा है । यह स्थूलमें कार्य करनेवाला अंशरूप मन वारंवार स्थूल गुणमनकी शक्तिते प्रभावित होता है, नवजीवन प्राप्त करता है और वारंवार शरीरमें आकर कार्य करता है । यही बात अधिक रुच्यतासे अमृततत्त्वके साथ संगत होती है । उसका केवल एक अंश प्रकट है, शेष अनंत शक्ति गुप्त है, इसके साथ अपना संबंध जोड़ना गूढ़विद्याका धार्य है ।

एक रूप ।

जगत्में विविधता है और इस आत्मतत्त्वमें एकरूपता है । जगत्में गति है इसमें शांति है, जगत्में भिन्नता है इसमें एकता है; इस प्रकार जगत्का और आत्माका वर्णन किया जाता है, सब लोग इस वर्णन के साथ परिचित हैं, ॥ स्फुटमें भी देखिए—

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यथात्र विद्वं भवत्येकरूपम्

इदं पृथिरदुदृज्जायमानाः स्वर्विदो अम्यन्पूत माः ॥ १ ॥

“ज्ञानी मरत ही उसको देखता है, जो हृदयकी गुहामें है और जिसमें सम्पूर्ण विश्व अपनी विविधताको छोड़कर एकरूप हो जाता है । इसकी शक्तिको प्रकृति खींचती है और जन्म लेनेवाले पदार्थ पैदा करती है । इसलिये आत्मज्ञानी व्रतपालन करने-वाले भक्त उस आत्माका ही गुण गान करते हैं ।”

पाठक अपने अंदर इसका अनुभव देख लें, जाग्रतीमें जगत्की विविधता का अनुभव आता है, स्वप्नमें भी कायात्मिक सृष्टिमें विविधताका अनुभव आता है, परंतु सुषुप्ति अवस्था गाढ निद्रा—सुषुप्ति में भिन्नताका अनुभव नहीं आता और केवल एकत्वका अनुभव व्यक्त करना असंभव है, इसलिए उस समय किसी प्रकारका ज्ञान नहीं होता । सुषुप्ति, समाधि और मुक्तिमें “ब्रह्म रूपता” होती है, तब—१३—सर्व-गुणोंकी भिन्नता छोड़ दी जाय तो उक्त तीनों स्थानोंमें ब्रह्मरूपता, आत्मरूपता अथवा साधारण भावामें ईश्वररूपता होती है और इस अवस्थामें भिन्नत्वका अनुभव मिट जाता है, इसलिए इस अवस्थाको “एक—त्व” कहते हैं । इसी उद्देश्ये इस मंत्रमें कहा है कि—

यत्र विधं एकरूपं भवति ॥ १ ॥

“जहाँ संपूर्ण विश्व एकरूप होता है ।” अर्थात् जिसमें जगत् की विविधता अनुभवमें नहीं आती, परंतु उस सब विविधता को एकताका रूप धारण करता है । वृक्ष के जड़, शाखा, पल्लव आदि भिन्न रूपताका अनुभव है, परंतु गुठली में इन भिन्नता को एक रूपता दिखाई देती है । इसी प्रकार इस जगत्की वृक्षकी विविधता मूल उत्पत्तिकारण में जाकर देखनेसे एकरूपता में दिखाई देगी । इसी मुख्य आदि कारणसे विविध शक्तियां प्रकृति अपने अंदर धारण करके उत्पत्ति वाले पदार्थ निर्माण करती हैं । इस रीतिसे न उत्पन्न होनेवाले एक तत्त्वसे उत्पन्न होनेवाले अनेक तत्त्व बनते हैं । इनका ही नाम उक्त मंत्रमें “आयमानाः” कहा है । इनमें मनुष्यभी सम्मिलित हैं और अन्य प्राणी तथा अश्राणी भी हैं । इनमें मनुष्यही (माः) व्रतपालनादि सुविधामें अपनी उन्नति करके आदि मूलको जानता और अनुभव करके (स्वर्विदः) प्रकाश प्राप्त करके प्रतिदिन अनुष्ठान करता हुआ समर्थ बनता जाता है ।

अनुभव का स्वरूप ।

आत्मज्ञानी मनुष्य को अमृत धामका अनुभव किस प्रकार होता है, उसके अनुभव का स्वरूप अब देखना चाहिये—“आत्म-ज्ञानी मनुष्य अमृतधाम को अपनी हृदयर्षा गुहामें अनुभव करता है, अनंत शक्तियां वहां ही इकट्ठी हुई हैं, यह उसका अनुभव है ।” (मंत्र २ देखो)

और वह अनुभव करता है कि—“वहां परमप्रमा इम सबका पिता, उत्पादक, और भाई है, वही सर्वज्ञ है ।” (मंत्र १) इसभांरी नहीं परंतु “वही हमारी माता और वही हमारा सखा मित्र है” वह भी उसका अनुभव है । वहां क्रयवेद और अथर्व मंत्रोद्गीतना कीजिये—

॥ नः पिता जनिता स त्वं बन्धुर्धामानि वेदं भुवनानि विश्वा ॥

यो देवानां नामघा एक एव तं ॥ प्रथं भुवना यन्वि सर्वा ॥

अथर्व. २।१।१

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेदं भुवनानि विश्वा ॥

यो देवानां नामघा एक एव तं संप्रथं भुवना यन्त्यन्या ॥

करवेद १०।८२।३

स भो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेदं भुवनानि विश्वा ॥

वा. यजु. ३२।१०

इनमें कुछ पाठभेद हैं, परंतु सबका तात्पर्य ऊपर बताया ही है । वही ज्ञानी भक्त का अनुभव है और एक अनुभव वज्रवेदके मंत्रमें दिया है वही भी यह देखिये—

जगत् का ताना और बाना ।

वेनस्तत्पदपरमं शुद्धा सद्यश्च विश्वं भवत्येकनीडम् ।

तस्मिन्निदं सं च विचेति सर्वं तस्य भोतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ वा. यजु. ३२।८

‘ज्ञानी भक्त उस परमात्माको जानता है जो हृदय की शुद्धा में है और जिसमें संपूर्ण विश्व एक घोंसले में रहनेके समान रहता है, तथा जिसमें यह सब विश्व एक-समय (सं एति) मिल जाता है या लीन होता है और दूसरी समय (वि एति) अलग होता है । (छा विभूः) वह सर्वत्र व्यापक तथा बेमवसे युक्त है और (प्रजासु भोतः प्रोतः) प्रजाओं में ताना और बाना किये हुए धागों के समान फैला है ।’

धोती में जैसे ताने और बानेके धागे होते हैं, उस प्रकार परमात्मा इस जगत् में फैला है, यह उस ज्ञानीका अनुभव है ।

बालक पर आपत्ति आती है उस समय वह बालक अपने माता पिता, बड़े भाई, चाचा, दादा, नाना आदिके पास सहायतायें जाता है । वही बालक बड़ा होनेपर आपात्त व्याघ्रों तो अपने समर्थ मित्रके पास जाता है और उससे सहायता लेता है । इसी प्रकार अन्य प्रसंगों में गुरु, राजा, आदिकों की सहायता लेता है । ये सब संबंध परमात्मा में ज्ञानी अनुभव करता है अर्थात् ज्ञानी भक्तके लिये परमात्माही सम्राट्, राजा, सरदार, शासक, शिक्षक, गुरु, माता, पिता, मित्र, भाई आदि रूप हो जाता है ।

एकके अनेक नाम

एक ही मनुष्यको उसका पुत्र पिता कहता है, श्री पति कहती है, उसका भाई उसको बंधु कहता है, इस प्रकार विविध संबंधी उस एकही पुरुषको विविध संबंधोंके अनुभव होनेके कारण विविध नामोंसे पुकारते हैं । इस रीतिसे एक मनुष्यको विविध नाम मिलने पर भी उसके एकत्वमें कोई भेद नहीं आता है ।

इसी ढंगसे परमात्मा एक होनेपर भी उसके अनंत गुणोंके कारण और उसके ही अनंत गुण सृष्टीके अनंत पदार्थोंमें होनेके कारण उसको अनेक नाम दिये जाते हैं । जैसा अग्निमें उष्णता गुण है वह परमात्मा से प्राप्त हुआ है, इसलिये अग्नि अग्नि नाम वास्तविक गुणकी सत्ताकी दृष्टिसे परमात्माका ही नाम है, क्योंकि वह अग्निवाही अग्नि है । इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके नामोंके विषयमें जानना योग्य है ।

शरीरमें भी देखिये—आंख नाक कान आदि इंद्रियाँ स्वयं अपने अपने कर्म नहीं कर सकतीं, परंतु आत्माकी छत्तिको अपने भेदर लेकर ही अपने कर्म करनेमें समर्थ होती हैं । इसलिये सब इंद्रियोंके नाम आत्मा में साथ होते हैं, अतः आत्माको आंखका आंख, कानका कान कहते हैं । इसी प्रकार परमात्मा सूर्यका सूर्य, विद्युतका विद्युत है । देवोंके नाम धारण करनेवाला परमात्मा है ऐसा जो तृतीय मंत्रमें कहा है, वह इस प्रकार सत्य है ।

वह एकही है ।

परमात्मा एक ही है, वह बात इस तृतीय मंत्रमें ‘एक एव’ (वह एक ही है) इन शब्दों द्वारा जोरसे कही है । किसीको परमात्माके अस्तित्वके विषयमें यत्किंचित् भी शंका न हो, इसलिये ‘एव’ पदकी योजना यहाँ की है । भक्त को भी ईश्वरके एकत्वका अनुभव होता है, क्योंकि ‘विभक्त्यायै अभिषक्त’ आदि अनुभव उसको होता है, इसलिये विषय इसके पूर्व बताया ही है ।

शार्मा भक्तका विशेष अनुभव यह है कि, वह परमात्मा “स-प्रश्न” है अर्थात् प्रश्न पूछने योग्य और उससे उत्तर लेने योग्य है । मन्त्रिसे जब भक्त उसे प्रश्न पूछता है, तब वह उसका उत्तर साक्षात्कार से देता है । कठिन प्रसंगोंमें उसकी सहायता की याचना की, और एकल में अनन्य धारण कृति से उसकी प्रार्थना की, तो वह प्रार्थना नि सेंदेह सुनता है, और भक्तके कष्ट दूर करता है । अन्य मित्र सहायतायें समयपर आसकने या नहीं इसका नियम नहीं, परंतु वह परमात्मा ऐसा मित्र है, कि वह अनन्य भावसे धारण जानेपर सदा सहायतायें सिद्ध रहता है और कभी ऐसा नहीं होता कि, वह धारणपक्ष की सहायता न करे । इसलिये सहायतायें यदि किसीसे पूछना हो, तो अन्य मित्रोंकी प्रार्थना करनेकी अपेक्षा इसकी ही प्रार्थना करना योग्य है; क्योंकि हर समय यह सुननेके लिये तैयार है और इसका उदार दायमप हस्त सदा हम चपपर है ।

यह सबका (धास्य) धारण पोषण करनेवाला है और (सुबोध-स्था) सपूर्ण स्थिरस्वर जगत्में ठहरा है अर्थात् हर एक पदार्थमें व्याप्त है। कोई स्थान उससे खाली नहीं है। वक्ष्यमें जैसा वक्तृत्व है, उस प्रकार जगत्में यह है, सचमुच यह अग्नि ही है। (मन्त्र ४) इसी प्रकार पाठक कह सकते हैं कि, यह सूर्य है और यही विद्युत् है, क्योंकि पदार्थ मात्र ही सत्ता ही यह है, फिर अग्नि वायु रश्मि यह है यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु यदा सबकी सुबोधताके लिये ऐसा कहा है। मनुष्यका शब्द आत्मशक्तिसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार सूर्य भी परमात्माकी शक्तिके ही प्रकाशता है।

देवोंका अमृतपान।

इस सूक्तके पाँचवें मंत्रमें कहा है, कि उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हैं—

यत्र देवा अमृतमानशाना समाने योनावध्वैरयन्त ॥ ५ ॥

“उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हुए समान अर्थात् एकही आश्रयमें पहुँचते हैं।”

अर्थात् सब देव उसमें समान अधिकार से, समान रूपसे अथवा अपनी विभिन्नताकी छोड़कर एक रूप बनकर उसमें लीन होते हैं और वहाँ का अनुपमेय अमृत पीते हैं।

सुक्ति, समाधि और सुषुप्ति में यह बात अनुभवमें आती है सुक्ति और समाधि तो हर एक के अनुभवमें नहीं है, परन्तु सुषुप्ति हर एक के अनुभवमें है। इस अवस्थामें सब जीव ब्रह्मरूप होते हैं। इस समय मानवी शरीरमें रहनेवाले देव अर्थात् सब ईन्द्रियाँ अपना भेदमात्र छोड़कर एक आदि कारणमें लीन होती हैं और वहाँ आत्मामें योता लगाकर अमृतानुभव करती हैं। इस अमृतपानसे उनकी सब क्लेशवृत्त दूर होती है और जब सुषुप्ति से इच्छित जाग्रतावस्थामें पुन लौट आती हैं, तब पुन तेजस्वी बनती हैं। यदि चार आठ दिन सुषुप्ति न मिले, तो मनुष्य-शरीर निवासी एक भी देव अपना कार्य करनेके लिये योग्य नहीं रहेगा। बीमारी में भी जबतक सुषुप्ति प्रतिदिन आती रहती है, तबतक बीमारी की अवस्था चिन्ताजनक समझी नहीं आती। परन्तु यदि चार पाँच दिन निद्रा बंद हुई तो वैद्यकी कहते हैं कि, यह रोगी आघात हुआ है। इतना महत्त्व तमोगुणमय सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होनेवाली ब्रह्मरूपताका और उसमें प्राप्त होनेवाले अमृतपानका है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाधि और सुक्ति में मिलनेवाले अमृतपानसे कितना लाभ और कितना आनन्द होता होगा।

यत्तुर्वर्तमे यही मन्त्र थोड़े पाठ भेदसे आगया है वह भी यहाँ देखने योग्य है—

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामध्वैरयन्त ॥ ३ ॥ यजु. ३२।१०॥

“वहाँ देव अमृत का भोग करते हुए तीसरे धाम में पहुँचते हैं।” पूर्वोक्त मंत्र में जहाँ ‘समाने योना’ शब्द है वहाँ इस मंत्रमें ‘तृतीये धामम्’ शब्द है। समान योनी का ही अर्थ तृतीय धाम है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यदि ये तीन अवस्थाएँ मन की जाग्रता तीव्रती अवस्था सुषुप्ति ही आती है जिसमें सब देव अपना भेद मात्र छोड़कर एक रूप होकर ब्रह्मरूप बनकर अमृत पान करते हैं। शूद्र, सूत्र, क्षत्रिय ये प्रकृतिके रूप वहाँ लिये, जाँच, तो सब इन्द्र शब्द स्वरूपोंदि देव अपनी भिन्नता त्यागकर एक मन्त्रमें लीन होकर अमृत रूप होते हैं। ज्ञानी मन्त्र महात्मा सामुपगत ये लोग अपने समान भावसे मुक्त अवस्थामें लीन होते हुए अमृत भोगके महानन्द ही प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हर एक स्थानमें इसका अर्थ देखा जाहिये। [पाठक इस सूक्तका मनन कां० १।१० १३ और २० इन दो सूक्तके साथ करें]

यहाँ इस प्रथम सूक्तका विचार समाप्त होता है। यदि पाठक इस सूक्तके एक एक मंत्रका तथा मंत्रके एक एक भागका विचार करेंगे, और उपरर अधिक मनन करेंगे, तो उनके मनमें श्रुतियाँ की बातें स्वयं स्फुरित होंगी। इस सूक्तमें शब्द पुन पुनके रखे हैं, और हर एक शब्द विशेष भाव बना रहा है। विशेष विचार करनेकी गुप्तता के लिये श्रवण और यत्नरहित के पाठ भी यहाँ दिये हैं। इससे पाठक इसका अधिक मनन कर सकते हैं। वेदकी यह विशेष गिद्या है, इसलिये पाठक इस सूक्तके मननसे कितना अधिक लाभ उठावेंगे उतना अधिक अच्छा है।

यह सबका (धास्यः) धारण पोषण करनेवाला है और (भुवने-स्याः) संपूर्ण स्थिरचर जगत्में ठहरा है अर्थात् हर एक पदार्थमें व्याप्त है। कोई स्थान वखसे खाली नहीं है। वकामें जैसा वस्तुत्वन है, उस प्रकार जगत्में यह है, सबसुख यह अग्नि ही है। (मंत्र ४) इसी प्रकार पाठक कह सकते हैं कि, यह सूर्य है और यही विष्णु है, क्योंकि पदार्थ मात्र ही सत्ता ही यह है; फिर अग्नि वायु रवि यह है यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु यदा सबकी सुबोधताके लिये ऐसा कहा है। मनुष्य ध्वन्य आत्मशक्तिये उत्पन्न होता है उसी प्रकार सूर्य भी परमात्माकी शक्तिये ही प्रकाशता है।

देवोंका अमृतपान ।

इस सुक्तके पाँचवें मंत्रमें कहा है, कि उस परमात्मानें देव अमृतपान करते हैं—

यत्र देवा अमृतमानतानाः समाने योनावप्यैरयन्त ॥ ५ ॥

“उस परमात्मानें देव अमृतपान करते हुए समान अर्थात् एकही आश्रयमें पहुँचते हैं।”

अर्थात् सब देव उसमें समान अधिकार से, समान रूपसे अथवा अपनी विभिन्नताको छोड़कर एक रूप बनकर उसमें लीन होते हैं और वहाँ का अनुभव अमृत पीते हैं।

मुक्ति, समाधि और सुषुप्ति में यह बात अनुभवमें आती है मुक्ति और समाधि तो हर एक के अनुभवमें नहीं है, परन्तु सुषुप्ति हर एक के अनुभवमें है। इस अवस्थामें सब जीव ब्रह्मरूप होते हैं। इस समय मानवी शरीरमें रहनेवाले देव- अर्थात् सब इन्द्रिया-अपना भेदभाव छाड़कर एक आदि कारणमें लीन होती हैं और वहाँ आत्मानें मोठा लगाकर अमृतानुभव करते हैं। इस अमृतपानसे उनकी सब परावृत्ति दूर होती है और जब सुषुप्ति से इतरके ये इन्द्रिया जाग्रतावस्थामें पुनः लौट आती हैं, तब पुनः तेजस्वी बनती हैं। यदि चार आठ दिन सुषुप्ति न मिले, तो मनुष्य-शरीर निराशो एक भी देव अपना कार्य करनेके लिये काम्य नहीं रहेगा। बीमारी में भी जबतक सुषुप्ति प्रतिदिन आती रहती है, तबतक बीमारी को अवस्था चिन्ताजनक समझी नहीं जाती। परन्तु यदि चार पाँच दिन निद्रा बंद हुई तो वैद्यभी कहते हैं कि, यह रोगी आघात हुआ है। इतना महारोग तमोग्रसनस्य सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होनेवाली ब्रह्मरूपताका और उसमें प्राप्त होनेवाले अमृतपानका है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाधि और मुक्ति में मिलनेवाले अमृतपानसे कितना लाभ और कितना आनन्द होता होगा।

चतुर्थमें यही मंत्र जोड़े पाठ भेदसे आगवा है यह भी वही देखने योग्य है—

अग्निं ये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।

ताभ्यो वो देवीर्नम इत्कुणोमि

॥ ४ ॥

याः कृन्दास्तमिपीचयोऽक्षकामा मनोमुदः ।

ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराम्योऽकरं नमः

॥ ५ ॥

अर्थ— (अन्-अवशामि आसि.) दोषरहित देखे इन प्राणशक्तियोंके साथ वह (उ स जामे) निधयसे मिला रहता है और (अप्सरासु अपि) इन प्राणशक्तियोंमें भी (गन्धर्वः आसीत्) भूमि आदिपोंका धारक देव विद्यमान है । (आसां स्थान समुद्रे) इनका स्थान अन्तरिक्षमें है, (यत्) जहासे (सधः) शीघ्र ही ये (आ यान्ति) जाती हैं और (परा यन्ति च) परे जाती हैं । यह वाच (मे आहु) मुझे बतायी है ॥ ३ ॥

(अग्निं ये दिद्युत्) आदलोंकी विद्युत् में अथवा (नक्षत्रिये) नक्षत्रोंके प्रकाशमें भी (याः) जो तुम (विश्वा-रसु गन्धर्वं) विश्वके वसनेवाले धारक देव की (सचध्वे) प्राप्त करती हो अथवा उसकी सेवा करती हो, इसलिये वे (देवी) दवियों ! (ताम्य वः) उन तुमको (इत् नम कुणोमि) निश्चय पूर्वक मैं नमन करता हूँ ॥ ४ ॥

(या कृन्दा) जो बुलानेवाली या प्रेरणा करनेवाली, (तमिपी-चयः) रत्नानिको हटानेवाली, (अक्ष-कामा) आँखोंकी कामना तुल करनेवाली, (मनो-मुद) मनको हिलानेवाली हैं (ताम्य गन्धर्व-एतन्म्य अप्सराम्य) उन गन्धर्व-नीरूप अप्सरामोंको—अर्थात् सर्वधारक आत्माको प्राणशक्तियोंको (नम. अकरम्) मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ— इसके साथ जीवनकी अनन्त कल ए है, इतना ही नहीं परतु वह सन जीवन शक्तियोंके अंदर भी है । इन सबका निवास मध्यलोह-अन्तरिक्ष-है, जहासे वे सब शक्तियाँ प्रकट होती हैं और जहाँ फिर गुप्त हो जाती हैं ॥ ३ ॥

आदलोंके अंदर चमकनेवाला विद्युत्में क्या और नक्षत्रोंके प्रकाशमें क्या यह सब जगत्का पालन कर्ता एक रस भरा है, और इसकी सेवा सपूर्ण जीवनकी शक्तिरूप देवियों कर रही हैं, इसलिये उनको भी नमन करना योग्य है ॥ ४ ॥

ये प्राणशक्तियाँ सबको प्रेरणा करनेवाली, सबको चलाववाली, यथावतकी दूर करवाली, आँखोंकी कामना तुल करनेवाली और मनको हिलानेवाली हैं । यही आत्माकी शक्तियें हैं, इस दृष्टिसे मैं इनको नमस्कार करता हूँ (अर्थत् वह इनको किया हुआ मैं नमस्कार भी उस अद्वितीय ईश्वरकी ही पहुँचाया, क्योंकि ये शक्तियाँ उसीके आधारसे रहती हैं) ॥ ५ ॥

पूर्व सम्बन्ध

प्रथम सूक्तमें “ गुप्य अन्धात्मावया ” का वर्णन किया गया है, उस सूक्तमें जिस परमात्मा देवका वर्णन किया गया है, उसीका वर्णन यहाँ “ गन्धर्व ” शब्द से किया गया है । उस प्रथम सूक्तके द्वितीय अंगमें भी “ गन्धर्व ” शब्द है, इससे पूर्व गुप्य इस सूक्तके साथ सम्बन्ध रखता है ।

७ सूर्यस्त्वम्—महान् सहस्ररश्मी सूर्य भगवान् ही इक्ष्वा देह है, अर्थात् यह उस में भी है इतनाही नहीं, परंतु उसका बरा तेज भी इधरे प्राप्त हुआ है। यह इक्ष्वा की महिमा है (मं. २)। इधरी प्रकार अन्यान्य पदार्थोंमें इक्ष्वा की सत्ता देखनी चाहिए। यह शब्द एक उपलक्षण मात्र है।

८ विष्वा-वसुः (गंधर्वाः)—विश्वका यही निवासक है। (मं. ४)

ये लक्षण स्पष्ट कर रहे हैं कि यहाका यह गंधर्वका वर्णन निःसंदेह परमात्मा का वर्णन है। किसीभी अन्य पदार्थ में ये सब अर्थ पूर्णरूपसे सार्य नहीं हो सकते। इसलिए पाठक इन लक्षणों का मनन करके अपने मनमें इस परमात्म देव की भाँति स्थिर करें, क्योंकि यही एक सबके लिए पूजनीय देव है।

ब्रह्मकी ब्राह्म उपासना।

इस परमात्माकी प्राप्ति इसकी उपासनासे होती है। इस सूक्तमें इसकी ' ब्राह्म उपासना ' करनेका विधान बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

१ तं त्वा यौमि ब्रह्मणा। (मं० १)

२ नमस्यः। (मं० १, २) नमस्ते अस्तु। (मं० १)

३ विधु ईक्ष्यः। (मं० १)

४ सुबोवाः। (मं० २)

ये चार मंत्र भाग इसकी ब्राह्म उपासना करनेके मार्ग की सूचना दे रहे हैं। ब्राह्म उपासना का अर्थ ' ब्रह्मयज्ञ ' अथवा मन द्वारा करने की ' मानस उपासना ' ही है। आत्मा बुद्धि चित्त मन आदि अंतःसाधनोंसे ही यह परमात्म पूजा होती है, इन साधनोंका नामही शरीरमें ब्रह्म है। ब्रह्म शब्दका अर्थ मंत्र भी है और मंत्रका आशय ' मनन ' है। मननसे यह उपासना करनी होती है, मनके मनन से ही यह हो सकती है, किसी अन्य रीतिसे यह नहीं होती है, वह स्पष्टतया बतातेके लिए यहाँ ' ब्रह्मणा ' शब्द इस मंत्र में प्रयुक्त हुआ है। यह बात ध्यान में धारण करके उक्त चार मंत्रभागोंका अर्थ ऐसा होता है—

१ तं त्वा यौमि ब्रह्मणा—उस तुझ परमात्माको मननसे प्राप्त होता हूँ। (मनन)

२ नमस्यः [नमस्ते]—तू ही एक नमस्कार करने योग्य है। (मनन)

३ विधु ईक्ष्यः—धन्य जगत्में तू ही प्रशंसा करनेके लिए योग्य है। (धन्य प्रशंसा)

४ सु—सोचा—तूही उत्तम सोचके लिए योग्य है। (ध्यान)

इन चार मंत्र भागोंके मननसे मानस पूजाकी विधि ज्ञात हो जाती है। (१) प्रभुके गुणोंका मनसे मनन करना, (२) उसी को मनसे नमन करना, (३) प्रत्येक पदार्थ में तत्त्वा प्राणिमात्रमें उसका दर्शन करना और (४) सब धर्म उसकी सेवा करने के लिए करना, ये चार भाग उस प्रभुकी उपासना के हैं। इन चार भागोंमें से जितने भागोंका अनुष्ठान हुआ होगा, उतनी उपासना उतनीही प्रमाण से हुई है, ऐसा मनन चाहिए। गूढ विचार करें और अपनी उपासनाकी परीक्षा इस कठौटीसे करें। हाएक मनुष्य अपने आपकी परमात्माका उपासक बनताही है, परंतु उससे जो उपासना हो रही है, वह इस वैदिक मानस उपासना की उक्त कठौटीसे बिधु खंडीपर गिनी जा सकती है, वह भी देखना चाहिये। इस दृष्टिसे ये चार मंत्र भाग विशेषही महत्त्व रखते हैं।

' मनन, नमन, धन्य प्रशंसा और ध्यान ' ये चार नाम संक्षेप से मानस उपासना के चार अंगोंके दृष्टक मन जा सकते हैं।

१ "मनन" ये परमात्माके महत्त्वकी मनमें स्थिरता होती है। इस दृष्टिसे इसकी अत्यंत आवश्यकता है।

२ "नमन" जब मननेसे उक्तका महत्त्व ज्ञात हुआ, तब स्वभावतः ही मनुष्य उक्त प्रभुके सामने आनंद होता

है । मननके पश्चात् की यह स्वाभाविक ही अवस्था है ।

३ " दर्शन " मननसे ही उसकी सार्वत्रिक सत्ता का भी अनुभव होता है । स्थिर चरमें एक रस व्यापक होनेका साक्षात्कार होनेकी यह तीसरी उच्च अवस्था है । जगत्के अंदर प्रभुका ही सर्वत्र साक्षात्कार इस अवस्था में होता है ।

ये तीनों मानसिक क्रियाएँ हैं । इसके पश्चात् यह भक्त अपने आपको परमात्माके परम यज्ञमें समर्पण करता है, वह सेवा-वस्था है ।

४ " सेवन " यह इस अवस्थामें उसका सेवक बनता है । सेवन और 'भजन' ये दोनों शब्द समान अर्थके ही हैं— सेवन और भजन एकही अर्थ बताते हैं । प्रभुके कार्यके लिये अपने आपको समर्पित करना, यही भक्ति या सेवा है ।

'दीनों का उद्धार' करना, साधुओंका परित्राण करना, सज्जनोंकी रक्षा करना, दुर्जनोको दूर करना, ये ही परमात्मा के कर्मे हैं । इन कर्मों को परमार्थमार्पण बुद्धिसे करनेका नाम ही उसकी भक्ति या सेवा है ।

नामस्मरण ।

नामस्मरण का भी यही तात्पर्य है, जैसा " हरि " (दुःखोंका हरण करनेवाला) देव है, इसलिए मैं भी दुःखितोंका दुःख यथाशक्ति हरण करूँगा और दूसरों को सुख देने के कर्मे से ईश्वर की सेवा करूँगा । ' राम ' (आनन्द देनेवाला) ईश्वर है इसलिये मैं भी दीन दुःखी मनुष्यों या प्राणियोंकी पीडा दूर करनेके यत्न द्वारा परमात्माकी भक्ति या सेवा करूँगा । ' नामस्मरण ' का यही उद्देश्य है । यद्यपि आजकल केवल नामका स्मरणही रहा है और उससे प्राप्त होनेवाले कर्तव्य का पालन नहीं होता है, तथापि वस्तुतः इससे महान् कर्तव्य सूचित होते हैं, यह पाठक विचारसे जानें और परमेश्वरके इतने नाम कहनेका मुख्य उद्देश्य समझ लें । अनेक ग्रंथ पढ़ने से जो कर्तव्य नहीं समझता, वह एक नाम के मननसे समझमें आता है, इसलिये वेदादि ग्रंथोंमें परमात्माके अनेक नाम दिये होते हैं और वे सब बड़े मार्गदर्शक हैं, परंतु देखनेवाला और कर्म करनेवाला भक्त चाहिये ।

अस्तु । ईश्वर स्थापना के ये चार भाग हैं, इसका अधिक विचार पाठक करें और इस मार्गसे चलें । यही सीधा, सरल और अतिप्रथम मार्ग है ।

ब्राह्म उपासना का फल ।

पूर्वोक्त प्रकार मानस उपासना करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका वर्णन भी इन मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं—

१ सं त्वा यौमि-परमेश्वरके साथ मिलना, ब्रह्मरूप अवस्था प्राप्त करना । (मं. १)

२ देव्यस्य हरसं जवयाता-परमात्मा सब महापीडाओंको दूर करनेवाला है, इसलिये सब पीडा उसकी प्राप्ति से दूर हो जाती है । (मं. २)

३ मुदात्-वह आनन्द देता है । (मं. २)

इन शब्दोंके मननसे पाठकोंको पता लग जायगा कि, उपासना का फल परमानन्द प्राप्ति ही है । वह प्रभु सच्चिदानन्द स्वरूप होनेसे उसके साथ मिल जानेसे बड़ी आनन्द उपाशकमें आ जाता है और जितनी उपासनाकी दृढता और पूर्णता होगी, उतना वह आनन्द दृढ और पूर्ण होता है । यह फल प्राप्त करनेकाही पूर्वोक्त वैदिक मार्ग है ।

यक्षा पहिले दो मंत्रोंका विचार हुआ । इसके पश्चात् के तीन मंत्रोंका वर्णन ठीक प्रकार समझमें आनेके लिये उस वर्णनको प्रथम अपने शरीरमें अनुभव करावा चाहिये और पश्चात् बड़ी भाव-विशाल जगत्में देखा चाहिये—

अपने अंदरकी जीवन शक्ति ।

इससे पूर्व बताया गया है कि, जलतत्त्वके आधुनिक कार्य करनेवाली प्राणशक्ति या जीवनशक्ति ही ' अमरा ' शब्दसे इस सूक्तमें कही है, देखिये इसका वर्णन—